Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिन्दुस्थानी संगीत में तानसेन का स्थान

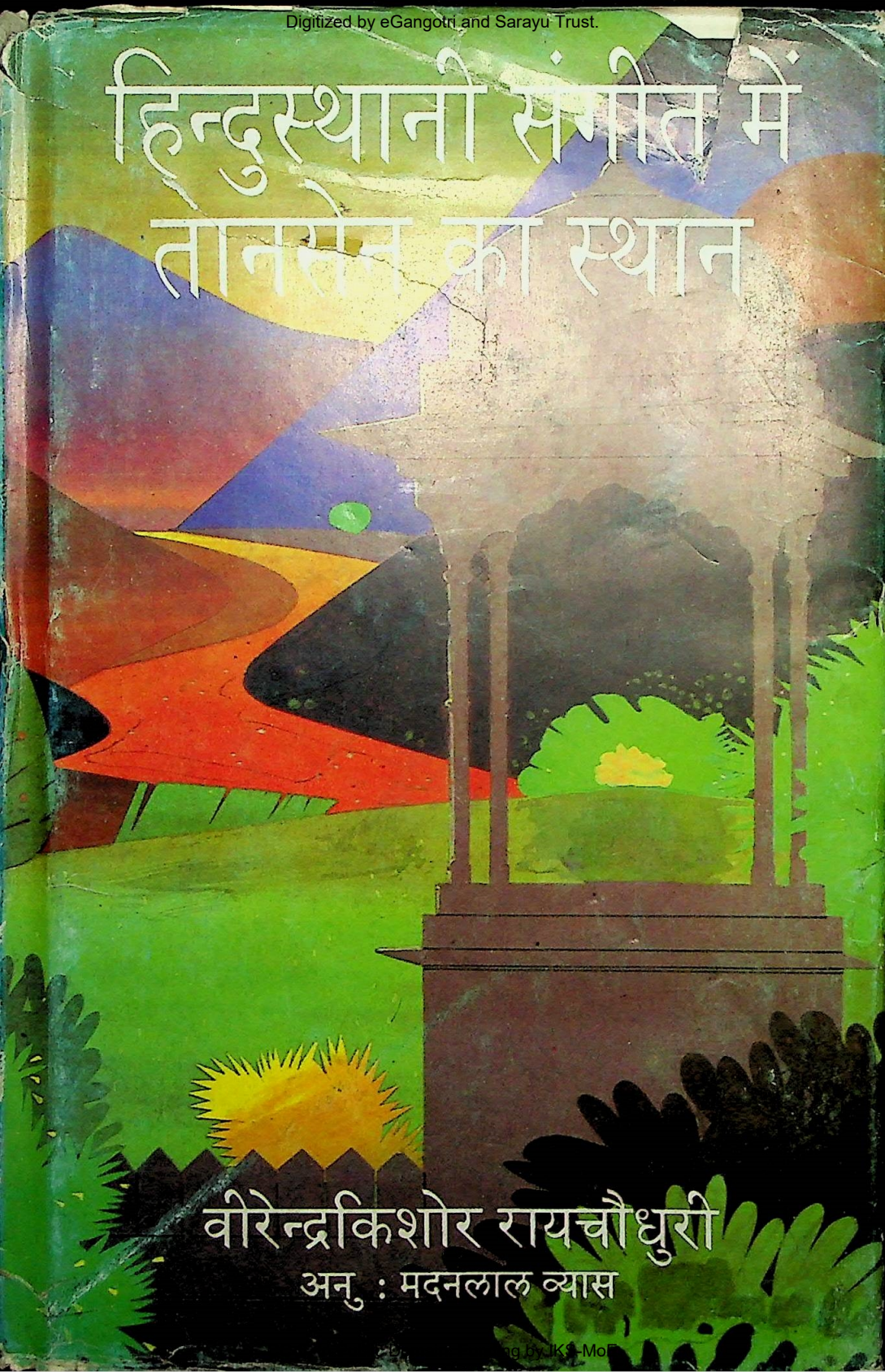

वीरेन्द्रकिशोर रायचौधुरी

अनु : मदनलाल व्यास

Digitized by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

68
A151

तानसेन का नाम भारतवर्ष के संगीतज्ञों के समक्ष प्रवाद-पुरुष के रूप में प्रचलित होते हुए भी ग्रंथकार ने इस ग्रंथ में संभवतः प्रथम बार तानसेन को हाड़-मांस के मानव रूप में प्रस्तुत किया है। तानसेन संगीत के एकनिष्ठ साधक थे और इस साधकोचित मनोवृत्ति से प्रेरित होकर ही उन्होंने जीवन के अपराह्नकाल में संगीत को धर्म साधन के उपाय-स्वरूप ग्रहण किया था, यौवनावस्था में तानसेन ने स्वामी हरिदास से जो धर्म शिक्षा पायी थी, परिणत उम्र में उस शिक्षा ने ही उन्हें एकेश्वरवादी बना दिया था। 'आइने-अकबरी' प्रणेता अबुल फजल ने ठीक ही कहा है कि तानसेन के समान गायक विगत सहस्र वर्षों में जन्मा नहीं। इस ग्रंथ में स्पष्ट किया गया है कि आधुनिक गान-विद्या का प्रमाण मात्र तानसेन और उनके वंशजों में ही मिलता है। स्वामी हरिदास की सृष्टि भगवत् पदारविंद में अंजलि देने के लिए थी, तानसेन ने उस सृष्टि के उत्स से एक धारा जगत् की ओर प्रवाहित कर दी जगत को संगीत-सुधास्रोत से सुशीतल करने के लिए। आर्यावर्त में तानसेन ही संगीत के एकछत्र सम्राट हुए। स्वामी हरिदास एवं तानसेन ने ध्रुपद को पूर्ण परिणति प्रदान की। तानसेन का संगीत ही विविध रूपांतरणों के माध्यम से आज इस बहुल विचित्र हिन्दुस्थानी संगीत रूप में विकसित हुआ है। अकबर बादशाह ने विक्रमादित्य का पदानुसरण कर तानसेन को अपने दरबार के नवरत्न के श्रेष्ठतम रत्न के रूप में रखा। तानसेन वंशज सुप्राचीन संगीत-साधनाधारा वहन कर लाये। इस ग्रंथ में तानसेन के पुत्र वंश और दोहित्र वंश की विस्तृत वंशतालिका के साथ उनके अवदान का वर्णन है। परिशिष्ट 'क' में उर्दू ग्रंथ 'माद्नुल मूसीकी' का अनुवाद है और परिशिष्ट 'ख' में 'संगीत सुदर्शन' के कुछ अंश।

'संगीत की तीर्थयात्रा' में लेखक स्व. वीरेन्द्रकिशोर रायचौधुरी ने जिन उस्तादों से तालीम पायी अथवा जिनके सम्पर्क में वे आये, उनके व्यक्तित्व, कृतित्व और जीवन पर प्रकाश डाला है; ये प्रवाद पुरुष हैं—अब्दुल्ला खाँ, अमीर खाँ, श्मदाद खाँ, इनायत खाँ, केरामतुल्ला खाँ, हैदर अली, वजीर खाँ, सगीर खाँ, अलाउद्दीन खाँ, हाफिज अली खाँ, मजीद खाँ, आजिम खाँ, दबीर खाँ, मुहम्मद अली आदि।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस ग्रंथ को अत्यंत चित्ताकर्षक कहा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

78816

वाणी प्रकाशन

नयी दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS, MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

68
A151

70310

हिन्दुस्थानी संगीत में तानसेन का स्थान

लेखक
श्री वीरेन्द्रकिशोर रायचौधुरी
(गौरीपुर, मयमनसिंह)

अनुवादक
मदनलाल व्यास

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

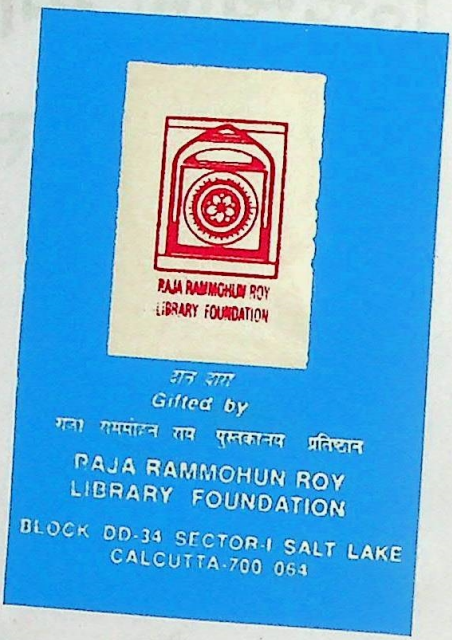

70810
780.92
R 11 H

ISBN 81-7055-455-1

वाणी प्रकाशन
21 ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
द्वारा प्रकाशित

संस्करण : 1997
© लेखकाधीन
मूल्य : 100.00 रुपये

शुभम ऑफसेट, दिल्ली-110032
द्वारा मुद्रित

HINDUSTHANI SANGIT MAIN
TANSEN KA STHAN
by Sh. Virendra Kishor Raychoudhuri

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मेरे संगीतगुरु
परम श्रद्धास्पद परलोकगत
महम्मद अली खाँ साहब रबाबी
और
वजीर खाँ साहब बीनकार
की
पवित्र स्मृति में
यह छोटा ग्रंथ
समर्पित

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मुखबन्ध

मियाँ तानसेन का नाम भारतवर्ष, विशेषतः उत्तर भारत के सभी रसिकजनों को ज्ञात है। जनश्रुति-परम्परा से इस नाम के साथ ऐसी आख्यायिका और इतिवृत्त का उद्भव हुआ है, जो ऐतिहासिक है या नहीं, इस प्रकार के सन्देह की सृष्टि होते हुए भी हमारे मन में कुतूहल और श्रद्धा जगाता है।

विशेष रूप से ध्रुपद गान और आलाप के सम्बन्ध में जो आजकल उस्ताद रूप में परिचित हैं—उनमें से किसी भी व्यक्ति की गुरु-शिष्य परम्परा के इतिहास का अनुसंधान करने पर देखा जाता है कि तीन स्तर तक पहुँचते न पहुँचते ही तानसेन के किसी-न-किसी वंशज का नाम आ जाता है। अर्थात् ये सभी संगीत-शिल्पी तानसेन के अनुवर्ती हैं। मात्र इस बात पर ही विचार करने पर हम समझ सकेंगे कि तानसेन एवं उनकी धारा ने आधुनिक भारत में प्रच्छन्न रूप में अपने प्रभाव का कितना विस्तार किया है।

इसमें सन्देह नहीं कि तानसेन संगीत जगत् के महापुरुष थे। अन्यान्य महा-पुरुषों की जीवनी के समान ही तानसेन की जीवनी भी रहस्य से आच्छन्न है। ऐतिहासिकों के क्षीण आलोकपात से उनके जीवन के बारे में हमें जो कुछ विदित होता है उससे इतना ही पता चलता है कि तानसेन एक उत्कृष्ट गायक थे—इसके अलावा और कुछ पता नहीं चलता। यहाँ तक कि तात्कालिक प्रसिद्ध ऐतिहासिक अबुल फजल लिखित संग्रह में यह उल्लेख भी नहीं है कि तानसेन ध्रुपद गाते थे या नहीं। तानसेन के गान के अंतर्निहित उच्चस्तरीय भाव और आध्यात्मिकता—जिसे आधुनिक जगत् के हम लोग समझ सकते हैं एवं इन सब गानों का काव्यगत उत्कर्ष अनुशीलन करने पर हमें समझ में आता है, किन्तु इस विषय में ऐतिहासिक बिलकुल ही मौन हैं। इस नीरवता को नीरसता मानने का सन्देह भी हमें हो सकता है।

मयमन सिंह, गौरीपुर के कुमार श्रीयुक्त वीरेन्द्र किशोर राय चौधुरी ने इस पुस्तिका की रचना कर हमारे एक अभाव की पूर्ति करने का प्रयास किया है—वस्तुग्राहक ऐतिहासिक जिस अभाव की पूर्ति कर नहीं सके। श्रीयुक्त वीरेन्द्र किशोर राय चौधुरी स्वयं संगीत-साधक एवं शौकीन संगीत व वेत्ताओं में शीर्षस्थानीय रूप में परिचित हैं। श्रद्धा और भक्ति के साथ उन्होंने तानसेन की जीवनी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पर जो आलोकपात किया है, उससे आशा की जा सकती है कि तानसेन के जीवन के अनेक गूढ़ एवं आध्यात्मिक रहस्य हमें आश्चर्यचकित कर सकेंगे। पाठकों से मेरा अनुरोध है कि वे इस पुस्तक को भक्त और साधक की श्रद्धांजलि के रूप में सादर ग्रहण करें। इति।

— श्री अभियनाथ सान्याल

2/3-ए गोयाबागान लेन,
कलकत्ता
11 आश्विन 1346

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रथम संस्करण में प्रकाशक का निवेदन

तानसेन का नाम बंगाल व भारतवर्ष के संगीतज्ञों के समक्ष प्रवाद वाक्य के रूप में प्रचलित होते हुए भी ग्रंथकार ने सम्भवतः प्रथम बार तानसेन को हाड़-मांस के मानव के रूप में साधारण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। तानसेन की प्रतिभा के क्रमिक विकास की कथा—पूर्ण उद्यम में ख्याति-पथ पर अग्रसर होने का उनका प्रचेष्टा-प्रसंग, यानी उनके सुदीर्घ जीवन का चमत्कृत करने वाला इतिवृत्त इतने दिनों तक 'आइने अकबरी', 'बादशानामा' प्रभृति विख्यात किन्तु अल्प परिज्ञात दुर्भेद्य ग्रंथदुर्ग की पाषाण प्राचीर के अभ्यन्तर में आबद्ध था। वहाँ प्रवेश का अधिकार मात्र अनुसंधान के इच्छुक प्रख्यात प्रतिभाशाली पण्डित वर्ग तक सीमित था। वहाँ की रत्नराजी का सन्धान केवल वे ही जानते थे किन्तु जन-साधारण को इसकी जानकारी देने में उत्सुकता का प्रदर्शन वे कभी नहीं करते थे। ग्रन्थकार ने उस चिर-प्रचलित प्रथा का परित्याग कर पाषाण प्राचीर के नीरव नेपथ्य से संगीत सम्राट तानसेन की जीवन-कथा निकालकर बंगाली पाठकों के समक्ष उपहार स्वरूप सादर रखी है। इस प्रकार की सुलिखित संक्षिप्त जीवनी सम्भवतः बंगसाहित्य में विरल है।

प्रसिद्ध विषय के प्रति पाठकों का मनोयोग सम्पूर्ण रूप से आकृष्ट करना, नायक-नायिका के इष्ट-अनिष्ट की सम्भावना के वर्णन द्वारा पाठक को उत्फुल्ल या उद्विग्न करना लेखक के लेखन-कौशल का परिचायक माना जाता है। तानसेन के जीवनवृत्त में ग्रंथकार ने भी इसी प्रकार लेखन-चातुर्य का परिचय प्रायः सर्वत्र ही प्रदान किया है। इसके फलस्वरूप काल का व्यवधान अन्तर्हित हुआ है—जो संगीतानुरागी और संगीतकलाभिज्ञ व्यक्ति वर्ग के समक्ष अब तक मात्र नाम तक ही पर्यवसित थे—जनसाधारण जिन्हें बहुत दिन पहले सुनी गयी पुरानी बेकार की बात की तरह भूल गये थे, आज वे ही सहसा संजीवनी मंत्र से प्राणवन्त हो उठे हैं, विस्मृति-सागर की लहरों की उद्विग्नता का अतिक्रमण कर हमारे समक्ष पूर्व परिचित बन्धु के समान आकर खड़े हो गये हैं। हम निर्वाक-विस्मय से, मुग्ध दृष्टि से उनके मुँह की ओर देख रहे हैं—आनन्द के अतिरेक से शरीर में रोमांच, सिहरन का संचार है एवं सम्राट अकबर की राजसभा में उनकी अतुलनीय प्रतिष्ठा देखकर हम आनन्द और गौरव से उल्लसित हो रहे हैं।

कविकुल शिरोमणि कालिदास का प्रसंग उठते ही विद्वज्जन-प्रतिपालक महाराजाधिराज श्री विक्रमादित्य की स्मृति स्वतः ही मानस पटल पर उज्ज्वल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हो उठती है, उसी प्रकार तानसेन की बात उठने पर जिनके राज-छत्र का सुशीतल और सुस्निग्ध छायातल मनीषा की एकमात्र विकासभूमि थी, कोहिनूर कल्प, अमूल्य, अत्यन्त उज्ज्वल प्रतिभाशाली पण्डितों को देश-विदेश से लाकर राजसभा को सुशोभित करना ही जिनका एकमात्र व्यसन था, उस महामनीषी गुणग्राही दाता सम्राट अकबर की स्मृति प्रसंगतः उद्दीप्त हो उठती है अतः उनके सम्बन्ध में कुछ न कहने पर तानसेन की कीर्तिकथा असम्पूर्ण रह जायगी। वास्तव में सम्राट असाधारण गुणग्राही थे—गुणों का कुछ ही परिचय प्राप्त करने पर वे सन्तुष्ट हो जाते एवं उस गुणी व्यक्ति को आश्रय प्रदान कर उसके गुणों के उत्कर्ष के लिए सहायता करते। उनके राजत्व-काल में "दारिद्र्यदोषः गुणराशिनाशी:" —कहावत वास्तव में कुछ परिणाम में निरर्थक हो गयी थी। सभासद् पण्डितवर्ग से 'लक्ष्मी व सरस्वती के चिरविरोध' की बात सुनकर भी महाज्ञानी उदारमना सम्राट के अन्तर में यह धारणा दृढ़ हुई थी कि दारिद्र्य के बुरे दिनों में पेचक के पालक का आश्रय ग्रहण करने के अलावा राजवंश की रक्षा का और कोई उपाय नहीं है। वे निश्चित रूप से जानते थे कि कमला के वरपुत्रों की सहानुभूति, सदिच्छा और पृष्ठपोषकता के बिना वाणी के प्रियतम एकनिष्ठ सेवकों की ज्योति म्लान हो जाती है—किसी-किसी का जीवन-स्रोत सम्भवतः संसार-मरुभूमि के ऊसर बालुका-क्षेत्र में अकाल ही धाराहीन हो जाता है—साथ ही विश्व-निवासी उनकी प्रतिभा के श्रेष्ठ अवदानों से चिर वंचित रह जाते हैं। यह बात उनसे छिपी नहीं थी—

"क्रतौ व्रसने विवाहे रिपुक्षये
यशस्करे कर्मनि मित्रसंग्रहे।
प्रियासु नारीषु धनेषु बन्धुषु
धनव्ययस्तेषु न गण्यते बुधैः ।।"

इसीलिए काफी धन खर्च कर राजाराम बाघेला के दरबार से तानसेन को दिल्ली बुलाकर प्रतिष्ठापित करने मात्र से ही वे निवृत्त नहीं हुए—क्रमशः प्रायः पूरे देश से सर्वजातीय गायकों का पता लगाया और उन्हें लाकर राजसभा में स्थान दिया था। इनमें जिन्होंने विशेष ख्याति प्राप्त की थी, जनसाधारण की जानकारी के लिए उनके नाम 'आइने अकबरी'-कार अबुल फजल की उक्तिसह यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं।

THE IMPERIAL MUSICIANS

'I Cannot sufficiently describe the wonderful power of this talisman of knowledge (music). It sometimes causes the beautiful creatures of the haram of the heart to shine forth on the

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

tongue and sometimes appears in solemn strains by means of the hand and the chord. The melodies then enter through the window of the ear and return to their former seat, the heart, bringing with them thousands of presents. The hearers according to their insight, are moved to sorrow or to joy. Music is thus of use to those who have renounced the world and to such as still cling to it."

"His Majesty (Akbar) pays much attention to music and is the patron of all who practice this enchanting art. There are humerous musicians at Court, Hindus, Iranis, Turanis, Kashmiries, both men and women."

"The Court musicians are arranged in seven divisions. One for each day in the weak. When his majesty gives the order, they let the wine of harmony flow, and thus increase intoxication in some and Sobriety in others. A detailed description of this class of people would be too difficult, but I shall mention the principal musicians."

1. Miya Tansen[1] of Gwalior. A singe like him had not been in India for the last thousand years. Raja Ramchand Baghelah was the patron of this renowned musician and singer Tansen. His fame had reached Akbar and in the 7th year emperor sent Jalaluddin Quirchi to Bhatah to induce. Tansen to come to Agrah. Ramchand feeling powerless to refuse Akbar's request, sent his favourite with musical instruments and many presents to Agrah and the first time that Tansen performed at the Court, the emperor made him a present of two lakhs of rupees. Tansen remained with Akbar. Most of his Compositions are written in Akbar's name, and his melodies are even now-a-days every-where repeated by the people of Hindusthan."

---

1. Ramchand is said to have once given Tansen one crore of Tankahs as a present. Ibrahim Sur, on vain, persuaded Tansen to come to Agra. Abul Fazal mentions below his son Tantarang Khan and the Padishanama mentions another son of the name of Bilas.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

2. Baba Ramdas[1] of Gwalior, a singer.
3. Subhan Khan of Gwalior, a singer.
4. Srigyan Khan of Gwalior, a singer.
5. Miyan Chand of Gwalior, a singer.
6. Bichitra Khan, brother of Subhan Khan, a singer.
7. Mohammad Khan Dhari, sings.
8. Birmandal Khan of Gwalior, plays on the Sormandal.
9. Baz Bahadur, Ruler of Malwah, a singer without rival.
10. Shihab Khan of Gwalior, performs on the Bin.
11. Daud Dhari[2], sings.
12. Sarod Khan of Gwalior, sings.
13. Miyan Lal[3] of Gwalior, sings.
14. Tantarang Khan, son of Miyan Tansen, sings.
15. Mulla Ishaque Dhari, sings.
16. Usra Dost of Mashad, plays on the phite (Nai).
17. Nanak Jarju of Gwalior, a singer.
18. Purbin Khan—his son, plays on Bin.
19. Surdas, son of Baba Ramdas, a singer.
20. Chand Khan of Gwalior, sings.
21. Rangsen of Agrah, sings.
22. Shaikh Dewan Dhari, performs on the Karna.
23. Rahamatulla, brother of Mullah Ishaque, a singer.

---

1. Badauni Says Ramdas came from Lucknow. He appears to have been with Bairam Khan during the rebellion and Bairam once received from him one lakh of Tankaha, empty as Bairam's treasure chest was. He was first at the Court of Islam Shah and he is looked upon as second only to Tansen. His son Surdas is mentioned below.
2. Dhari means a singer—a musician.
3. Jahangir says in Tuzuk that Lal Kalawant (or Kalawant a singer) died in the 3rd year of his reign, "Sixty or rather seventy years old. He had been from youth in my father's service. One of his concubines on his death, poisoned herself with opium. I have rarely seen such an attachment among Mahammedan women."

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

24. Mir Sayyid Ali of Mashad, plays on the Ghichak.
25. Ustad Yusuf of Harat, plays on Tambura.
26. Quasim Surnamed Koh-bar[1]. He has invented an instrument. intermediate between the Qubaz and 'Rubub'.
27. Tash Beg of Quipchag, plays on Qubar.
28. Sultan Hafiz Hussain of Mashad, Chants.
29. Bahram Quli of Harat, plays on the Ghichak.
30. Sultan Hashim of Mashad, plays on the Tambura.
31. Ustad Sha Mahammad plays on the Surna.
32. Ustad Mahammad Amon, plays on the Tamburah.
33. Hafiz Khwaja Ali of Mashad, Chants.
34. Mir Abdullah, brother of Mir Abdul Hai, plays on the Quanun.
35. Pirzadah[2], Nephew of Mir Dawam of Khursan, sings and Chants.
36. Ustad Muhammad Hossain[3], plays on the Tamburah.

तानसेन के सम्बन्ध में प्रचलित विभिन्न प्रकार की किंवदन्तियों का अभाव नहीं है—किन्तु इनमें परस्पर मेल की बजाय बेमेल इतना अधिक है कि अधिकांश क्षेत्रों में एक या दो ग्रहण कर शेष का सामंजस्य के अभाव में परित्याग करना ही पड़ेगा।

---

1. Koh-bar, as we know from Padishanama, is the name of a Chagtai tribe. The 'Nafaisul Maasir' mentions a poet of the name of Muhammad Quasim Koh-bar whose Nom-de-plums was Cabri.
2. Pirzadah, according to Badaoni, was from Sabzwar. He wrote poems under the 'Takhallue' of Liwai. He was killed in 905 at Lahore by a wall falling on him.
3. The Masiri Rahimi mentions the following musicians in the service of the Khankhanan :
   (a) Agah Muhammad Nai, son of Hazi Ismail of Tabriz. (b) Maulana Aqwati of Tabriz. (c) Ustad Mirza Ali Fatagi, (d) Maulana Sharaf of Nishapur, a brother of poet Naziri, (e) Muhammad Mumin Ali as Hafizak, a Tamburah player, (f) Hafiz Nazar from Transoxians, a good singer.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इन सब मामलों में 'नह्यमूला: जनश्रुति' या 'Shade without Substance' प्रभृति प्रवादवाक्य ही अचल लगते हैं। असामान्य प्रतिभासम्पन्न कृती व्यक्तिवर्ग के तिरोधान के बाद उनकी स्मृति का अवलम्बन लेकर सम्भव-असम्भव कई प्रकार की कथाएँ सभी देशों में अन्धभक्त व्यक्तिपूजकों द्वारा गढ़ी जाती हैं। ऐतिहासिक सत्यान्वेषी दृष्टि से ये सभी कथाएँ नितान्त नगण्य लगने पर भी वास्तव में ये बिलकुल अवज्ञा की वस्तु नहीं हैं, क्योंकि इनके द्वारा ही हम मृत व्यक्ति की जनप्रियता की परिधि का परिमाप निर्मूल रूप में करने में समर्थ होते हैं, इसीलिए हमारा विश्वास है कि ये सभी कथाएँ जिनके सम्बन्ध में जितनी अधिक प्रचलित हैं, वे उतने ही अधिक दिन जगत् में जनसाधारण की स्मृति में जीवित रहते हैं। लगता है कि तानसेन के सम्बन्ध में इस प्रकार की कथाएँ अबाध रूप से बहुल परिमाण में सर्वत्र प्रचलित हुई थीं, इसीलिए उनका नाम आज भी संगीतवेत्ताओं के स्मृतिपटल पर उज्ज्वल है एवं जितने दिनों तक भारतवर्ष में हिन्दुस्थानी संगीत का आदर रहेगा, उतने दिनों तक तानसेन की की कीर्तिकथा कभी विस्मृति की कुज्झटिका से आवृत नहीं होगी। सम्भवत: इसी बात को ध्यान में रखकर पण्डितों ने कहा है : 'कीर्तिर्यस्य स जीवति'।

यौवनावस्था में तानसेन ने स्वामी हरिदास से जो धर्मशिक्षा पाई थी, परिणत उम्र में उस शिक्षा ने ही उन्हें एकेश्वरवादी बना दिया था। यथार्थ में वे संगीत के एकनिष्ठ साधक थे एवं उस साधकोचित मनोवृत्ति से प्रेरित होकर ही उन्होंने जीवन के अपराह्न काल में संगीत को धर्म-साधन के उपायस्वरूप ग्रहण किया था। अक्लान्त कष्टसाध्य साधना के अन्त में जब सत्य की 'कोटीसूर्य्यप्रतीकाशं कोटीचन्द्रसुशीतलं' उज्ज्वल दीप्ति उनकी आँखों के सम्मुख उद्भासित हो उठी थी, तब वे प्रफुल्ल कण्ठ से गा उठे थे :

प्यारे तूं ही ब्रह्म, तूं ही विष्णु, तूं ही शेष, तूं ही महेश।
तूं ही आद, तूं ही अनाद, तूं ही नाद, तूं ही गणेश ॥
जल स्थल मरुत व्योम
तूं ही अकार यम सोम
तूं ही अकार, तूं ही मकार
निरोंकार, तूं ही धनेश।
तूं ही वेद, तूं ही पुराण
तूं ही हदीश, तूं ही कोरान
तूं ही ध्यान, तूं ही ज्ञान, तूं ही भुवनेश ॥
तानसेन कहे ध्यान तूं ही, देन तूं ही रमण।
तूं ही घरि पलयुन।
तूं ही करुण, तूं ही दीनेश।[1]

---

1. विश्वकोष से उद्धृत।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महिमामण्डित सुदीर्घ जीवन के अन्त में निमल आकाश में अस्तगामी दिन-पति (सूर्य) के दिनान्त के अवसान समान दीप्त गौरव के रक्तसमुद्र में जिस दिन सहसा उनकी जीवन-तरणी निमज्जित हुई थी, वह केवल आगरा नगरी एवं तदानीन्तन क्षुद्रायतन मुगल साम्राज्य ही निदारुण शोकावेग में मुह्यमान नहीं हुआ था, बल्कि मर्मान्तिक वियोग-दुःख-प्रवाह समग्र उत्तर भारत को भी पूर्णतः परिप्लावित और आलोडित कर दिया था। 'आइने-अकबरी' प्रणेता अबुल फजल ने ठाक ही कहा है—"तानसेन के समान गायक विगत सहस्र वर्षों में भी जन्मा नहीं।" तानसेन के पूर्वकाल के और परवर्ती काल के गायकों का इतिवृत्त आलोचना कर देखने पर अबुल फजल के इस मन्तव्य को किसी भी प्रकार अतिशयोक्ति नहीं कहा जा सकता।

तानसेन के स्वरचित गान अब अप्राप्य अवश्य नहीं हैं, किन्तु यह निश्चित रूप से बताना कठिन है कि आज प्रचलित गानों में से कौन-से उनके द्वारा रचित हैं और कौन-से अन्यों द्वारा। यहाँ हम उनके युवावस्था में रचित एक गान उद्धृत करते हैं :

राग-सूहा कान्हड़ा—ताल चतुस्रजाति चौताल : मात्रा 12 (4-4-2-2)

मन गज भयो अर समान अत मद माती अत प्रबल चरड मरड हे,
प्रचण्ड शठ दारिद्र अष्टांग कारो ।।मन०।।
उरब तुरब धुंधकार मदन दुहाई ताकी घेरे ताना घेरे गाये,
सनमुख होत जाकों सुंड वारो ।।मन०।।
इमंद इमंद कीमंद कुकुभ बहु प्रबल फनी फुंकारो।
तानसेन को डारे कारे आगे तब
एकदन्त दूजी शुण्ड से उठारो ।।मन०।।[1]

अन्त में मेरा निवेदन यह है कि 'हिन्दुस्थानी संगीत में तानसेन का स्थान' पुस्तक के प्रथम संस्करण की अपेक्षा द्वितीय संस्करण अधिकतर शोभन बन जाने की आशा है, अतः पाठक-समाज में उसका विशेष आदर होगा। पुस्तक के शोभनीय होने की अपेक्षा उसकी विषयवस्तु यदि पाठकों का कौतूहल निवारण कर संगीत का मंगल कर सके तो लेखक और प्रकाशक का श्रम सार्थक होगा।

इस द्वितीय संस्करण के प्रकाशन-कार्य का निरीक्षण प्रसिद्ध गीति-कवि और विख्यात संगीत-पत्रिका 'संगीत विज्ञान प्रवेशिका' के सुयोग्य सेक्रेटरी श्रीयुक्त विनयभूषण दासगुप्त महाशय ने किया है; इसके लिए उन्हें आन्तरिक धन्यवाद।

'हिन्दुस्थानी संगीत में तानसेन का स्थान' में मुद्रण-भूल की ओर यदि सुधी पाठकवर्ग संशोधन-सह सूचना देंगे तो इसकी मार्जना की जा सकेगी।

गोरीपुर,
मयमनसिंह

—श्री वीरेश्वर बागची

1. गान गुजरात प्रदेशान्तर्गत भावनगरवासी पण्डित श्रीयुक्त द्राह्यालाल शिवराम महाशय के 'संगीत कलाधर' नामक सुबृहत् ग्रंथ से उद्धृत।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चतुर्थ संस्करण का निवेदन

पच्चीस से भी अधिक वर्ष पूर्व मेरे जन्मस्थान मयमनसिंह, गौरीपुर से 'हिन्दुस्थानी-संगीत में तानसेन का स्थान' ग्रंथ पहली बार प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ का आख्यान-विषय दो सुविख्यात संगीत-दरबारों के ऐतिह्य (ऐतिहासिक वृत्तान्त, परम्परा) से संगृहीत है। एक है कलकत्ता स्थित स्वर्गीय महाराजा यतीन्द्र-मोहन ठाकुर के दरबार के आश्रित पण्डित और गुणीमण्डली का विवरण; दूसरा है शतवर्ष स्थायी अयोध्या प्रदेश के रामपुर नवाब की सुबृहत् संगीतशाला में सुरक्षित सेनी वंश की आख्यायिका। इन दोनों वृत्तान्तों में परस्पर विरोधी विशेष कोई तथ्य नहीं मिले; क्योंकि एक ही सेनी वंश के विभिन्न गुणियों ने विभिन्न काल में इन दो दरबारों को अलंकृत किया। रामपुर में थे बहादुर हुसेन खाँ, अमीर खाँ, वजीर खाँ और महम्मद अली खाँ, तथा महाराजा यतीन्द्रमोहन ठाकुर के दरबार से जुड़े हुए थे बासत् खाँ, उनके पुत्र अली महम्मद खाँ (बड़कू मियाँ), कासिम अली खाँ और सैयद महम्मद खाँ (सज्जाद महम्मद)। गुणी घराने में प्रचलित इतिहास का विविध किंवदन्तियों और उपाख्यानों से मिश्रित रहना अस्वाभाविक नहीं है; संगीत ही नहीं, सभी विद्याओं के क्षेत्र में वंशगत इतिहास काल्पनिक कहानियों से युक्त देखे गये हैं। वर्तमान शताब्दी के पूर्व मानव-सभ्यता की ऐतिहासिक दृष्टि उतनी जाग्रत नहीं हुई थी। प्राचीन पण्डित जड़ जगत् के सभी तथ्यों का सूक्ष्म अनुसन्धान करने के प्रति काफी कुछ उदासीन थे। ये आदर्शवादी थे; इसीलिए कई बार कल्पना का सहारा लेने में वे द्विधा अनुभव नहीं करते थे। उनके द्वारा प्रदत्त विवरणों की भित्ति पर मेरे इस ग्रंथ की रचना करने में मैंने एक साहित्यिक सान्त्वना अनुभव की है, यद्यपि इसमें ऐतिहासिक दोष, त्रुटि हो सकती है।

मेरे यौवनकाल में रचित यह ग्रंथ जब मैंने कवि-गुरु रवीन्द्रनाथ के समक्ष मेरी श्रद्धाभिव्यक्ति रूप में प्रस्तुत किया, तब उन्होंने मुझे लिखा था कि 'मेरे द्वारा लिखित तानसेन की जीवनी इतनी चित्ताकर्षक हुई है कि इसे पढ़ना आरम्भ करने पर उसके समाप्त न होने तक वे अन्य किसी ग्रंथ को पढ़ने में प्रवृत्त नहीं हुए।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मेरे जैसे सामान्य लेखक के लिए आनन्द और गौरव का विषय और क्या हो सकता है कि यह रचना कविगुरु को तृप्त कर सकी।

अन्त में चतुर्थ संस्करण सर्वांग सुन्दर और निर्मूल प्रकाशन के लिए मैं प्रकाशक बन्धु श्री सौरेन्द्रनाथ मित्र के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने प्रयास किया और सुपरामर्श प्रदान किया।

कलकत्ता
जन्माष्टमी, 1373 (ई० 1966)
बंगाब्द

—ग्रंथकार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पूर्वाभास

संगीत विद्या कई सदियों से प्रचलित है। प्राचीन काल के विशिष्ट संगीताचार्यों के नाम संगीत-रत्नाकर में मिलते हैं, यथा—विसाखिल, दत्तिल, कोहल, वायु, विश्वादसु, रम्भा, अर्जुन, नारद, तुम्बुरु, हनुमान, मातृगुप्त, रावण, नन्दिकेश्वर, बिन्दुराज, क्षेत्रराज राहुल, रुद्रसेन, भोज एवं व्याख्याकर्ताओं में हैं लोल्लट, उद्भट, संकुट, अभिनव गुप्त। हिन्दुस्थानी संगीत का चरम उत्कर्ष हरिदास स्वामी के समय में दिखायी दिया।

सभी संगीताचार्य सामवेद को संगीत का उत्स रूप मानते हैं। ब्रह्मा से वेद की उत्पत्ति है। मतान्तर से महादेव के पंचमुख से पाँच राग और पार्वती के मुख से एक—इस प्रकार छः रागों की उत्पत्ति मानी गयी है। इसके पश्चात् ब्रह्मा ने छः ऋतुओं के अनुसार छः रागों का व्यवहार किया; जैसे ग्रीष्म में दीपक, वर्षा में मेघ, शरत् में भैरव, हेमन्त में श्री, शीत में मालकोश और वसन्त में हिन्दोल। इन छः रागों की छः-छः भार्याओं के हिसाब से छत्तीस रागिनियों की उत्पत्ति हिन्दुस्थानी संगीत के इतिहास में मिलती है, यद्यपि इनके बारे में कोई प्रमाण नहीं मिलता। इस परम्परा-प्रसिद्ध वृत्तान्त के अनुसार ब्रह्मा ने शिव से छः राग सिंह छत्तीस रागिनियों की उपलब्धि कर उनकी शिक्षा भरत, नारद, रम्भा, हाहा, हुहु, तुम्बुरु को दी। इन्होंने इनसे 48 उपरागों की सृष्टि की। रामायण में रामचन्द्र की सभा में लव-कुश द्वारा संगीत-प्रस्तुति का प्रमाण मिलता है। महाभारत-युग में कृष्ण की वंशी-ध्वनि से वृन्दावन प्रतिध्वनित हो उठा था। उस काल में सोलह हजार गोपियों में प्रत्येक द्वारा एक रागिनी की सृष्टि से पुराण में सोलह हजार रागिनियों के नाम मिलते हैं। अर्जुन उत्कृष्ट नर्तक और गायक थे। पाण्डवों के अज्ञातवास के समय वे बृहन्नला रूप में विराट राजा के संगीत-अध्यापक हुए। इन्द्रप्रस्थ में युधिष्ठिर की राज्य-प्राप्ति के बाद सम्भ्रान्त महिलाएँ नृत्य, गायन एवं वादन करती थीं। कायश के प्रपौत्र (ई० पू० 2000) जुवाल ने हार्प की सृष्टि की। उसे बजाकर उपासना और अन्यान्य कार्य सम्पन्न होते थे। अन्ध कवि होमर ने ट्राय-युद्ध के समय (ई० पू० 1183) हार्प बजाकर यूनानियों को मंत्रमुग्ध कर दिया था। अलेक्जेण्डर के दरबार में (ई० पू० 330) गायन-वादन के अनुशीलन का इतिहास मिलता है। प्यूनिक युद्ध के समय रोमवासियों के भेरी बजाने का उदाहरण मिलता है। क्लोपेट्रा (ई० पू० 40) के दरबार में संगीत-अनुशीलन (हार्प आदि) का परिचय मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बगदाद के हारुन-अली-रसीद (ई० 836) ने संगीत की उन्नति के लिए कार्य किया। गजनी के महमूद (ई० 1017) के कन्नौज-आक्रमण के समय छः हजार गायक थे। सोमनाथ-मन्दिर में दो सौ वेतनभोगी गायक थे। अलाउद्दीन के समय (ई० 1300) में हिन्दुस्थानी संगीत का पहली बार व्यवहार हुआ। बैजु बावरा हिन्दुस्थानी ध्रुपद के प्रथम स्रष्टा थे। इन्होंने संस्कृत में ध्रुव, प्रबन्ध, छन्द से ध्रुपद की सृष्टि की। नायक गोपाल दक्षिण से निमंत्रित किये गये, उन्हें बादशाह के दरबार में स्थान मिला एवं उन्होंने हिन्दुस्थानी संगीत को रूप प्रदान किया।

अमीर खुसरो फारस के अभिजात कवि, गायक और राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने फारसी संगीत के साथ हिन्दुस्थानी संगीत का मिश्रण किया।

किन्तु हिन्दुस्थानी संगीत का प्राथमिक रूप पहली बार विख्यात कवि जयदेव की कृति से मिलता है। उन्होंने केन्दुबिल्व में जन्म ग्रहण किया। उनका 'गीत-गोविन्द' कृष्णलीला से परिपूर्ण है एवं ये काव्य विख्यात राग-ताल से गठित हैं। हिन्दुस्थानी संगीत में 'गीतगोविन्द' अत्यन्त प्राचीन ग्रंथ है। तथापि तत्कालीन राग-रागिनियों के रूप का निर्णय वर्तमान काल में करना सहज नहीं है। किन्तु अलाउद्दीन खिलजी के समय (ई० 1400 का आरम्भ) में दिल्ली के पठान-सम्राट अलाउद्दीन के दरबार में हिन्दुस्थानी संगीत का जो प्राथमिक परिचय मिलता है, उसका ऐतिह्य आज भी लुप्त नहीं हुआ है। इस समय अलाउद्दीन ने अमीर खुसरो को आमंत्रित कर अपनी सभा में विशिष्ट सम्मानित स्थान प्रदान किया। अमीर खुसरो कवि, दार्शनिक, संगीतज्ञ और राजनीतिक थे। अलाउद्दीन के दरबार में उनका आसन मात्र कलाविद् के रूप में ही नहीं, मंत्री और धर्मगुरु के हिसाब से भी उन्होंने विशिष्ट मर्यादा प्राप्त की थी।

जीवन के शेष काल में वे फकीर हो गये। वे सूफी सम्प्रदाय-भुक्त थे। उनके द्वारा रचित कविताओं में गुजराती, फारसी और संस्कृत भाषाओं का समन्वय दिखायी देता है। ये गुजरात में भी कई दिन थे। गायक के रूप में भी उन्होंने अनन्य साधारण प्रतिभा का परिचय दिया। इसी समय में दक्षिण के नायक गोपाल नामक एक दिग्विजयी गायक और पण्डित अलाउद्दीन के दरबार में उपस्थित हुए। अलाउद्दीन ने उन्हें स्थायी रूप से दिल्ली-दरबार में स्थान दिया था। सुना जाता है कि नायक गोपाल जिन सब राग-रागिनियों का आलाप करते, अमीर खुसरो उन राग-रागिनियों को अन्तराल से सुनते और बाद में एक-एक को फारसी नाम देकर उन्हें गाकर सुनाते। जो भी हो, नायक गोपाल ही हिन्दुस्थानी संगीत-पद्धति के प्रथम सूत्रकार या प्रथम औपपत्तिक रूपकार हैं। अमीर खुसरो ने कुछ फारसी 'सुरों' (धुनों या रागिनियों) का प्रचलन इस देश में किया। उनके नाम हैं—साजगिरि, यमन या ईमन, ओसाक, माफक या दीवान, जीलफ, सरफरदा। इनके अलावा फिरदोस्त प्रभृति ताल भी उनकी सृष्टि हैं। अमीर खुसरो फारसी पद्धति के अनुसार राग-रागिनियाँ गाते थे। उनकी पद्धति में 12 मोकाम या रागों, 24 सुदा या रागिनियों और 48 गुस्वा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

या उपरागों का परिचय मिलता है।

नायक गोपाल ने कुछ रागों की सृष्टि की, यथा पूर्वी, गौरी, गुणकली, खट और देशकार।

अलाउद्दीन के राजत्वकाल में बैजू बावरा नामक तृतीय संगीत-कलाविद् का परिचय मिलता है। बैजू सिद्ध पुरुष थे। वे जंगल में निवास करते थे। सुना जाता है कि उनके गायन के समय वन्य पशु भी मुग्ध होकर उनके पास आ जाते थे। उनकी प्रतिभा की खबर अलाउद्दीन को मिलने पर बादशाह ने उन्हें दरबार में आने लिए आमंत्रित किया। इस समय नायक गोपाल और अमीर खुसरो दरबार में थे। बैजू का कण्ठ स्वर और गायन उनकी अपेक्षा अधिक श्रुतिमधुर था। पाण्डित्य में नायक गोपाल और अमीर खुसरो श्रेष्ठ होते हुए भी कलाविद् रूप में बैजू की तुलना नहीं थी। नायक गोपाल प्राचीन ढंग के छन्द-प्रबन्ध युक्त हिन्दुस्थानी गान गाते थे, किंतु बैजू ने चार तुक या कलि युक्त ध्रुपद गान का प्रथम बार प्रवर्तन किया। ध्रुपद के चार तुकों के नाम हैं—स्थायी, अन्तरा, सञ्चारी और आभोग। इस समय से ही छन्द, प्रबन्ध के बदले ध्रुपद ने ही हिन्दुस्थानी मार्ग संगीत में प्रधान स्थान प्राप्त किया। बैजू दरबार में अधिक समय तक नहीं रहते थे। किन्तु उनके द्वारा प्रवर्तित ध्रुपद पद्धति का अनुसरण कर नायक गोपाल ने कई ध्रुपदों की रचना की। उनके द्वारा रचित ध्रुपद के पद अत्यन्त सुललित और मधुर हैं। बैजू और नायक गोपाल के बाद दो सौ वर्षों में प्रसिद्ध ध्रुपद संगीतनायक और कोई दिखायी नहीं देता, क्योंकि इस समय में उत्तर भारत में राष्ट्रविप्लव के कारण उच्चस्तरीय संस्कृति के अनुशीलन का अवकाश कम हो गया था। उसके पश्चात् षोडश शताब्दी के प्रारम्भ में ग्वालियर-महाराजा मान (जयपुर के मानसिंह नहीं) ने हिन्दुस्थानी संगीत का पुनरुत्थान किया। ये एक विख्यात संगीतप्रिय राजा थे। इनका राजत्व-काल ई० 1486 से 1516 तक 31 वर्ष था। उन्होंने मृगनयनी नामक एक गुजराती राजकन्या के साथ विवाह किया। कर्नल केनिहम ने अपने ग्रन्थ 'Archcological Report of Gwalior' में लिखा है कि महाराजा मान ने मालव-गुर्जरी, मंगल-गुर्जरी और बाल-गुर्जरी रागों की सृष्टि की। मृगनयनी संगीत-शास्त्र में विशेष विज्ञ, कुशल थीं। महाराजा मान के स्वर्गवास के बाद भी रानी मृगनयनी की सभा में संगीत के विशेष अनुशीलन का इतिहास मिलता है।

राजा मान की मृत्यु के समय तानसेन की आयु बीस वर्ष थी। इस हिसाब से तानसेन का जन्म वर्ष ई० 1506 समझा जाता है। बीस वर्ष की आयु में वे रानी मृगनयनी के दरबार में आये थे। उसके पूर्व उन्होंने हरिदास स्वामी से दस वर्ष तक संगीत-शिक्षा ग्रहण की थी। दस वर्ष की आयु में पिता-माता का साथ छोड़कर उन्होंने हरिदास स्वामी के पास वृन्दावन में संगीत-शिक्षा ग्रहण करना आरम्भ किया, यहीं पर उनका उपनयन-संस्कार हुआ। शिक्षा समाप्त कर घर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पहुँचने के बाद ही उनके पिता का स्वर्गवास हुआ। पितृ-वियोग के बाद माता को लेकर वे पुनः वृन्दावन के लिए रवाना हुए। मार्ग में ही माता का देहान्त हो गया। मृत्युकाल के समय उनके पिता उन्हें कह गये थे कि हजरत महम्मद गौस के पास वे अवश्य जाएँ।

मियाँ तानसेन की विस्तृत जीवनी परवर्ती अध्याय में···

20810

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिन्दुस्थानी संगीत में तानसेन का स्थान

मियाँ तानसेन को आर्यावर्त के आबाल-वृद्ध-वनिता सभी आज भी याद करते हैं। आज भी उनकी स्मृति हिन्दुस्थान में अमर है—मैं मानता हूँ कि इस धरातल पर हिन्दुस्थानी संगीत जितने दिन कायम रहेगा – राग-रागिनियों का नाम शत-रूपान्तर के बीच भी जितने दिन तक विलुप्त नहीं होगा तब तक तानसेन का नाम कोई भूल नहीं सकेगा एवं जगदीश्वर के समक्ष मेरी यही प्रार्थना है कि ऐसे दुदिन हिन्दुस्थान में कभी न आयें, जबकि तानसेन का नाम तक विस्मृति के अतल में डूब जाएगा। किन्तु जब तक हिन्दुस्थान की मिट्टी का पूर्णतया क्षय नहीं होगा, जब तक हिन्दू संगीत रूप में कुछ रहेगा, तब तक नादविद्यारूपिणी वाग्देवी के वरपुत्र रूप में तानसेन कलाविद् एवं गुणी समाज में ही नहीं, आबाल-वृद्ध-वनिता सभी के अंतर में श्रद्धा और पूजा के आसन पर चिरदिन प्रतिष्ठित रहें--संगीत का हीनतम साधक मैं आज संगीत की अधिष्ठात्री देवी के चरणों में हाथ जोड़कर यही प्रार्थना कर अपनी पुस्तक आरम्भ करना चाहता हूँ।

मियाँ तानसेन के सम्बन्ध में कई कहानियाँ, आख्यायिकाएँ बाल्यकाल से ही हम सुनते आ रहे हैं, किन्तु उनके सम्बन्ध में ऐतिहासिक आलोचना बंगला साहित्य में कम ही प्रकाशित हुई हैं,—इसीलिए बंगाली पाठकों और संगीत रसिकों के हृदय में यथार्थ अनुसंधान-प्रवृत्ति जाग्रत करने के लिए मैं यह पुस्तक लिख रहा हूँ। जो तानसेन के सम्बन्ध में ऐतिहासिक तथ्य जानने के लिए यथार्थ में उत्सुक हैं, वे अबुल फजल लिखित अकबर बादशाह के दरबार सम्बन्धी विवरण में उनके सम्बन्ध में कुछ-कुछ जानकारी प्राप्त कर सकेंगे, और अधिक विस्तृत विवरण 'तुहफतुलू हिन्द', 'खुलासतुल एश', 'कनीजुल् अफादात', 'नूरुल हदायक' और परलोकगत सुप्रसिद्ध शाहबजादा सादत् अली खाँ साहब प्रणीत 'फिलस्कह मौसिकी' नामक पुस्तक का पाठ करने पर मिल सकेगा। हमने बड़े प्रयास के बाद उल्लिखित पुस्तकों में से एक-दो का संग्रह किया था—इनके अलावा सुप्रसिद्ध पण्डित सुदर्शनाचार्य शास्त्री प्रणीत संगीत विषयक पुस्तक का पाठ करके भी हमने अपनी इस पुस्तक के लिए कुछ उपकरण एकत्र किये हैं—तानसेन के वंशधर परलोकगत सुप्रसिद्ध उस्ताद महम्मद अली खाँ साहब के मुँह से एवं तानसेन के दोहित्र वंशीय परलोकगत सुप्रसिद्ध वजीर खाँ साहब के वणन से भी इस पुस्तक का विवरण प्रमाणित होता है। इसके अलावा अब तक अप्रकाशित एक प्राचीन बंगला पुस्तक में भी हमारे विवरण के साथ हूबहू मेल खाने वाला काफी कुछ विवरण देखा गया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। यह पुस्तक भी यथार्थ अनुसंधानी एक संगीत रसिक द्वारा रचित है। सर्वोपरि महत्त्वपूर्ण है ऑल इण्डिया म्यूजिकल कांफ्रेंस के दिल्ली अधिवेशन में परलोकगत सादत अली खाँ साहब द्वारा तान्सेन की जीवनी, उनके गुणों, उनकी विदग्धता और उनकी वंश परम्परा के सम्बन्ध में अंग्रेजी में विशद रूप से दिया गया वक्तव्य। उत्सुक पाठक उसे पढ़ सकते हैं—'आल इण्डिया म्यूजिकल कांफ्रेंस' के दिल्ली अधिवेशन की विवरणी में उसका संक्षिप्त विवरण मिलेगा।

लखनऊ के प्रसिद्ध ठाकुर ने अपनी संगीत विषयक पुस्तक 'मआरिफुन्नगमात्' के द्वितीय खण्ड की भूमिका में लिखा है—"आधुनिक गान विद्या किसी संगीत-पुस्तक के अनुसार नहीं है। लेकिन जो विराज आजकल प्रचलित है, उसका प्रमाण अगर कहीं मिल सकता है तो तानसेन के खानदान से। यह खानदान जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर आजम के समय से अब तक गान विद्या के अभिज्ञों में अद्वितीय है।" अर्थात् आधुनिक गान विद्या का प्रमाण-मात्र तानसेन और उनके वंशजों में ही मिलता है। किसी भी संस्कृत ग्रंथ के साथ वर्तमान युग का हिन्दुस्थानी संगीत मेल नहीं खाता। इस तथ्य को हमें स्मरण रखना चाहिए। आजकल राग-रागिनी के जिस रूप के साथ हम परिचित हैं—उन सबके स्रष्टा नारद, भरत, हनुमान या कोई ऋषि-मुनि नहीं हैं। उनकी सृष्टिधारा का काफी रूपान्तरण हुआ है और इस प्रकार की प्रक्रिया से उसने आधुनिक रूप धारण किया है। आज के रूपान्तरण में जिनकी प्रेरणा का प्रत्यक्ष परिचय मिलता है, वे तानसेन के अलावा और कोई नहीं हैं। तानसेन ने भी यह प्रेरणा अपने गुरु स्वामी हरिदास से पायी थी। संगीत के वर्तमान युग को तानसेन का युग कहा जा सकता है। स्वामी हरिदास ने अपने अन्तर में संगीत-देवी का जो मंत्र और जो ध्यानमूर्ति साधारण प्रेरणा स्वरूप पायी थी, तानसेन ने उसी को प्राणवान् कर संसार के सामने रखा है। स्वामी हरिदास देवर्षि नारद के अवतार थे। उनकी सृष्टि भगवत् पदारविन्द में अंजलि देने के लिए थी,—तानसेन ने उस सृष्टि के उत्स से एक धारा जगत् की ओर प्रवाहित कर दी जगत् को संगीत-सुधास्रोत से सुशीतल करने के लिए। वर्तमान संगीत-मन्दाकिनी के पिता हैं स्वामी हरिदास, और तानसेन भगीरथ के समान उस प्रवाह का आह्वान कर सुरतरंगिनी जाह्नवी के समान ही जगत् के असंख्य तृषित, तपित जनों के अंतर को शान्त, शीतल करने के लिए ले आये।

अबुल फजल के इतिहास से हमें पता चलता है कि तानसेन के जन्म के पूर्व एक हजार वर्ष की अवधि में उनके समान गुणी और संगीत-स्रष्टा का जन्म नहीं हुआ। उनके गुरु स्वामी हरिदास की बात अवश्य अलग है। इसके अलावा उनके पूर्व जो नायक, गुणी, गंधर्व हुए थे, जिनके बारे में सबको स्मरण था, उनमें से कोई भी तानसेन की छाया के समान भी नहीं थे एवं अबुल फजल की धारणा थी कि संगीत का ऐसा नबी (पैगंबर) संभवतः दुनिया में और कभी आविर्भूत नहीं होगा। किन्तु हमारी कामना है कि विश्व की सृष्टिधारा का उत्तरोतर उत्कर्ष हो, शत हरिदास, शत तानसेन हिन्दुस्थान में और आविर्भूत हों। जो कुछ था, उससे बड़ा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कुछ होगा नहीं, उससे विशद सृष्टि होगी नहीं, ऐसा कौन कह सकता है?

किन्तु यह सत्य है कि स्मरणातीत काल की बात छोड़ देने पर ऐतिहासिक युग में संगीत का जो निदर्शन हमें मिलता है, उससे ऐसी प्रतीति होती है कि स्वामी हरिदास और तानसेन के युग में ही संगीत का चरमोत्कर्ष हुआ था।

तानसेन के युग के सम्बन्ध में ठीक जानने के लिए उसके पूर्ववर्ती समय से हमें आलोचना शुरू करनी होगी। साहित्य, धर्म, शिल्प और सभ्यता के सभी क्षेत्रों में यही सत्य परिलक्षित होता है कि जब भी किसी अलौकिक महत् का आविर्भाव हुआ है, उसके ठीक पूर्ववर्ती अवस्था अवनति सूचक, मलिन और तमोग्रस्त देखी गयी है। श्रीकृष्ण ने जिस प्रकार कहा है, "यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ गीता—4/7॥ सभी क्षेत्रों में ऐसी ही स्थिति है। आर्ट के क्षेत्र में भी जब ग्लानि की चरम अवस्था उपस्थित होती है, तभी अलौकिक शक्तिसम्पन्न किसी शिल्पी का आविर्भाव होता है। जगत् की समस्त आश्चर्यजनक सृष्टि का यह रहस्य है। वास्तव में अलौकिक शक्तिसम्पन्न व्यक्ति उस सूक्ष्म जगत् की शक्ति की लीला के यंत्र हैं—सूक्ष्म जगत्वासी देववृन्द के वाहन मात्र।

देवताओं की कृपा काल सापेक्ष है। काल (समय) आसन्न था, यह बात हम तानसेन के जन्म के पहले का इतिहास पढ़कर जान सकते हैं। मैंने कहा है—जब भी कोई अभाव भीषण आकार ले लेता है, जब चारों ओर अन्धकार प्रतीत होता है, कहीं भी कोई (शुभ) चिह्न दिखायी नहीं देता, तभी समझना होगा कि आशा का प्रकाश होने में विलम्ब नहीं है। चरम अवस्था ही अभ्युत्थान एवं पतन का पूर्व निदर्शन है। संगीत का सर्वाधिक अंधकार का युग है, मुगल और पठानराजत्व का सन्धिक्षण।

ईसवी 1300 से ई० 1500 तक अर्थात् पठान-साम्राज्य के अवसान और बैजू बावरा, गोपाल नायक और अमीर खुसरो के तिरोधान के बाद प्रायः दो सौ वर्षों तक हिन्दुस्थानी संगीत का अनुशीलन बंद हो गया था। कहना पड़ेगा कि इस सुदीर्घ समय में हिन्दुस्थानी संगीत का प्राणस्पन्दन प्रायः बंद ही था। पंचदश शताब्दी के अंत में ग्वालियर के शासनकर्ता के रूप में महाराज मानसिंह को हम पाते हैं। महाराजा मानसिंह ने ई० 1486 से ई० 1516 तक प्रायः 31 वर्षों तक ग्वालियर का शासन किया। इनकी पत्नी गुर्जर-राजकन्या रानी मृगनयनी संगीत-विद्या में असामान्य प्रतिभासम्पन्न विदूषी थीं।

महाराजा मानसिंह और रानी मृगनयनी दोनों ही हिन्दुस्थानी संगीत के पुनरुत्थान के अग्रदूत थे, इसमें सन्देह नहीं। उनके द्वारा रचित और उनके उद्देश्य से रचित कई गान आज भी हमें मिलते हैं। इस पर बाद में प्रकाश डाला जाएगा।

तानसेन के जीवन में भी रानी मृगनयनी का योगदान सामान्य नहीं है। इसका विवरण हम यथासमय करेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि महाराजा मानसिंह तानसेन के 'सुर'-जगत् के अग्रदूत थे। महाराजा मानसिंह की इहलीला तानसेन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के जन्म के दस वर्ष पहले ही समाप्त हो गयी थी। रानी मृगनयनी और भी बहुत समय तक जीवित थीं।

तानसेन के पिता का नाम है मुकुन्दराम पाण्डे। कोई-कोई उनका नाम मकरन्द पाण्डे भी बताते हैं। मुकुन्दराम भी सुगायक थे और वे वाराणसी में भावभंगी-गीत आदि के साथ पुराणपाठ से जीविकोपार्जन करते थे एवं पाण्डित्य और संगीत में जनसाधारण को विशेष प्रिय थे। उनके पास धन भी प्रचुर था। किन्तु घर मे उन्हें बहुत बड़ा दुःख इस बात का था कि उनकी पत्नी को मृत वत्सा का दोष था। तानसेन या रामतनु के जन्म के पूर्व भी उन्हें कई पुत्र हुए थे, किन्तु एक भी जीवित नहीं रहा। रामतनु के जन्म के पूर्व उन्हें ऐसी खबर मिली कि ग्वालियर में हजरत मुहम्मद गौस नामक एक सिद्ध पीर हैं, जो मृत-वत्सा दोष दूर कर सकते हैं। यह संवाद पाकर मुकुन्दराम ग्वालियर गए, तब हजरत गौस ने उन्हें एक कवच देते हुए कहा कि यह कवच उनकी पत्नी को अपने कण्ठ में धारण करना होगा और सन्तान के जन्म के बाद यही कवच सन्तान के कण्ठ में पहनाना होगा। इसके अलावा हजरत गौस ने कुछ नियमादि भी बताये एवं यह भी आभास दिया कि सभी नियमों का पालन होने पर भावी सन्तान जीवित तो रहेगा ही बल्कि वह एक अद्वितीय विभूति, पुरुष श्रेष्ठ रूप में परिणत होगा। इसके कुछ दिन बाद ही (ई० 1506 में) रामतनु का जन्म हुआ। रामतनु ही मुकुन्दराम का एकमात्र पुत्र था।

रामतनु बाल्यकाल में बड़े दुरन्त, ऊधमी थे। बालक रामतनु पाठ-अभ्यास बिलकुल नहीं करता—वह केवल मैदान, जंगल में, गंगातीर पर या खेत में गायें चराते घूमता रहता था। रामतनु बिलकुल प्रकृति का ही आदर प्राप्त शिशु था। मुकुन्द और उनकी पत्नी रामतनु को डाँटते-फटकारते नहीं थे, क्योंकि रामतनु उनका एकमात्र और बड़े कष्ट से पाया पुत्र था! इस प्रकार रामतनु ने अपनी आयु के दस वर्ष पूर्ण कर लिये। बालक रामतनु में एक आश्चर्यजनक क्षमता थी, किसी भी स्वर को सुनकर वह उसकी अविकल नकल कर सकता था, सभी जीव-जंतुओं की ध्वनि की नकल करने में वह अद्वितीय था और इस नकली स्वर से सभी भ्रम में पड़ जाते।

इसी समय रामतनु के साथ परमभक्त दिव्यगायक हरिदास स्वामी की मुलाकात हुई। यह एक दैव संयोग था—इस समय स्वामी हरिदास अपनी शिष्य-मण्डली के साथ वाराणसी-तीर्थ के लिए आये थे। जब वे वाराणसी की सीमा पर पहुँचे, तब वहाँ वन में रामतनु गायें चरा रहा था। शिष्यों से घिरे एक अपरिचित संन्यासी को देखकर रामतनु विनोद करने के बहाने एक वृक्ष के पीछे छिपकर बाघ के समान जोरदार आवाज करने लगे। उससे शिष्यगण भयभीत हो गये। हरिदास स्वामी का विचार था कि वाराणसी के आसपास बाघ पाया जाना संभव नहीं, अतः उन्होंने शिष्यों को चारों ओर ढूँढ़ने के लिए कहा। शिष्यों ने थोड़े समय में ही वक्ष की ओट में छिपे रामतनु को बाहर निकाल लिया और उसे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्वामीजी के सम्मुख हाजिर कर दिया। स्वामीजी बालक रामतनु के अपरूप रूप-लावण्य और सिद्धजनोचित लक्षण देखकर मुग्ध हो गये। स्वामीजी रामतनु के पिता के पास गये। स्वामीजी ने मुकुन्दराम के समक्ष इच्छा प्रकट की कि 'रामतनु को अपना शिष्य बनाकर मैं अपने साथ ले जाना चाहता हूँ।' पिता मुकुन्दराम ने उनके प्रस्ताव पर साग्रह सम्मति प्रकट की। इसी समय रामतनु की संगीत-दीक्षा हुई और गुरु-शिष्य दोनों वृन्दावन के लिए रवाना हुए। रामतनु या तानसेन के अमर संगीत-जीवन का यहीं से सूत्रपात है। उस समय रामतनु की आयु मात्र दस वर्ष थी।

यहाँ स्वामी हरिदास के सम्बन्ध में कुछ उल्लेख आवश्यक है। 'भक्तमाल' ग्रंथ में ऐसा उल्लेख मिलता है कि हरिदास स्वामी दक्षिणी ब्राह्मण थे, उनके संन्यास-जीवन का ही वृत्तांत मिलता है—यह पता नहीं चलता कि वे बाल-ब्रह्मचारी थे या गार्हस्थ जीवन के बाद संन्यास ग्रहण किया था। किन्तु इतिहास में मिलता है कि वे वृन्दावन में निधुवन में रहते थे और वहाँ पर उन्होंने बाँके-बिहारी नामक एक मणिमय श्रीकृष्ण-मूर्ति की स्थापना की थी। ऐसी जनश्रुति है कि मूर्ति जमीन में गाड़ी हुई थी, हरिदास स्वामी ने दैवी आदेश पाकर उसका जमीन से उद्धार किया और उसकी सेवा में जीवन उत्सर्ग किया। इतिहास में यह उल्लेख भी है कि हरिदास स्वामी सिद्ध भक्त थे और उनके मन में किसी प्रकार का अर्थ-लोभ नहीं था। इसमें सन्देह नहीं कि वे निष्किञ्चन, निष्काम और यथार्थ वैष्णव श्रेष्ठ थे। कई भक्त उनका देवर्षि नारद के अवतार के रूप में कीर्तन-गान करते हैं।

हरिदास का अलौकिक भाव ही संगीत-धारा में विगलित होकर भगवत्-चरणों में उत्सृष्ट हुआ था, इसीलिए उनका संगीत भी अपार्थिव एवं दिव्य गरिमा से मण्डित था। उसे सुनने का सौभाग्य भी बहुत कम लोगों को ही मिला था—मात्र तानसेन ने उस अमर संगीत को सुनने और शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार पाया था। तानसेन के प्रति हरिदास स्वामी की निःस्वार्थ कृपा ही उसका कारण था। तानसेन ने इस दिव्य महापुरुष की कृपा बाल्यकाल में यानी दस वर्ष की आयु में ही प्राप्त की थी। वृन्दावन में स्वामी हरिदास से दस वर्ष तक रामतनु ने निरन्तर शिक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात् रामतनु के पिता का देहावसान हो गया, माता ने भी इसके कुछ समय बाद ही इहलोक का त्याग किया। पिता मुकुन्दराम के अन्तिम समय में रामतनु उपस्थित थे। इस समय पिता पुत्र को अन्तिम बात कह गये कि वे ही रामतनु के एकमात्र पिता नहीं, रामतनु के अन्य एक पिता हैं—उनका नाम है हजरत मुहम्मद गौस, वे ग्वालियर में रहते हैं। मुकुन्दराम रामतनु को अपना अन्तिम उपदेश दे गये कि रामतनु हजरत गौस के परामर्श की कभी उपेक्षा न करें।

वृन्दावन लौटकर रामतनु ने हरिदास स्वामी को अपने पिता का अन्तिम आदेश सुनाया। स्वामीजी की अनुमति लेकर वे हजरत मुहम्मद गौस के दर्शन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हेतु ग्वालियर के लिए रवाना हो गये। ग्वालियर में हजरत मुहम्मद गौस के साथ उनकी मुलाकात हुई। हजरत मुहम्मद गौस ने रामतनु से कहा, "तुम यहीं रहो, मेरी पूरी सम्पत्ति के अधिकारी बनो, मैं तुम्हारा विवाह करा कर तुम्हें गृहस्थ बना दूंगा।" रामतनु ने हजरत गौस के इस अनुग्रह से अपने को कृतार्थ समझा और कुछ दिनों तक वे ग्वालियर में रहे। इस प्रवास के समय रामतनु ने सुना कि ग्वालियर के दिवंगत महाराजा मानसिंह की विधवा पत्नी मृगनयनी उत्कृष्ट गायिका हैं। रामतनु रानी मृगनयनी का गायन सुनने के लिए विशेष उत्कंठित हो उठे, अतः हजरत गौस ने उसकी व्यवस्था करा दी। रानी साहिबा के दरबार में मुहम्मद गौस का बड़ा सम्मान था। उन्होंने रानी से अनुरोध कर राजबाड़ी में रामतनु के निमंत्रित होने की व्यवस्था की। रामतनु निमंत्रित हुए, उन्होंने रानी मृगनयनी का गायन सुना और स्वयं ने स्वामी हरिदास से जो कुछ सीखा था वह भी सुनाया। रानी मृगनयनी ने रामतनु का गायन सुनकर परम सन्तुष्टि का अनुभव किया और प्रतिदिन उन्हें निमंत्रित किया जाने लगा। मृगनयनी के संगीत-मन्दिर में रामतनु के नित्य यातायात से रामतनु के हृदय-मन्दिर में क्रमशः नव देवीमूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा का शीघ्र ही संकेत मिला, हिल्लोल-सा उठा। रानी मृगनयनी की कई शिष्याएँ थीं—उनमें से एक हुसेनी ब्राह्मणी नाम की मुसलमान धर्म में दीक्षित ब्राह्मण ललला ने अपने सौन्दर्य, माधुर्य और सुमधुर संगीत से रामतनु को आकर्षित किया। दोनों ही एक-दूसरे के प्रति घनिष्ठ प्रणय से अभिभूत हो गये और एक-दूसरे को प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो उठे।

रानी मृगनयनी रामतनु से पुत्रवत् स्नेह करती थीं—हुसेनी के प्रति रामतनु के प्रेम को ध्यान में रखकर उन्हें विवाह-सूत्र में आबद्ध करने का उनका भी आग्रह था। हुसेनी का वास्तविक नाम था प्रेमकुमारी। उनके पिता सारस्वत ब्राह्मण थे, किन्तु बाद में वे सपरिवार मुसलमान-धर्म में दीक्षित हुए। प्रेमकुमारी उनकी ही कन्या थी। प्रेमकुमारी का इस्लामी नाम रखा गया 'हुसेनी'—ब्राह्मण कन्या होने के कारण सभी उसे हुसेनी ब्राह्मणी कहकर पुकारते थे।

मृगनयनी ने हजरत मुहम्मद गौस को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने प्रेमकुमारी के साथ रामतनु के विवाह के लिए विशेष अनुरोध किया। गौस ने रामतनु से पूछा कि हुसेनी से विवाह कर वह वास्तव में सुखी होगा या नहीं। रामतनु ने पूर्ण सम्मति प्रकट की और हुसेनी के साथ विवाह कर जातिच्युत होने के लिए भी राजी हो गये। गौस द्वारा रामतनु की सम्मति की सूचना रानी को दी जाने के बाद शीघ्र ही दोनों का विवाह सुसम्पन्न हो गया। रानी मृगनयनी ने प्रेमकुमारी के पिता को बुलाया और स्वयं वर एवं कन्या दोनों पक्षों की कर्त्री बनी—हजरत गौस ने पुरोहित की भूमिका अदा की। इस विवाह के बाद रामतनु का नाम मुहम्मद अता अली खाँ रखा गया। मुहम्मद अली खाँ को विवाह के उपलक्ष्य में रानी मृगनयनी और हजरत गौस से काफी धन यौतुक (दहेज) स्वरूप मिला। बाद में वे स्वामी हरिदास के श्रीचरणों में वृन्दावन लौट आये और पुरी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

घटना उन्हें सुना दी। स्वामीजी उदार पुरुष थे, वहाँ जातिभेद के लिए स्थान नहीं था—उन्होंने रामतनु और मुहम्मद अता अली खाँ में किसी प्रकार का पार्थक्य अनुभव नहीं किया और पहले के समान ही उन्हें सस्नेह ग्रहण किया और उनकी संगीत-शिक्षा पूर्ण की।

हरिदास स्वामी की उदारता से अभिभूत तानसेन अन्तर-बाह्य उनके चिर-दिन के लिए क्रीत दास के समान ही हो गये—गुरु ही उनके जीवन का एकमात्र उपास्य और ध्यान, ज्ञान था—जाति से मुसलमान होते हुए भी गुरुमंत्र और गुरु-प्रदत्त योग को उन्होंने नहीं भुलाया। स्वामी हरिदास ने तानसेन को संगीत की यौगिक साधना सम्पूर्ण रूप में दी थी—इस साधना ने ही तानसेन के लिए काम-धेनु के समान चिरदिन 'सुर' (स्वरसज्जा) की अक्षयधारा प्रवाहित की है और कल्पवृक्ष के समान इच्छाफल प्रदान किया है। देवी-देवता रागरागिनी रूप में मूर्ति लिये तानसेन के समक्ष चिरदिन प्रकट हुए हैं।

तानसेन का दाम्पत्य जीवन भी निष्फल नहीं हुआ। तानसेन की रसिक-विदग्ध पत्नी संगीत में सिद्ध थीं—उन दोनों का प्रणय नादविद्या की सेवा में दिन प्रतिदिन गाढ़तर, मधुरतर होता गया। इस समय ग्वालियर के फकीर गौस का अन्तिम समय आ गया। फकीर साहब ने तानसेन को बुलावा भेजा, तब स्वामी हरिदास ने तानसेन से अविलम्ब ग्वालियर जाने के लिए कहा। तानसेन ने फकीर साहब के अन्तिम समय में अकृत्रिम भक्ति के साथ उनकी सेवा की, मरणोन्मुख फकीर को तृप्त किया और फकीर का अन्तिम आशीर्वाद प्राप्त किया।

फकीर साहब को धनरत्न का अभाव नहीं था—मृत्युशय्या से वह समस्त धन वे तानसेन को दान कर गये। उसके पश्चात् तानसेन कुछ दिन परिवार के साथ ग्वालियर में रहे। किन्तु स्वामी हरिदास के समक्ष योग-साधना और संगीत-शिक्षा के लिए नियमित रूप से जाया करते थे। स्वामी हरिदास ने तानसेन को दो सौ ध्रुपद सिखाये और तानसेन को यह संकेत भी दिया था कि यौगिक सप्त-चक्र से सात स्वरों का प्रकाश योगबल से किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है—गुरुशक्ति के प्रभाव से बाद में तानसेन भी नादसिद्ध हो गये।

तानसेन को गृहस्थाश्रम छोड़कर संन्यासी नहीं बनना पड़ा। गृहस्थ में रहते हुए ही उनकी साधना सफल हुई। संगीत-साधना के समय में ही तानसेन को चार पुत्रों और एक कन्या की प्राप्ति हुई। पुत्रों के नाम हैं—सुरतसेन, शरत्सेन, तरंगसेन और बिलास खाँ, कन्या का नाम है सरस्वती। इन सभी ने नाद-विद्या में सिद्धि प्राप्त की थी एवं उत्तरकाल में सभी ने पर्याप्त सम्मान एवं प्रतिष्ठा प्राप्त की तथा वंश गौरव बढ़ाया था।

तानसेन की संगीत-साधना जब प्रायः पूर्ण हो गयी, तब रीवाँ के महाराज राजाराम तानसेन को वृन्दावन से अपने दरबार में ले गये—रीवाँ के सभागायक के रूप में तानसेन कुछ वर्षों तक रीवाँ में रहे। तानसेन ने राजाराम के नाम से कई गानों की रचना की है—जिनमें से कुछ गान मैं जानता हूं। रीवाँ में कुछ वर्ष

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रहने के बाद तानसेन का भाग्य-सूर्य अचानक उदित हो गया। इस समय में ही अकबर शाह दिल्ली के सिंहासन पर प्रतिष्ठित हुए और रीवाँ-अधिपति राजाराम का अकबर के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित हुआ। अकबर किसी विशेष कार्य के उपलक्ष्य में एक बार रीवाँ आये थे, इस समय वे तानसेन का गायन सुनकर मन्त्र-मुग्ध हो गये। राजाराम ने बादशाह को उपहार-स्वरूप तानसेन को प्रदान किया और बादशाह तानसेन को ससम्मान दिल्ली-दरबार में ले गये (ई० 1556)।

अकबर बादशाह को यदि मध्ययुग का युगप्रवर्तक कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। धर्मशास्त्र, तत्त्वविद्या, साहित्य, शिल्प, संगीत आदि संस्कृति के सभी प्रकार के क्षेत्रों में राजा विक्रमादित्य के बाद इतनी बड़ी प्रेरणा भारतवर्ष में और किसी ने नहीं दी। बादशाह अकबर ने विक्रमादित्य का पदानुसरण कर ही अपने दरबार में नवरत्न-सभा की स्थापना की—तानसेन नवरत्नों में श्रेष्ठतम रत्न रूप में परिचित हुए। बादशाह अकबर के दरबार में तानसेन के अलावा निम्नलिखित और भी संगीत-विशारदों के नाम हमें इतिहास में मिलते हैं—मियाँ खुदाबक्श, मियाँ मस्नद्, अली खाँ, बाबा रामदास, सूरदास (रामदास के पुत्र), ज्ञान खाँ, दरिया खाँ, नौबात् खाँ बीनकार, राजबहादुर, केल शशी, तानसेन के चार पुत्र—सूरतसेन, शरत्सेन, तरंगसेन, बिलास खाँ और तानसेन के शिष्यद्वय—तानतरंग और मानतरंग। इनके नाम ही विशेष उल्लेख योग्य हैं, जबकि इनके अलावा असंख्य गुणी शिल्पी उस समय दरबार में प्रतिपालित हुए थे।

तानसेन के दरबार में रहने के जीवन के सम्बन्ध में हम कई ऐतिहासिक घटनाएँ और प्रायः इसी प्रकार की जनश्रुतियाँ हम सुनते हैं। उनका यहाँ उल्लेख करना प्रयोजनीय है।

तानसेन दरबार के श्रेष्ठतम गायक रूप में बादशाह के असीम सम्मानास्पद तो थे ही, इसके अलावा वे अकबर के सर्वोत्तम एवं सर्वापेक्षा अन्तरंग मित्र थे। तानसेन के बिना अकबर का जीवन नीरस मरुभूमि समान था, तानसेन ही बादशाह के लिए शान्ति और आनन्द का एकमात्र स्रोत थे, तानसेन का संगीत ही उनके जीवन का सारतम रसायन था। इसीलिए अकबर बादशाह तानसेन के बिना एक क्षण भी रह नहीं सकते थे—निशीथ में शयन-मन्दिर में, अन्तःपुर में भी तानसेन का निर्बाध आवागमन था। प्रतिदिन शयन के समय तानसेन के गायन से बादशाह नयन निमीलित करते और प्रभात में पक्षियों की कलकल-ध्वनि के साथ-साथ तानसेन का गान बादशाह की प्रभाती, मंगल-आरती थी। इसीलिए भोर और रात में तानसेन का गायन निर्धारित था, इसके अलावा बादशाह की इच्छा के अनुसार अन्य समय पर भी उन्हें गाना पड़ता था। एक दिन तानसेन अपने संगीत से सिंहासनोपविष्ट बादशाह का ऐसा जीवन्त वर्णन किया कि बादशाह उस दिन अपने गले का मणि-हार उतारकर तानसेन के गले में पहनाये बिना रह न सके। उस दिन से ही तानसेन की 'तानसेन' पदवी हुई थी। बादशाह द्वारा प्रदत्त नाम का अर्थ यह है, कि जो संगीत की 'तान' द्वारा 'सैन' कर सकता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है अर्थात् हृदय द्रवीभूत कर सकता है, वही तानसेन है।

अकबर बादशाह की संगीत-तृष्णा क्रमशः इतनी बढ़ गयी कि अपने दरबार में या विश्राम-भवन में ही तानसेन का गायन सुनकर उन्हें तृप्ति नहीं होती थी—अन्ततः अर्धरात्रि में वे छद्मवेश में तानसेन के निवास पर तानसेन का मुक्त हृदय का, बन्धन मुक्त गायन सुनने जाते थे। एक दिन तानसेन को इस घटना का पता चल गया—उस दिन भी अकबर ने 18 लाख रुपये का अन्य एक हार उन्हें उपहारस्वरूप दिया था।

यह संवाद फैल जाने के बाद अन्यान्य सभी गुणियों में तानसेन के प्रति ईर्ष्या-भाव जाग्रत हो गया और वे ऐसे अवसर का इन्तजार करने लगे या खोजने लगे जबकि तानसेन को लांछित किया जाय। ऐसा सुयोग उन्हें शीघ्र मिल भी गया। तानसेन विशाल हृदय के व्यक्ति थे, धनरत्न के प्रति मोह उनमें नहीं था—खुश मिजाज रहते थे, मस्तमौला की तरह रहते थे, बादशाह द्वारा दिया गया वही हार उन्होंने अचानक बेच दिया। अन्यान्य गुणियों ने यह संवाद बादशाह को बता दिया—बादशाह द्वारा दिया गया उपहार बेच देना सामान्य बात नहीं? बादशाह क्रुद्ध हो उठे और दूसरे दिन उन्होंने तानसेन से पूछा, "तुम्हारा वह हार कहाँ है? तुम जब दरबार में आते हो, तो किसी भी दिन तुम्हारे गले में वह हार दिखायी नहीं देता, ऐसा क्यों? मैं चाहता हूँ कि कल जब तुम दरबार में आओ तब वह हार पहनकर आना।" बादशाह की यह कठोर आज्ञा सुनकर तानसेन ने झुककर कहा, "जहाँपना! वह हार मैंने खो दिया है।" यह सुनकर बादशाह ने क्रुद्ध स्वर में कहा, "यदि तुम वह हार नहीं ला सकते हो, तो यह निश्चित समझ लो कि इस दरबार में अब तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं।"

तानसेन बड़े लज्जित होकर घर लौट आये। वे सोचने लगे कि अब क्या उपाय किया जाय? कहाँ जाऊँ—कहाँ जाने से इस हार की अपेक्षा भी अधिक मूल्यवान हार मिल सकता है—कौन भला देगा—और इस प्रकार के दान की सामर्थ्य भला किसकी है! काफी विचार करने के बाद उन्हें अपने पूर्व प्रभु राजाराम का स्मरण हो आया।

उन्हें लगा कि गुणी प्रतिपालक करुणानिधान रीवाँधिपति राजाराम की उनके प्रति प्रीति अभी तक निश्चय ही समाप्त नहीं हुई है। उसी दिन तानसेन रात्रि में रीवाँ के लिए रवाना हुए। रीवाँ पहुँचकर राजाराम के साथ मुलाकात की। तानसेन ने उनसे कहा, "महाराज! कई दिनों तक आपको कुछ सुना नहीं सका, इसीलिए आज आपको कुछ सुनाने आया हूँ। राजाराम को सुनाने के लिए इस समय उन्होंने दो ध्रुपद पेश किये थे। एक है शुक्ल-बिलावल में 'राजाराम निरंजन', अन्य है मेघ राग में 'मगन रहो रे'।

ये दो गान सुनकर राजाराम मुग्ध हो गये और तत्काल अपने पाँवों से रत्न-जड़ित दो पादुकाएँ खोलकर तानसेन को दे दीं। दो पादुकाओं का मूल्य था पचास लाख रुपये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यह पारितोषिक प्राप्त कर तानसेन रीवाँ से पुनः दिल्ली के लिए रवाना हुए। विदाई के समय जब राजाराम ने दोनों हाथ पसारकर तानसेन का गाढ़ आलिंगन किया तब तानसेन ने भक्ति-भाव से गद्‌गद होकर उन्हें कहा था, "महाराज ! आज से मेरा यह दायाँ हाथ आपका है और किसी के भी अभिवादन के लिए यह हाथ बढ़ेगा नहीं।"

तानसेन ने दिल्ली लौटकर बादशाह के दरबार में जाकर कुर्निश की। बादशाह तब तक काफी नर्म हो गये थे। अकबर बादशाह ने उन्हें बड़े रहस्यमय भाव से पूछा, "अच्छा, वह सब तो हुआ, किन्तु मेरे लिए क्या लाये हो ?" तब तानसेन ने वस्त्र में बँधी पादुकाद्वय निकालकर बादशाह के सामने रखी और कहा, "आपके 18 लाख रुपयों के हार का मूल्य पूरा हो गया, शेष रकम मुझे लौटाने की आज्ञा की जाय।" अकबर ने विस्मय और लज्जा से अभिभूत होकर सिर झुका लिया। तब तानसेन ने कहा, "यह रत्नपादुका सात स्वरों में से एक स्वर के भी तुल्य नहीं है।"

अकबर बादशाह ने एक दिन मियाँ तानसेन से कहा, "तुम्हारा गान ही जब इतना मीठा है तो तुम्हारे गुरुदेव का गान, न जाने और कितना मीठा होगा। तुम्हारे गुरुदेव का गान मुझे सुनाना होगा।" तानसेन ने कहा, "मेरे गुरु योगी पुरुष हैं, वन में निवास करते हैं, वे तो आपकी सभा में आयेंगे नहीं। किन्तु यदि उनका गायन सुनने की इच्छा है तो आपको ही वहाँ जाना होगा ?" बादशाह यह सुनकर तानसेन के भृत्य का वेश धारण कर, गुप्त रूप से स्वामीजी के लिए पारितोषिक स्वरूप बहुमूल्य रत्न लेकर तानसेन के साथ स्वामीजी के पास गये। स्वामीजी की दृष्टि अन्तर्भेदी थी, दोनों को वेखते ही उन्होंने तानसेन को सम्बोधित कर कहा, "अरे तनुया ! बादशाह को एत्ता तकलीफ देकर काहे साथ में ले आया !" विस्मयाभिभूत तानसेन ने बादशाह के आने का उद्देश्य स्वामीजी के समक्ष निवेदन किया। स्वामीजी सम्मत हो गये और आनन्दित चित्त से उन्होंने बादशाह को गायन सुनाया। स्वामीजी के गायन से राग-रागिनियाँ जैसे मूर्ति स्वरूप धरातल पर अवतीर्ण हुईं। आत्मविभोर बादशाह सभी घनरत्न स्वामीजी को देने के लिए आगे बढ़े। तब स्वामी हरिदास ने स्मित हास्य के साथ कहा, "मैं फकीर हूँ—रतन से हमारा क्या काम, जब रतन ही देने माँगो तो ये गान आँख बन्द करके सुनो, जब रतन का दरबार देखोगे लगाये देना।" यह कहकर हरिदास स्वामी ने एक गान गाया, गान के प्रभाव से अकबर ध्यानमग्न होकर जैसे एक अद्‌भुत दृश्य देखने लगे—गान बन्द हो जाने के कुछ क्षण बाद भी उनका ध्यान भंग नहीं हुआ। अन्ततः जब वे बहिर्मुखी हुए तब स्वामीजी ने पूछा—"कुछ देखा ?" बादशाह ने कहा, "यमुनाजी में रतन का एक घाट बना है, गोपिनी लोग जाते हैं, पानी भरते हैं, उठाते हैं और ऐ घाट का एक सीढी में एक जगह टूटा है, कोई गिर जाय इस वास्ते किशनजी वहाँ ही खड़ा होके खबरदारी करते हैं।" स्वामीजी ने कहा, "ठीक है, आप हमको जो रतन देने माँगा ऐ रतन से टूटा सीढ़ी को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बनाय देओ।" तब बादशाह समझे कि स्वामीजी जो चाहते हैं उसे पूर्ण करना बादशाह का काम नहीं है। अन्ततः बार-बार अनुरोध के बाद स्वामीजी ने कहा, "मैं स्वयं तो कुछ लूँगा नहीं; कुंज में पक्षियों के लिए कुछ अन्न-वितरण की व्यवस्था हो जाने पर मुझे खुशी होगी।" अकबर ने इस अन्न-वितरण की व्यवस्था कर दी थी।

मियाँ तानसेन भैरव राग में सिद्ध थे। ऐसी जनश्रुति है कि नायक गोपाल के वंश की किसी महिला ने उन्हें भैरव राग सिखाया था। यह राग वे दरबार में नहीं गाते थे; शाह अकबर के निद्राभंग के समय ही अन्दर महल में इस राग का आलाप करते थे। दरबार में कुछ राग वे अधिक गाते थे; ऐसे राग 'दरबारी' राग नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें से दरबारी कान्हड़ा आज भी राग-विभाग में अत्यन्त उच्च स्थान प्राप्त किए हुए हैं। तानसेन कान्हड़ा राग इतना अधिक अच्छा गाते थे कि बादशाह कान्हड़ा को मियाँ का राग अर्थात् तानसेन का राग कहते थे। यह राग वे अन्य किसी उस्ताद से सुनना ही नहीं चाहते थे। तानसेन दरबारी कान्हड़ा के अलावा अन्य कुछ रागों पर अपने व्यक्तित्व का ऐसा प्रभाव अंकित कर गये हैं कि वह कभी नष्ट नहीं होगा। उदाहरणस्वरूप दरबारी तोड़ी, मियाँ की मल्लार, मियाँ की सारंग प्रभृति का उल्लेख किया जा सकता है। ये सभी 'दरबारी राग' या 'मियाँ के राग' हैं। ये सब राग एवं रागिनियाँ तानसेन और उनके वंशजों से एक विशेष रूप एवं छन्द प्राप्त कर आज भी संगीत जगत् में अपूर्व शक्ति का संचार करती हैं।

बादशाह की प्रीति से तानसेन का भाग्योदय देखकर उनके समसामयिक अन्यान्य उस्तादों के अन्तर में ईर्ष्या का अन्त नहीं था। उन्होंने मन्त्रणा कर तानसेन के जीवन-नाश के उपाय की परिकल्पना की। उन्होंने जाकर बादशाह से कहा, "जहाँपना! हमने दीपक राग कभी सुना नहीं, आपके अनुग्रह से दीपक राग सुनकर हम अपनी कर्णेन्द्रियों को कृतार्थ करना चाहते हैं। मियाँ तानसेन के अलावा और कोई यह राग नहीं जानता।" बादशाह उनके अभिप्राय, कुचक्र को समझ नहीं सके। उन्होंने सहज भाव से तानसेन से कहा, "मियाँ! दीपक राग मैंने कभी सुना नहीं। तुम मुझे सुनाओ।" तानसेन ने कहा कि "दीपक राग गाने पर मेरी मृत्यु हो जायेगी।" किन्तु कुतूहली बादशाह किसी तरह राजी नहीं हुए। अन्ततः विवश तानसेन ने बहुत विचारकर पन्द्रह दिन का समय माँगा।

तानसेन आसन्न विपत्ति को समझ गये और उन्होंने उसके निवारण के लिए उपाय खोज निकाला। दीपक राग का तेज मर्त्य गायक सहन नहीं कर सकते—स्वरों की अग्नि से शरीर तक जल जाता है। उसका प्रतिकार तभी हो सकता है जब कोई उसके साथ ही स्वरों के शीतल जल प्रवाह से उस आग को बुझा सकता है। नादब्रह्म में तेज तत्त्व जिस प्रकार है, उसी प्रकार अप (जल तत्त्व) भी है। रागभेद से विभिन्न तत्त्व प्रकट होते हैं। दीपक के तेज से जिस प्रकार अग्नि की सृष्टि होती है, उसी प्रकार मेघ राग से विपुल जलधारा की वर्षा होती है। इसी-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लिए जब तानसेन के कण्ठ मे दीपक राग उद्दीप्त हो उठे, उसी समय यदि कोई संगीत साधक मेघ राग का आह्वान कर सके तभी तानसेन के जीवन की रक्षा हो सकती है।

यही सोचकर तानसेन ने पन्द्रह दिनों तक अपनी गुणवती सरस्वती और स्वामी हरिदास की शिष्या रूपवती को मेघ राग की शिक्षा दी। बादशाह को उन्होंने अपनी इस स्वीकृति की सूचना दी कि वह दीपक राग गायेंगे।

तानसेन दीपक राग गायेंगे, यह संवाद पूरे राष्ट्र में फैल गया। कोने-कोने से हजार-हजार लोग दिल्ली में एकत्र होने लगे। बादशाह ने उस जनसमूह के बैठने के लिए एक विशाल मैदान में सभा का आयोजन किया। तानसेन दीपक राग गायेंगे, जिससे न जाने कैसी एक अलौकिक घटना घटेगी, यही सोचकर कई मित्रों और सामन्त-राजाओं ने अकबर का अतिथ्य ग्रहण किया।

पन्द्रह दिन की अवधि पूर्ण होने पर तानसेन दरबार में उपस्थित हुए। सभा में जैसे विशाल जनसमूह उमड़ पड़ा था—राजा, वजीर, सैन्यदल और असंख्य प्रजा-मण्डली सभी में चारों ओर आसीन थी। प्रभात में सभा में तानसेन ने दीपक राग का यज्ञ आरम्भ किया। उधर तानसेन के आदेशानुसार सरस्वती और रूपवती ने प्रभात से ही अपने घर में मेघ राग का यज्ञ आरम्भ किया था। तानसेन का उपदेश था कि वे दीपक राग की अर्चना समाप्त कर जैसे ही दीपक राग का गायन आरम्भ करेंगे, उसके साथ ही वे (सरस्वती एवं रूपवती) भी मेघ राग की पूजा समापन कर मेघ का आलाप शुरू करेंगी। मुहूर्त भर की त्रुटि के कारण जैसे किसी प्रकार की आपद् न आ जाय, इसीलिए पहले ही समय का संकेत दे दिया गया था। योग्य संगीत साधिकाद्वय पर यह गुरु भार सौंपकर तानसेन काफी कुछ निश्चिन्त होकर ही सभा में आये थे। यथासमय यज्ञ और पूजा समाप्त होने पर बादशाह ने सभा में आगमन किया। तानसेन ने बादशाह की अनुमति लेकर दीपक राग आरम्भ किया। सभा के चारों ओर कई प्रदीप सजाये गये थे—तानसेन ने बादशाह से यह अनुमति प्राप्त कर ली थी कि प्रदीप जल उठते ही वे गायन बन्द कर देंगे। प्रथम आलाप होने के साथ ही सभा प्रांगण में उपस्थित सभी को ऐसा बोध होने लगा कि उग्र, दुःसह ग्रीष्म का आविर्भाव हो गया है। तानसेन का पूरा शरीर पसीने से तर हो गया। उसके पश्चात् द्वितीय गीतान्त में तानसेन की आँखें रक्तवर्ण हो गयीं। तृतीय गीत के साथ गात्रदाह और चतुर्थ गीत के अवसान के साथ-साथ सभी प्रदीप जल उठे—सभा में जैसे आग भभक उठी।

तब राजा, बादशाह, उमराव, प्रजागण सभी जिधर भी सम्भव हो सका पलायन करने लगे। सभी अपने प्राणों की रक्षा हेतु व्यग्र थे। इसी अवसर पर अर्धदग्धप्राय ताजसेन सभा का त्याग कर द्रुतगति से अपने घर आये। दिल्ली नगर में बड़ी सनसनी फैल गयी और बड़ा कोलाहल मच गया।

इधर घर में तानसेन-दुहिता सरस्वती और साधिका रूपवती ने मेघ राग की पूजा-अर्चना के अन्त में रागालाप शुरू कर दिया था। अर्धदग्धप्राय तानसेन को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

देखकर रूपवती ने मेघ का एक गान गाया। गान शुरू होने के साथ ही आकाश मेघाच्छन्न हो गया जिससे सूर्यदेव मेघ से आवृत्त हो गये और दिल्ली नगर में अँधेरा छा गया। सन्-सन् करती हुई तेज हवा चारों दिशाओं को त्रस्त करने लगी—बिजली की चमक और वज्र के गंभीर गर्जन से एक आकस्मिक तूफान का संकेत मिल गया। इसी समय सरस्वती ने मेघ का द्वितीय गान गाया और साथ-साथ ही आकाश में बादलों की घोर घनघटा छा गयी और जलधारा से धरातल अभिषिक्त होने लगा। इस वर्षा से तानसेन का दग्ध शरीर शीतल हुआ।

पाठकगण इस घटना को रूपकथा, परियों की कहानी न समझें—यह घटना ऐतिहासिक है और इसकी सत्यता के कई प्रमाण आज भी मिलते हैं। इस घटना से हम समझ सकते हैं कि जड़ प्रकृति पर भी संगीत का कितना प्रभाव है।

दीपक राग गाने के बाद तानसेन का शरीर अल्प काल के लिए बिलकुल अक्षम हो गया था, प्रायः एक माह तक उन्हें बिस्तर पर ही रहना पड़ा था। वस्तुतः सरस्वती और रूपवती संगीत के बल से मेघराग का आह्वान न कर पातीं तो उसी दिन तानसेन की इहलीला समाप्त हो जाती। इसीलिए तानसेन दीपक राग कभी अधिक गाते नहीं थे। उनके वंशजों में भी इस राग का अधिक अभ्यास निषिद्ध है, किन्तु अन्यान्य रागों की शिक्षा के बाद इस राग की शिक्षा की प्रथा आज भी उनमें प्रचलित है। हमने तानसेन के दौहित्रवंशीय स्वनामधन्य स्वर्गीय वजीर खाँ साहब के कनिष्ठ पुत्र से इस राग का आलाप और दो-तीन ध्रुपद सुने हैं। कई लोगों का विश्वास है कि दीपक राग भारतवर्ष से लोप हो गया है—यह बात सत्य नहीं है।

संगीत के प्रभाव से प्राकृतिक विपर्यय की बात सुनकर आधुनिक शिक्षित सम्प्रदाय कहेगा—यह सब असम्भाव्य है। मनोबल किस प्रकार जड़ प्रकृति को भी नियंत्रित कर सकता है, इस तत्त्व के विश्लेषण का यह स्थान नहीं है—किन्तु वैज्ञानिक युक्ति से इसे प्रमाणित करना दुरूह नहीं है, इसे कोई शिक्षित व्यक्ति, जिसने पातञ्जल या तंत्रशास्त्र का अध्ययन किया है, जान सका है। पाश्चात्य मनीषियों ने आज अतीन्द्रिय शक्ति के सम्बन्ध में इतने प्रमाण संग्रह कर वैज्ञानिक तत्त्वरूप में कई अलौकिक सत्य की प्रतिष्ठा का प्रयास किया है कि आज इन सब बातों को कल्पना कहकर उड़ा देना सम्भव नहीं है। वास्तव में हमारे भारत-वर्ष के इतिहास की आलोचना के समय अति-लौकिक घटना के बाहुल्य को छोड़ देना असम्भव है। किन्तु जो विश्वास ही नहीं करते उनके साथ जोर-जबरदस्ती नहीं की जा सकती, उसी प्रकार जो अतीन्द्रिय शक्ति की प्रभावशालिता में आस्थावान हैं उनके विश्वास पर सन्देह करने या उसमें बाधा डालने का अधिकार किसी का नहीं है।

दीपक राग से अग्निदाह की घटना के अलावा अन्य राग के प्रभाव से भी दावानल का उल्लेख हमें तानसेन की जीवनी में मिलता है। संगीताचार्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और दर्शन-विशारद् पण्डित सुदर्शन शास्त्री ने अपने संगीत-ग्रंथ में लिखा है, "श्रीहरिदास स्वामी ने अकबर को लंकादहन सारंग सुनाया तो वन में अग्नि लग गयी, अकबर बहुत डर गये, तब स्वामीजी ने तानसेनजी को मेघ राग गाने को कहा। इनके मेघ राग से वर्षा हुई जिससे वह अग्नि शान्त हो गयी।" बादशाह अकबर वहाँ थे इसीलिए हम इस घटना का यहाँ उल्लेख कर सके। संगीत की अलौकिक शक्ति का अन्य एक दृष्टान्त हमें निम्नलिखित घटना से मिलता है।

वाई० एम० सी० ए० विशिष्ट पदाधिकारी विद्वान् और हिन्दू-संगीत प्रेमी रेवरेंड एच० ए० पोपले ने अपने ग्रंथ 'द म्यूजिक ऑफ इण्डिया' में लिखा है—

"Once the Celebrated Tansen was ordered by the Emperor to sing a hight Raga at noon. As he sang, darkness come down on the place where he stood and spread around as far as the sound reached." —Music of India by Rev. H.A. POPLEY

अर्थात्, एक बार बादशाह अकबर ने दोपहर में मियाँ तानसेन को कोई रात्रिगेय राग गाने के लिए कहा था। तानसेन द्वारा वह राग गाये जाने के साथ-साथ ही उनके चारों ओर अँधेरा छा गया और जितनी दूरी तक उनकी आवाज पहुँच रही थी, अँधेरा वहाँ तक फैल गया था।

तानसेन का जीवन कई अलौकिक घटनाओं से परिपूर्ण है। संगीत के प्रभाव से उन्होंने कई बार बादशाह के परिवार के कई सदस्यों की दुस्साध्य व्याधि भी दूर की है। तानसेन इन सब सिद्धियों के लिए गर्व बिलकुल नहीं करते थे। वे कोई जादू नहीं जानते थे; वे कहा करते थे कि परमेश्वर के साथ संयोग से जब युक्तावस्था में अथवा एकाकार रूप में गायन किया जाय तभी इन सब अलौकिक शक्तियों का विकास होता है। इन सबके विकास में उनका अपना हाथ नहीं था, ये सब देव-प्रभाव से घटती थीं। तानसेन का विश्वास था कि यह देवशक्ति सिद्ध फकीर मुहम्मद गौस के आशीर्वाद के फल और स्वामी हरिदास प्रदत्त योगदीक्षा के प्रत्यक्ष प्रभाव के अलावा और कुछ नहीं है।

दीपक राग गाने के फलस्वरूप तानसेन जब कुछ दिनों तक शारीरिक दृष्टि से अक्षम हो गये थे, तब अकबर तानसेन का साथ न पाकर अन्यमनस्क हो गये और शिकार की ओर प्रवृत्त हो गये थे। इस समय में और एक दैवसंयोग उपस्थित हुआ जो भारतीय संगीत के इतिहास में विशेष स्मरणीय है।

अकबर शिकार के लिए सिन्धु देश गये थे। कुछ दिन मृगया के बाद एक बार बादशाह पूरे दिन शिकार की खोज में जंगल में घूमते-घूमते अत्यन्त क्लान्त हो गये थे, तम्बू बहुत दूर था और इधर साथ का पानी भी समाप्त हो गया था। तृष्णा के कारण वे बड़े अधीर हो उठे थे। इस प्रकार की अवस्था देखकर अनुचर यह खोज करने हेतु निकले कि पास में कोई जलाशय है या नहीं। कुछ दूर जाने पर उन्हें अचानक एक उद्यान और एक सरोवर दिखायी दिया। उद्यान में एक उद्यान-रक्षक था, उसने इनसे प्रश्न किया कि वे कौन हैं, और किस उद्देश्य से यहाँ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आये हैं, इन अनुचरों ने बताया कि बादशाह अकबर मृगया के लिए आये हैं और मार्ग में तृष्णा के कारण बड़े कातर हो उठे हैं इसीलिए हम जल की खोज में आये हैं। तब उद्यान-रक्षक वे अनुचरों की इच्छानुसार जल ले जाने की अनुमति दे दी। सरोवर के किनारे पहुँचने पर उन्होंने देखा कि सरोवर के दूसरी ओर एक बृहत् शिव-मंदिर है। मन्दिर के द्वार पर वीणा रखकर एक साधु पूजा में रत है। उन्होंने यह सब देखा किन्तु उद्यान-रक्षक से कुछ नहीं पूछा। पात्र में प्रचुर जल लेकर वे बादशाह के पास गये और उन्हें यह पूरा वृत्तान्त निवेदन किया। तृष्णा-निवृत्ति के बाद बादशाह कुतूहलवश उसी क्षण उस शिव-मंदिर पर आ गये। मन्दिर पहुँचकर उन्होंने देखा कि रक्ताम्बरधारी, रक्तचन्दन-चर्चित, प्रसन्न-वदन, दीर्घाकृति एक वीर-तान्त्रिक अभी-अभी पूजा समाप्त कर वीणा के स्वर मिला रहा है। बादशाह ने भक्तिभाव के साथ उन्हें प्रणाम कर आत्म-परिचय दिया और उनका वाद्य-वादन सुनने की इच्छा प्रकट की। तान्त्रिक ने सहास्य वीणा को स्कन्ध पर उठाकर पूरबी में आलाप शुरू किया।

वीणा की प्रथम झंकार से ही बादशाह चौंक पड़े। इस प्रकार का वीणा-वादन उन्होंने जीवन में कभी सुना नहीं था। तानसेन का गायन सुनते-सुनते अन्य किसी का गायन सुनने की बादशाह की इच्छा होती नहीं थी, किसी तंत्रकार का वादन सुनना तो दूर की बात है। किन्तु यह वीणा-वादन सुनकर बादशाह को ऐसा लगा जैसे किसी ने तानसेन का कण्ठ काटकर वीणा पर लगा दिया है।... वाद्य संगीत इतना उन्नत हो सकता है, यह बादशाह की धारणा के अतीत था। वीणा वाद्य पर आलाप समाप्त होने पर बादशाह ने उस योगी-पुरुष का परिचय जानना चाहा। वे अपना परिचय देना नहीं चाहते थे किन्तु कई बार अनुरोध करने पर उन्होंने बताया, "मेरा नाम मिश्री सिंह है, मैं अजमेर-सिंहलगढ़ के क्षत्रिय नरेश महाराज समुखन सिंह का ज्येष्ठ पुत्र हूँ। मेरे पिता इसी बादशाह के साथ संग्राम में परास्त हुए, उनका राज्य छिन गया और वे निहत हो गये। उसके बाद मैं संसार-राज्य त्याग कर इस जंगल में चला आया—संसार में अब मेरा और कोई नहीं है—केवल वीणा ही मेरा सम्बल है—शाक्तकुल में मेरा जन्म है, अरण्य में तन्त्र साधना और वीणावादन में ही मैं अपना समय व्यतीत करता हूँ।"

अकबर बादशाह यह जानकर कि बादशाह की दिग्विजय के कारण इतने बड़े गुणी राजा का राज्य नष्ट हो गया, बड़े लज्जित हुए। किन्तु मिश्री सिंहजी ने कहा कि राज्य-ऐश्वर्य की बात मुझे भूलकर भी याद नहीं आती, इस अरण्य में रहने में मैं महाशान्ति अनुभव करता हूँ। बादशाह ने उन्हें दिल्ली ले जाने की इच्छा प्रकट की। बादशाह ने उनसे कहा कि "राज्य आपका अवश्य छिन गया है, किन्तु आप बादशाह के दरबार में अत्यंत सम्मानित आसन पर प्रतिष्ठित रहेंगे—मियाँ तानसेन के सहयोगी के रूप में आप बादशाह के दरबार में स्थान प्राप्त करेंगे।" मिश्री सिंहजी संन्यासी नहीं थे—योगी थे, इसीलिए संसार-त्याग ही उनका एकमात्र धर्म नहीं था। किन्तु निर्जन अरण्य का शान्तिपूर्ण आश्रय

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

छोड़कर कोलाहलपूर्ण राजदरबार में जाने के लिए उनका मन मान नहीं रहा था। किन्तु प्रबल प्रतापी बादशाह के एकनिष्ठ आग्रह का उल्लंघन करना भी उन्होंने ठीक नहीं समझा—बादशाह के साथ वे दिल्ली चले गये। मिश्री सिंहजी के सम्बन्ध में इतिहास में हमें भिन्न विवरण मिलता है, वह यहाँ दिया जा रहा है।

यह सत्य है कि सम्राट अकबर के दरबार में तानसेन कंठसंगीत के कोहिनूर थे, किन्तु ऐसा कोई वाद्यवादक नहीं था जो बादशाह का मनोरंजन कर सके। बादशाह वाद्ययंत्र-संगीत के इस अभाव और अपकर्ष को बहुत अनुभव करते थे। एक दिन उन्होंने तानसेन से पूछा कि भारतवर्ष में ऐसा कोई वाद्ययंत्र-वादक है, जिसका वादन सुनकर मन को तृप्ति मिल सकती है। तानसेन ने कहा कि किसी पेशेवर उस्ताद में ऐसी क्षमता नहीं कि वह वाद्ययंत्र-वादन से बादशाह को खुश कर सकता है किन्तु एक राजा हैं, उन्हें यदि बादशाह आमंत्रित करें तो उनका वीणा-वादन सुनकर बादशाह वास्तव में आनन्द अनुभव कर सकते हैं, उनके वीणा-वादन का कोई सानी नहीं। वे हैं सिंहलगढ़ाधिपति राजपूत महाराज समुखन सिंह। तानसेन से यह संवाद पाकर बादशाह ने महाराज समुखन सिंह को निमंत्रण भेजा। महाराज से निवेदन किया गया, "आपने वीणा-वादन की सुख्याति सुनकर बादशाह परम आग्रहवान हैं, और आपका वीणा-वादन सुनने के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हैं, अतः महाराज को अनुग्रह कर दिल्ली में पधारना होगा, चरणरज देनी होगी।"

बादशाह अकबर की नीति ही प्रतिवेशी राजन्यवृन्द के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने की थी—उससे उनका राष्ट्र-नैतिक उद्देश्य भी सफल होता था। ऐतिहासिक इस तथ्य से अवगत हैं कि कई हिन्दू नृपतियों के साथ रक्त-सम्बन्ध स्थापित कर उत्तर भारत में एकछत्र प्रभुत्व का विस्तार वे किस प्रकार कर सके थे। इस मामले में अकबर ने सोचा कि महाराज समुखन सिंह के साथ सांगीतिक सम्बन्ध स्थापित करने के फलस्वरूप सिंहलगढ़ राज्य को भी मित्र राज्य में परिणत किया जा सकेगा। वीणा सुनने के साथ-साथ बादशाह को इससे दोहरा लाभ होगा।

महाराज समुखन सिंह मुगल सम्राट के राजनैतिक उद्देश्य को अच्छी तरह समझते थे—तेजस्वी राजपूत राजा मुगल सम्पर्क को अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते थे। यवन के साथ मैत्री की अपेक्षा विरोध ही वे पसन्द करते थे—यद्यपि वे जानते थे कि इस विरोध का फल है सर्वनाश। इस सर्वनाश को भी उन्होंने चित्तौड़-राजा के समान गौरवमय माना। उन्होंने बादशाह को कहला भेजा कि मैं शिव मन्दिर में पूजासन पर बैठकर महादेव को जो वाद्य सुनाता हूँ वह यवन-राजा के श्रुतिगोचर नहीं हो सकता। बादशाह, चाहें तो वे मेरा राज्य लूट ले जा सकते हैं किन्तु वीणा वे सुन नहीं सकेंगे।

महाराज के इस प्रत्याख्यान से बादशाह बहुत क्रुद्ध हुए। उन्होंने सदलबल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

युद्ध हेतु प्रयाण किया, समुखन सिंह का वध किया और युवराज मिश्री सिंह को बंदी बना लिया। वीणा-वादन में युवराज मिश्री सिंह भी पिता के तुल्य ही थे। बंदीगृह में जब वे छिपकर वीणा-वादन में रत थे तब वीणा-वादन में उनकी दक्षता देखकर बादशाह ने उन्हें मुक्त कर दिया और उन्हें दिल्ली दरबार में आने का आह्वान किया। किन्तु मिश्री सिंहजी सहमत नहीं हुए। बादशाह ने तब तानसेन को उनके पास भेजा। तानसेन ने मिश्री सिंह को कई प्रकार के आश्वासन देकर उनका क्षोभ दूर कर उन्हें दिल्ली-दरबार में वीणा-आलाप करने के लिए राजी कर लिया। इसके फलस्वरूप मिश्री सिंहजी दरबार में विशेष सम्मान के साथ स्वीकार किये गये। श्रेष्ठ क्षत्रिय वंश सम्भूत एवं स्वाधीन नृपति के पुत्र के नाते तो वे सम्मान पाते ही थे, किन्तु इसके अलावा भारत के श्रेष्ठतम वीणा-वादक के रूप में भी उन्हें विशिष्ट सम्मान दिया जाता था। दरबार की गुणी-मण्डली ने एक मत से उन्हें वाद्ययंत्र संगीत के तानसेन के रूप में मान लिया और मियाँ तानसेन ने भी उन्हें बादशाह की संगीत-सभा के एक प्रधान गुणी के रूप में स्वीकार कर लिया। मिश्री सिंहजी की भूयसी प्रशंसा चारों दिशाओं में फैल गयी। उन दिनों संगीत पूर्ण संगति-विशिष्ट था। गीत, वाद्य और नृत्य इन सबकी संगति को संगीत कहा जाता था। गायन, मृदंग-वादन, वीणा-वादन और नट-नटी का नृत्य—इन सबके समावेश से उस समय में संगीत एक अपूर्व सामंजस्य प्राप्त करता था, जिसकी आज हम कल्पना भी नहीं कर सकते। तानसेन के साथ संगति के लिए उपयुक्त वीणा-वादक थे मिश्री सिंहजी। बादशाह के दरबार में जिस संगति का अभाव था, मिश्री सिंहजी के आविर्भाव से वह दूर हो गया। इसके पश्चात् तानसेन के गान के साथ सर्वदा मिश्री सिंहजी का वीणा-वादन होता था। तानसेन ध्रुपद की रचना कर जिस प्रकार गाते थे, मिश्री सिंहजी तदनुरूप ही वह वीणा पर बजा देते थे। इस प्रकार कुछ समय तक बादशाह के दरबार में अपूर्व संगत चलती रही।

किन्तु कुछ दिन बाद ही इस संगति में असंगति का सूत्रपात हो गया। क्रमशः गुणों की श्रेष्ठता को लेकर दोनों में द्वन्द्व और प्रतियोगिता की वृत्ति का उदय हो गया—विरोध भी बढ़ने लगा। अन्ततः एक दिन तानसेन ने जान-बूझकर ही ऐसे तानयुक्त गीत की रचना की जो वीणा पर बजाया नहीं जा सकता। वादन-दक्षता कितनी भी क्यों न हो, वीणा के स्वर तो पर्दे-पर्दे पर ही हैं, और गायक का कण्ठ मुक्त विहंग के समान गतिशील है—गले का गायन वाद्ययंत्र पर आखिर कितना बज सकता है! इसके फलस्वरूप वह गान मिश्री सिंहजी बजा नहीं सके। उन्होंने अपमानित बोध किया, उन्होंने ऐसा भी माना कि उन्हें लांछित, पराभूत करने के लिए ही तानसेन ने इस प्रकार की रचना की है। उन्होंने तानसेन से उनके अभिप्राय, आंतरिक भाव के बारे में पूछा और यह भी कहा कि संगीत में इस प्रकार का आचरण साधुता का परिचायक नहीं है। तानसेन ने भी उसका रूढ़ उत्तर दिया। मिश्री सिंहजी खड्गधारी शाक्त क्षत्रिय थे, वे क्रोध संवरण नहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कर सके—कक्ष स्थित खड्ग निकाल कर तानसेन के शिरोदेश पर आघात किया—तानसेन के कपाल से रक्त बहने लगा। इसके पश्चात् जब मिश्री सिंहजी संयत होकर विचार करने लगे तब उनके ध्यान में आया कि बड़ा गर्हित काम हो गया; उसी समय वह तलवार हाथ में लिये दरबार का त्याग किया और दिल्ली छोड़कर लापता हो गये। इसके पश्चात् कई दिनों तक उनका कोई पता नहीं चला।

इस आघात से उभरने और आरोग्य लाभ करने में तानसेन को छः माह लगे। इधर मिश्री सिंहजी पहले की तरह वन-वन में विचरण कर समय बिताने लगे। तीन वर्ष बीत जाने के बाद अकबर बादशाह के वजीर नवाब खानखाना के साथ मिश्री सिंहजी की मुलाकात हुई। वजीर उन्हें अभयदान कर अपने निवास पर ले आये एवं बाद में बादशाह से कहा, "मिश्री सिंहजी मिल गये हैं, और वे मेरे आश्रय में ही हैं। हुजूर का यदि आदेश हो तो मैं उन्हें दरबार में ले आऊँ।" मिश्री सिंहजी का संवाद पाकर बादशाह बहुत ही आनन्दित हुए, क्योंकि उस समय में इस प्रकार का वीणा-वादक और कोई नहीं था—किन्तु मिश्री सिंहजी कानूनन दण्डनीय हैं, इसलिए बादशाह ने वजीर से एक कौशल तरकीब निकालने के लिए कहा। उन्होंने कहा, "इसका प्रचार करने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि तानसेन को खबर लगने पर वे (तानसेन) उनके (मिश्री सिंहजी के) नाम पर अभियोग लायेंगे। ऐसा होने पर बाध्य होकर मुझे कानून की खातिर दण्ड देना पड़ेगा। अब ऐसी कोई तरकीब करो या रास्ता निकालो जिससे तानसेन का उन पर क्रोध शांत हो जाय।" बादशाह का यह मन्तव्य सुनकर वजीर ने तानसेन और मिश्री सिंहजी के पुनर्मिलन के उपाय पर विचार कर यह निश्चित किया कि किसी प्रकार तानसेन को अपने (वजीर के) निवास पर आमंत्रित कर दोनों का मिलन कराना होगा।

यह स्थिर कर उन्होंने इस बात का प्रचार कर दिया कि उनके (वजीर के) निवास पर एक महिला बीनकार आयी है। यह खबर तानसेन तक भी पहुँची। उन्होंने व्यग्र होकर तथाकथित महिला-बीनकार को दरबार में लाने के लिए बादशाह से प्रार्थना की। वजीर ने तानसेन के सामने ही बादशाह से कहा, "यह महिला पर्दानसीन है, दरबार में कैसे आयेगी ? किन्तु आप अनुग्रह कर यदि मेरे निवास पर पदार्पण करें तो उनका वादन सुना सकता हूँ।" इसे सभी ने स्वीकार कर लिया। दिन निश्चित हो गया, बादशाह, तानसेन और अन्यान्य गुणीजन यथासमय वजीर के निवास पर उपस्थित हुए। वीणा-वादन शुरू हुआ। सभी एकाग्रचित्त होकर सुनने लगे। तानसेन थोड़ा सुनकर ही बोल उठे, "यह महिला नहीं है, यह मेरा दुश्मन है।" यह बात सुनकर वजीर ने कहा, "नहीं, यह महिला है। किन्तु आप यदि मिश्री सिंहजी का कसूर माफ करें तो परदा उठाकर दिखा देता हूँ।" इस समय बादशाह बोल उठे, "तानसेन ! तुम मिश्री सिंहजी के समान कोई अन्य कलाकार-बीनकार ले आओ, मैं इसकी गर्दन उड़ा देता हूँ।" तब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तानसेन ने कहा, "हुजूर का दिल भी जब इस प्रकार (नर्म) है, तो मैं ही क्यों असन्तुष्ट, रुष्ट रहूँ—मैंने भी माफ किया।" तानसेन के इतना कहने के बाद वजीर परदा उठाकर स्त्रीवेषधारी मिश्री सिंहजी को ले आये और तानसेन के साथ उनका मिलन करा दिया। बादशाह अकबर ने तब तानसेन से कहा, "यह मिलन पक्का नहीं हुआ, तुम्हारी पुत्री का विवाह मिश्री सिंहजी के साथ करा दो। तुम भी हिन्दू थे, ये भी हिन्दू हैं—तुम भी गुणी हो, ये भी गुणी हैं। ऐसा पात्र तुम्हें और कहाँ मिलेगा ?"

बादशाह के इस सुझाव से तानसेन सहमत हो गये एवं अपनी गुणवती कन्या सरस्वती को मिश्री सिंहजी के हाथों सौंप दिया यानी गुणवती सरस्वती का मिश्री सिंहजी के साथ विवाह हो गया। इस समय से मिश्री सिंह का नाम नबात खाँ रखा गया। (मिश्री=नबात, सिंह=खाँ)। इस प्रकार नबात खाँ या मिश्री सिंह ने तानसेन के निकटतम आत्मीय का स्थान प्राप्त किया। तानसेन अपने चार पुत्रों, कन्या और जामाता के साथ सुख से प्रौढ़ जीवन बिताने लगे।

मिश्री सिंह मुसलमान नाम ग्रहण कर लेने के बावजूद तानसेन के समान ही योग-आराधना आदि की ओर विशेष अग्रसर हुए थे। उन दिनों में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच पार्थक्य इतना विकट नहीं था। इसीलिए मुसलमानों के संस्कार ग्रहण करते हुए भी हिन्दू अपने संस्कारों और क्रियाकर्म का परित्याग नहीं करते थे—मिश्री सिंहजी नबात खाँ हो जाने के बाद भी रक्तवस्त्र, सिन्दूर और खड्ग धारण करते थे। वे तान्त्रिक मत से साधना करते, सर्वदा खाँडा या खड्ग रखते थे और उनके संगीत की वाणी थी खण्डार वाणी। उनकी वीणा पर सशक्त उदात्त खण्डार वाणी बजती थी।

मिश्री सिंहजी के सम्बन्ध में सुपण्डित सुदर्शनाचार्य शास्त्री ने लिखा है—"तानसेनजी के जामाता नबात खाँ जी (मिश्री सिंहजी) वीणा-वादन में श्रीहरिदास स्वामीजी के शिष्य थे। ये वीणा में बड़े प्रधान थे, शरीर से बड़े बलिष्ठ थे। एक दिन बादशाह अकबर को रात्रि में वीणा सुना रहे थे, इतने में वायु के झोंके से मोमबत्ती बुझ गई, इन्होंने एक ऐसी ठोक बजाई कि मोमबत्ती फिर जल उठी। इनकी वीणा की ध्वनि बहुत दूर तक सुनाई देती थी। नबात खाँ जी तो पहले हिन्दू थे पीछे विवाह के कारण मुसलमान हुए। नबात खाँ जी जामाता होने के कारण तानसेन जी के पुत्रतुल्य थे इससे सम्भव है कि इनको कुछ शिक्षा तानसेन जी से भी प्राप्त हुई, तो भी प्राधान्य से वीणा में श्रीहरिदास स्वामीजी के शिष्य थे वीणा के अद्वितीय उस्ताद हुए। इनको खण्डारे गोत ये (इनकी वाणी खण्डार वाणी थी)।"

तानसेन-दुहिता सरस्वती देवी ने संगीत के प्रभाव से किस प्रकार अपने पिता के प्राणों की रक्षा की थी, इसका जिक्र हमने पहले किया है। तानसेन की दुहिता के समान उनके चार पुत्रों ने भी संगीत-साधना में विशेष प्रगति की थी। तानसेन ने जब अपनी आयु के सत्तरवें वर्ष में प्रवेश किया तब उन्होंने अपना अन्तिम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समय निकट बोध कर बादशाह से प्रार्थना की कि उनके पुत्रों को बादशाह के दरबार में यथायोग्य स्थान दिया जाय। एक दिन उन्होंने अपने पुत्रों को बुलाकर कहा, "तुम लोगों ने कैसी संगीत-शिक्षा पायी है, इसका परिचय देना होगा। बादशाह के नाम से गीत रचना करके लाओ और मुझे सुनाओ। इसके पश्चात् ये गीत बादशाह के सामने गाने होंगे। उसी के अनुसार बादशाह अपने दरबार में तुम्हारे लिए आसन निर्धारित करेंगे।" पिता की आज्ञा क अनुसार ज्येष्ठ शरत् सेन, मध्यम सुरतसेन, तृतीय तरंगसेन और कनिष्ठ बिलास खाँ चार गान तैयार करके लाये और उन्हें गाकर पिता को सुनाया। गानों के जो अश श्रीहीन हो गये थे, तानसेन ने परिपाटी के अनुसार उन्हें ठीक कर सजा दिया।

इसके पश्चात् तानसेन के अनुरोध पर बादशाह ने चारों भाइयों को अपने दरबार में गाने के लिए आह्वान किया। निर्धारित दिवस पर तानसेन प्रातःकाल अपने चारों पुत्रों के साथ दरबार में उपस्थित हुए। तानसेन ने बादशाह से कहा, "मैं वृद्ध हो गया हूँ, मेरी शक्ति भी कम हो गयी है, अब मुझे छुट्टी देकर मेरे चारों पुत्रों को अन्नदान की आज्ञा दी जाय।" अकबर ने कहा, "अच्छा, तानसेन तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा।"

तब तानसेन ने अपने पुत्रों को गाने के लिए कहा। पहले शरत् सेन ने गायन आरम्भ किया। शरत् सेन के गायन से गुणियों के साथ-साथ बादशाह अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनके पश्चात् सुरत सेन ने गायन पेश किया। सुरत सेन के गायन से भी सभी मुग्ध हुए। इस प्रकार तरंग सेन के गायन से भी बादशाह के साथ-साथ सुधीजन भी परम आनन्दित हुए। अन्त में बिलास खाँ का गायन हुआ। बिलास खाँ के गायन से बादशाह और गुणीजन आनन्दित ही नहीं हुए बल्कि 'यत्परोनास्ति' (अतिशय) आश्चर्यचकित हुए। बादशाह ने उल्लसित होकर कहा कि "तानसेन और हरिदास स्वामी के बाद इस प्रकार का गायन मैंने कभी नहीं सुना।" चारों ओर के गायकों-गुणियों की हर्षध्वनि से सभास्थल मुखरित हो उठा—सभी ने एक ही स्वर से कहा, "तानसेन ! ये पुत्र ही तुम्हारी कीर्ति अक्षय रखेंगे।" तानसेन ने तब बादशाह को सलाम किया। तब बादशाह ने उन चारों भाइयों को सहस्र-सहस्र मुद्राओं का पारितोषिक दिया और प्रत्येक के लिए पाँच सौ रुपये की मासिक वृत्ति निर्धारित कर उन्हें दरबार में सम्मानित स्थान प्रदान किया। तानसेन की वृत्ति दो सहस्र मुद्रा मासिक निर्दिष्ट थी। तानसेन को सेवा-निवृत्ति दी गयी और उनकी अवकाशवृत्ति मासिक एक सहस्र (एक हजार) मुद्रा स्थिर हुई। तानसेन ने बादशाह का अभिवादन किया। बाद में तानसेन अपने निवास पर लौट आये और निश्चिन्त शान्ति से ईश्वर स्मरण और विभुगुणगान में शेष जीवन बिताने लगे। बीच-बीच में इच्छा होने पर वे बादशाह के पास आते थे और बादशाह भी उनका कुशलसंवाद पाने के लिए उनके निवास पर जाते थे।

इस प्रकार कुछ वर्ष बीत जाने के बाद तानसेन जराग्रस्त हो गये और वे यक्ष्मा रोग से पीड़ित हुए। बादशाह उन्हें स्वास्थ्य लाभ के लिए आगरा ले आये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

किन्तु उनके आरोग्य-लाभ की कोई आशा नहीं रही। तानसेन ग्वालियर जाने के लिए उत्कंठित हो उठे, किन्तु वैद्यों को भय था। उन्हें आशंका थी कि ग्वालियर जाने का प्रयास करने पर मार्ग में ही तानसेन की मृत्यु हो सकती है। तब बादशाह ने तानसेन की शैया के पास आकर उन्हें ग्वालियर-यात्रा के संकल्प का त्याग करने के लिए कहा। बादशाह को देखकर तानसेन की आँखों से अश्रुधारा बह चली। तानसेन ने कहा, "खुदाबन्द ! और क्या देख रहे हैं ? मेरा अन्तकाल समागत है। यदि आप मुझे ग्वालियर नहीं जाने देते तो मेरी इच्छा है कि मेरी समाधि वहीं हो।" बादशाह उन्हें आश्वासन देकर चले गये, अन्तिम समय आसन्न। बादशाह मृत्यशैया के पास पुनः गये। बादशाह को देखकर तानसेन ने अपना अन्तिम गान गाया। बादशाह अपने को सम्भाल नहीं सके; वे बालक के समान रो पड़े। इसके बाद तानसेन गम्भीर होकर परमेश्वर का ध्यान करने लगे। बादशाह ने विदा ली। कुछ समय बाद तानसेन ने अपने चारों पुत्रों और शिष्यों को बुलाकर कहा, "मैं अब इस संसार से विदा हो रहा हूँ, तुम लोगों ने मुझसे जो संगीत-साधना पायी है—मेरा आशीर्वाद है कि मेरी मृत्यु के बाद यह दैव प्रभावपूर्ण संगीत तुममें जैसे अमर रहे। मेरी मृत्यु के बाद मेरी मृतदेह बीच में रखकर सभी गुणी और साधक बैठकर गायन करना। जिसके गान से मेरी मृतदेह का दक्षिण हाथ उठेगा, उसी के वंशक्रम से संगीत-साधना जाज्वल्यमान रहेगी।" तानसेन की इस अंतिम वाणी के बाद ही उनकी पवित्र आत्मा ने नश्वर देह का परित्याग कर अमृतधाम के लिए प्रयाण किया (अंग्रेजी ई० फरवरी 1585; फाल्गुन 992 गाब्द)। मृत्यु के समय तानसेन की आयु अस्सी वर्ष हो गयी थी। तानसेन की मृत्यु के बाद उनके पुत्र, उनके भक्त शिष्य और अन्यान्य संगीत-साधक तानसेन की मृतदेह का परिवेष्टन कर एक-एक कर गान करने लगे। कुछ यूरोपीय राजदूत वहाँ उपस्थित थे। वे इस बात पर विश्वास कर ही नहीं सके कि मृतदेह का हाथ उठ सकता है। वस्तुतः किसी के भी गायन से यह असम्भव नहीं घटा—अन्त में तानसेन के कनिष्ठ पुत्र बिलास खाँ ने उस यूरोपीय को सम्बोधित कर तोड़ी रागिनी में ध्रुपद—"कौन भ्रम भुलाये मन अज्ञानी···!" गाया। उनके गायन के साथ ही मृत तानसेन का दक्षिण हस्त उत्थित हुआ। यूरोपीय दूत विस्मय से स्तम्भित हो गये। तब सभी ने बिलास खाँ का तानसेन की साधना के यथार्थ उत्तराधिकारी रूप में वरण किया।

गीत की समाप्ति के बाद तानसेन की मृतदेह को उड़े समारोह के साथ ग्वालियर ले जाया गया। वहाँ पर हजरत मुहम्मद गौस की समाधि के निकट उनकी देह को समाहित किया गया। बादशाह अकबर ने समाधि के ऊपर एक चन्द्रातप (छत्री) बनवा दिया। यह चन्द्रातप आज भी विद्यमान है। तानसेन की समाधि के पास इमली का एक वृक्ष उग आया था, वह वृक्ष आज भी है। गायकों-गुणियों का विश्वास है कि इस इमली-वृक्ष के पत्ते खाने से कण्ठस्वर मीठा हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मियाँ तानसेन के जीवन के सम्बन्ध में हम जितने तथ्य एकत्र कर सके, उनका हमने वर्णन किया है। हिन्दू संगीत के सुप्राचीन उत्कर्ष के युग में, हिन्दू शासनकाल में संगीत का रूप क्या था, हम नहीं जानते। किन्तु अबुल फजल ने कहा है कि तानसेन के जन्म के सहस्र वर्ष पूर्व से सम्पूर्ण भारत के समस्त अतीत के इतिहास का पर्यालोचन करने पर भी उनके संगीत की तुलना नहीं है। अतः, देखा जाता है कि ऐतिहासिक भारत, विशेषतः आर्यावर्त्त में तानसेन ही संगीत जगत् के एकछत्र सम्राट हुए—यहाँ स्वामी हरिदास की बात इस आलोचना के अन्तर्गत नहीं आती, क्योंकि उनका संगीत मर्त्यवासियों के लिए नहीं था, वह संगीत "केवल वैकुण्ठ के लिए वैष्णव का गान" था।

तानसेन के संगीत के सम्बन्ध में एक हिन्दुस्थानी कवि गा गये हैं कि अच्छा हुआ जो विधाता ने सर्प को श्रवणशक्ति नहीं दी, अन्यथा तानसेन जी की तान सुनकर अनन्तनाग सिर हिला देते और मेदिनी (पृथिवी) ध्वंस हो जाती···"भलो भयो जो विधि ना दिये शेषनाग के कान"···तानसेन कवियों की कल्पना के मानसलोक में भी रहस्यपूर्ण महिमामण्डित आसन आज भी जमाये हुए हैं। संभवतः उनका यह आसन चिरदिन ही अक्षुण्ण रहेगा।

तानसेन के जन्म के ठीक पहले राजा मान और उनकी पत्नी मृगनयनी ने हिन्दुस्थानी संगीत में नवप्राणों का संचार करने की चेष्टा की थी, इसका उल्लेख मैंने पहले किया है। और एक दम्पती का नाम यहाँ उल्लेखनीय है; वे हैं पठानराज राजबहादुर और उनकी हिन्दू पत्नी रूपमती। उनकी विचित्र मधुर प्रेमलीला विविध राग-रागिनियों में निबद्ध कई ध्रुपदों में वर्णित है। उनकी प्रणय-कथा से कई कवियों और शिल्पियों ने प्रेरणा प्राप्त कर काव्य एवं चित्रों की सृष्टि की।

कहना न होगा कि इनका संगीत तानसेन के विश्वविजयी संगीत का अग्रदूत था। तानसेन के साथ-साथ संगीत-सौराकाश के असंख्य छोटे-बड़े ज्योतिष्मान ग्रह-उपग्रहों का एक साथ अचानक उदय हमें दिखायी देता है—तानसेन उनके बीच में आदित्य के समान प्रदीप्त हैं।

तानसेन को हम हिन्दुस्थानी संगीत का जनक कहते हैं। उनके समसामयिक जितने गुणी थे, उनमें से कई शुरू में तानसेन से ईर्ष्या करते थे किन्तु बाद में सभी ने उनका श्रेष्ठत्व स्वीकार किया और शिष्यत्व भी ग्रहण किया। तानसेन हिन्दुस्थानी संगीत की ध्रुपद-रीति को परम गौरव और महिमा प्रदान कर गये हैं। प्राचीनतर युग में उच्च संगीत को 'प्रबन्ध' कहा जाता था। यथायोग्य 'छन्द' में गाये जाने वाले 'प्रबन्ध' को ही संगीत कहा जाता था। ये सभी 'प्रबन्ध' अधिकतर संस्कृत या प्राकृत भाषा में रचित थे। पठान-युग में नायक गोपाल 'छन्द-प्रबन्ध' में अद्वितीय थे और उन्होंने नायक की उपाधि पायी थी। किन्तु उन्होंने और उनके समसामयिक संगीतविद् बैजू बावरा ने छन्द-प्रबन्ध से हिन्दुस्थानी ध्रुपद गान का प्रचलन किया। इस प्रकार ध्रुपद का प्रथम आदर्श परिचय हमें नायक गोपाल और बैजू बावरा के युग में पहली बार मिलता है। उसके दो-तीन सौ वर्ष बाद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

राजा मान आदि ने ध्रुपद-रीति के माध्यम से संगीत के पुनरुत्थान का मार्ग प्रशस्त किया। स्वामी हरिदास और तानसेन ने ध्रुपद को पूर्ण परिणति प्रदान की। ध्रुपद ही हिन्दुस्थानी संगीत की आदि-प्रेरणा और उसकी अन्तर-प्रवाहिनी जीवनधारा है। इसीलिए तानसेन को हिन्दुस्थानी संगीत का आदि पुरुष और पिता बोलने में हमें संकोच नहीं है।

तानसेन अपने संगीत के प्रभाव से सम्पूर्ण भारत में छा गये थे। असंख्य संगीत-साधकों ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया था। जिन सभी गुणियों ने उनके चरणों में आश्रय ग्रहण किया था, उनमें जो प्रमुख थे उनके नाम उल्लेख योग्य हैं। यथा : खुदाबक्श, मसनद अली खाँ, रामदास, सूरदास, ज्ञान खाँ, दरिया खाँ, मामूद खाँ, खाण्डेराव, सुन्दीवर खाँ, सूरय खाँ, चाँद खाँ, रमजान, लाल खाँ, निजाम खाँ, हुसेन खाँ, शोभा खाँ, वीरमण्डल, मलिल खाँ, चञ्चल शशी, भीमराव ताजबहादुर, भगवान दास, चण्डलाल और देवीलाल।

ये सभी असाधारण गुणी थे। किन्तु तानसेन के अन्तरंग शिष्य थे—तानतरल और मानतरल। तानतरल और मानतरल को तानसेन पुत्रवत् मानते थे। तानतरल के वंशज आज भी पश्चिम भारत में विद्यमान हैं। किन्तु शिष्यों की अपेक्षा तानसेन के पुत्र—शरत् सेन, सुरत सेन, तरंग सेन और बिलास खाँ—तथा जामाता मिश्री सिंहजी संगीत-साधना में अधिक अग्रसर हुए थे, इसमें कोई सन्देह नहीं।

उत्तर भारत के हिन्दू और मुसलमान जो सब संगीत गुणी-वंश आज भी विद्यमान हैं, उनके पूर्वपुरुषों या पूर्वाचार्यों में से कोई भी तानसेन की शिक्षा या प्रभाव के बाह्य नहीं है। हिन्दुस्थान के सभी गायकों, तंत्रकारों और संगीत के सभी विभागों के गुणियों ने तानसेन की विद्या का कुछ-न-कुछ अंश उत्तराधिकार सूत्र से पाया है। तानसेन का संगीत ही विविध रूपान्तरणों के माध्यम से आज इस बहुल-विचित्र हिन्दुस्थानी संगीत रूप में विकसित हुआ है।

तानसेन का संगीत सूर्य-रश्मि के समान मुक्त रूप से चारों ओर विकीर्ण हुआ था, किन्तु आधारभेद के कारण कहीं वह उज्ज्वल रूप में प्रतिफलित हुआ है तो कहीं वह मलिन हो गया है। हमने पहले ही देखा है कि तानसेन के अन्तिम आदेश के अनुसार साधन-परीक्षा में केवल उनके कनिष्ठ पुत्र बिलास खाँ ने सफलता प्राप्त की थी। वस्तुतः तानसेन की भविष्यवाणी के अनुसार बिलास खाँ के वंश में ही तानसेन की साधना आज तक मूर्त एवं जाज्वल्यमान रही है। तानसेन की दुहिता सरस्वती एवं उसके पति मिश्री सिंहजी का विवरण हमने पहले दिया है। उन्होंने भी संगीत-साधना में सिद्धि प्राप्त की थी। इसके फलस्वरूप आर्यावर्त में बिलास खाँ और मिश्री सिंहजी के वंश में ही नादविद्या सिद्धि-प्रभाव से इस युग तक जीवन्त और उज्ज्वल है। परवर्ती अध्याय में हम इस विषय पर विशद् प्रकाश डालेंगे।

तानसेन कण्ठसंगीत में और मिश्री सिंहजी वाद्ययंत्र-संगीत में सिद्ध थे, यह बात हमने पहले कही है। बिलास खाँ के वंश में तानसेन की साधना और मिश्री सिंहजी के वंश में वीणा-साधना वंश-परम्परा से चली आ रही है। किन्तु इन दोनों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वंशों की विद्या परस्पर संयोग से सम्मिलित हो गयी थी। बिलास खाँ के वंशजों ने कालक्रम से यंत्रसाधना में भी अतुलनीय सफलता प्राप्त की है, दूसरी ओर मिश्री सिंहजी की पत्नी सरस्वती देवी के कण्ठसंगीत में असामान्य अभिज्ञता के कारण उनके वंश के वीणाकारों ने कण्ठसंगीत में प्रतिभा की पराकाष्ठा का परिचाय दिया था। दोनों वंशों में कण्ठ्य और वाद्ययंत्र-संगीत में सिद्ध कई महा-पुरुषों ने जन्म ग्रहण किया।

तानसेन स्वयं गायक होते हुए भी वाद्ययंत्र-संगीत के क्षेत्र में उनका योगदान सामान्य नहीं है। रबाब या रुद्रवीणा उनका प्रतिभा-प्रसूत है। तानसेन की इस अपूर्व सृष्टि से उनके वंश में वाद्ययंत्र-संगीत की ऐसी एक नवीन धारा का प्रवर्तन हुआ, जो प्राचीन भारत के वीणाकारों में भी नहीं मिलती। तानसेन स्वयं उत्कृष्ट रबाब-वादक थे। मनीषी Rev. Popley ने भी इस विषय में साक्ष्य दिया है। रबाब के सम्बन्ध में उन्होंने "The music of India' में लिखा है :

"The great Tansen played this instrument. It is a handsome instrument and has a very pleasing tone, fuller than that ot the Sarangi. It leads itself to the graces better than the sitar as it has no frets.

Rev. Popley ने तानसेन के वंशजों के सम्बन्ध में लिखा है : "The descendents of Tansen divided themselves into two groups : The Rabobiyas and the Binkars. The former used the new instrument Robab, invented by Tansen, while the latter used the Vina or Bin. Two descendents of these were living at Rawpur, a State which has been famous for many Centuries for its excellent musicians. The representative of the Binkars was Mahammad wagir khans, whose paternal ancestor was Niamat khan, shah Sadarang at the Court of the Emperor Mahammad Shah and Mahammad Ali khan was the representative of the Rababiyas···Tansen was a great Dhrupad Singer and Rawpur is the home, today of some of his Celebrated descendents who are experts at this style of singing."

पोपले साहब ने तानसेन के वंशजों को रबाबी और बीनकार इन दो भागों में विभक्त किया है। कहना न होगा कि रबाबियों के मूल पुरुष थे तानसेन के कनिष्ठ पुत्र बिलास खाँ, और बीनकारों के आदि प्रवर्तक थे तानसेन के जामाता मिश्री सिंहजी। भारत के श्रेष्ठ कण्ठसंगीत और वाद्ययंत्र-आलाप इन दो वंशों से ही उद्भूत हैं। मिश्री सिंहजी का इतिहास हमने पहले लिखा है। उनके द्वारा प्रवर्तित संगीत एवं वाद्ययंत्र-वादन में हमें विचित्र, ऐश्वर्यपूर्ण, समृद्ध, सत्वराजसिक प्रतिभा का परिचय मिलता है। दूसरी ओर बिलास खाँ की सात्त्विक प्रतिभा से जो संगीत-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साधना वंश-परम्परा से चली आ रही है, उसकी अनाडम्बरता और निराभरण शान्त सुन्दरता हमारे अन्तर को स्पर्श करती है। दोनों का आदर्श ही महान् एवं गरिमामण्डित है। अतः यह निर्णय करना असाध्य है कि रबाबी और बीनकार दोनों में कौन श्रेष्ठतर है।

मिश्री सिंहजी के साथ तानसेन-दुहिता सरस्वती देवी के परिणय से संगीत राज्य में एक प्रकार की अभिनव सार्थकता की सृष्टि हुई थी, इसमें कोई सन्देह नहीं। मिश्री सिंहजी की प्रगल्भ और उन्नत प्रतिभा एवं सरस्वती देवी की वर्णविलास विचित्र, ललित, मनोहर संगीत-सुषमा के संयोग ने जिस वीणाकरण और ध्रुपद-वाणी की सृष्टि की थी उसमें शक्ति और सौन्दर्य, तीव्रता और कमनीयता का अपूर्व समावेश देखकर आज भी हम पुलकित और मुग्ध हो उठते हैं। इस सार्थक परिणय के फलस्वरूप ही शाह सदारंग, निर्मल शाह और वजीर खाँ जैसे संगीत-युगप्रवर्तकों का आविर्भाव सम्भव हुआ था।

बिलास खाँ की संगीत-साधना की धारा कुछ अन्य प्रकार की थी। मिश्री सिंहजी के समान वे कर्मयोगी नहीं थे। वे अरण्यवासी, उदासीन एवं स्वर-संन्यासी थे। उन्होंने विवाह अवश्य किया था, यह भी सत्य है कि वे भारतीय संगीत के मेरुदण्ड स्वरूप विराट प्रतिभासम्पन्न साधक-वंश के जनक थे, फिर भी उनका जीवन घर-संसार के लिए नहीं था, वे एकान्त आरण्यक, निःसंग योगी थे। उनके अन्यान्य भ्राता दरबार में गाते थे और बादशाह से भारी पारितोषिक पाते थे, किन्तु बिलास खाँ का धन, सम्मान के प्रति कोई खयाल नहीं था। वे जंगल में रात-दिन बिता देते, नाद-साधना में तन्मय रहते। समय मिलने पर मार्ग में गोचारण ही विनोद का उनका प्रधान उपाय था। वृन्दावन गोप-बालकों के समान ही वे सरल, पवित्र और ईश्वर के परम कृपाभाजन थे।

परिवार, परिजनों के प्रति उनका कोई लगाव, ध्यान नहीं था, इसीलिए उनकी सहधर्मिणी को कई बार कष्ट उठाने पड़ते थे। एक बार उनकी पत्नी ने उनसे कहा था कि "आपके भ्राता और भाभियाँ कितने सुख और ऐश्वर्य में रहते हैं, और आपके व आपके परिवार के दैन्य का अन्त नहीं है—इतनी उदासीनता क्या ठीक है?" यह सब सुनकर बिलास खाँ कई दिनों बाद बादशाह के दरबार में हाजिर हुए। फकीर बिलास खाँ को अचानक आविर्भूत देखकर बादशाह ने उन्हें बड़े आदर से ग्रहण किया और उनका गायन सुनकर इतने आह्लादित हुए कि उनके भाइयों ने कई वर्षों तक गायन प्रस्तुत कर जितना धन प्राप्त किया था, उसा परिमाण से धन उसी समय बिलास खाँ को पारितोषिक स्वरूप प्रदान किया।

बिलास खाँ सहस्र-सहस्र मुद्रा पारितोषिक स्वरूप प्राप्त कर घर पहुँचे और वह धन अपनी स्त्री को देकर पुनः जंगल में चले गये। उसके बाद वे गृहस्थ में कभा नहीं लौटे।

बिलास खाँ साहब रबाब और बीणा एवं नाद-साधना में सिद्ध थे। वे एक-निष्ठ वैरागी भगवद्भक्त थे। आज भी वे सम्पूर्ण भारत में पूजे जाते हैं, उनके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समान महात्मा और साधुपुरुष संगीत जगत् में विरल हैं। वे एक प्रकार की तोड़ी रागिनी की सृष्टि कर गये—बिलासखानी तोड़ी नाम से उसका गायन-वादन आज भी होता है। बिलासखानी तोड़ी एक आश्चर्यजनक और जनप्रिय रागिनी है।

भारतवर्ष का साहित्य, संगीत, शिल्पकला—सभी अध्यात्म साधना के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। इसीलिए हम भारत के कवियों, गायकों और शिल्पियों के जीवन में अध्यात्म प्रभाव बराबर देखते हैं। हिन्दुस्थानी संगीत के जनक स्वामी हरिदास सिद्ध पुरुषों में थे, वैकुण्ठ-विहारी श्रीहरि के पार्श्वस्थानीय नारदादि के समान नित्य सिद्धपुरुष थे। तानसेन के वंशज संगीत के माध्यम से सुप्राचीन साधनधारा वहन कर लाये हैं।

पाठकों की जानकारी के लिए तानसेन के पुत्रवंश और दोहित्र वंश की विस्तृत वंश-तालिका हम पृष्ठ 49 पर प्रकाशित कर रहे हैं।

तानसेन-वंश के परवर्ती गुणियों के सम्बन्ध में आलोचना करने के पूर्व हम 'कव्वाली' संगीत के विषय में आलोचना करना चाहते हैं। मुगल साम्राज्य की प्रतिष्ठा के दो शताब्दियों पूर्व पठान सम्राट अलाउद्दीन के राजत्वकाल में नायक गोपाल ने भारतीय संगीत की उन्नति में काफी योग दिया था—वे 'छन्द-प्रबन्ध' गाते थे—ध्रुपद गान का श्रीगणेश भी उनके समय से ही हुआ। संगीत के संन्यासी बैजू बावरा भी उनके समसामयिक थे। बैजू बावरा सिद्ध पुरुष थे, किन्तु वे लोकालय में अधिक समय तक रहते नहीं थे और बादशाह के दरबार में उनकी उपस्थिति अति दुर्लभ ही थी। नायक गोपाल ही उस समय में दरबार के रत्न-स्वरूप थे और विद्या के प्रभाव से सम्पूर्ण गुणी-मण्डली के शीर्ष स्थान पर अधिष्ठित हो गये थे। बाद में फारस के अभिजातवंशीय एक गुणी पठान दरबार में प्रतिद्वन्द्वी रूप में आविर्भूत हुए। फारस के इस गुणी का नाम था अमीर खुसरो। अमीर खुसरो उत्कृष्ट गायक और विविध विद्याओं के ज्ञाता थे—समय के साथ वे अलाउद्दीन के अत्यन्त प्रिय पात्र हो गये और उन्होंने विशिष्ट अमात्य का पद प्राप्त किया। ये श्रुतिधर (श्रवण मात्र से ही स्मरण रखने या धारण कर लेने की शक्ति से सम्पन्न) थे। एक दिन दरबार के अन्तराल से ही नायक गोपाल द्वारा प्रस्तुत सभी राग-रागिनियाँ सुनकर बाद में सभा में नायक गोपाल को वे राग-रागिनियाँ सुना दीं और इनके अलावा कुछ फारसी रागों के साथ इन रागों का मिश्रण कर कुछ नवीन रागों की सृष्टि करके भी नायक गोपाल को उन्होंने सुनाये। उस दिन से दरबार में अमीर खुसरो का प्रधान स्थान बन गया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तानसेन का पुत्र वंश (रबाबी वंश)

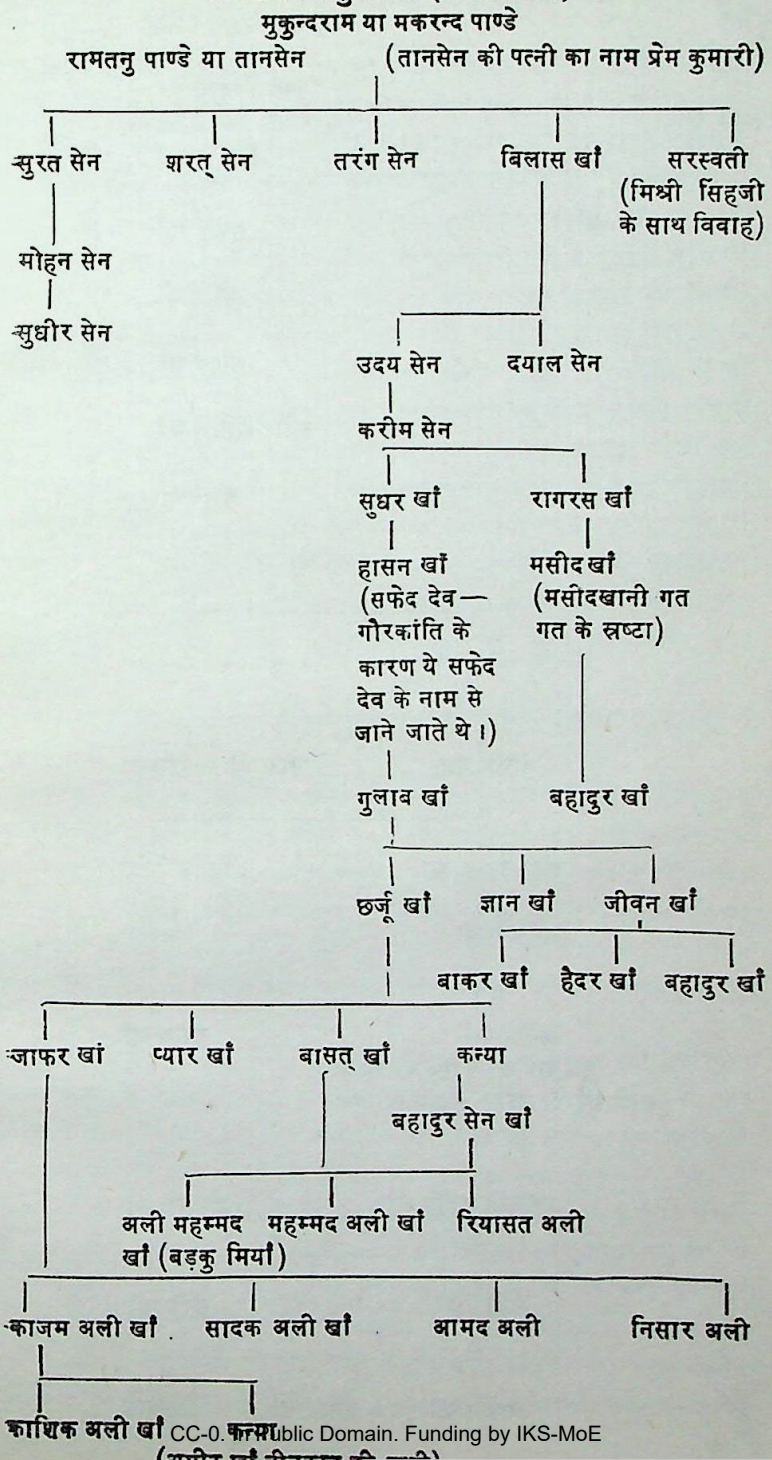

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तानसेन के दौहित्र वंश (बीनकार वंश)

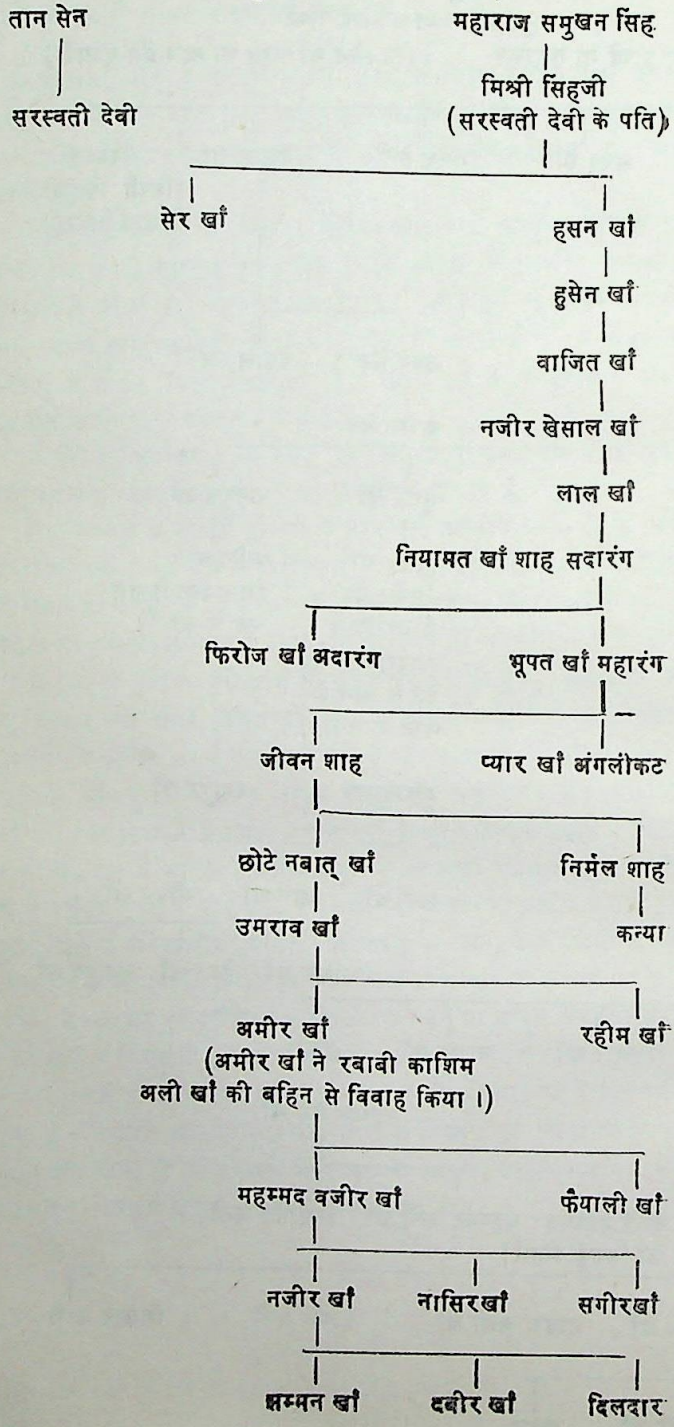

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अमीर खुसरो हिन्दू संगीत में फारसी संगीत का प्रभाव ले आये थे। उन्होंने राग-रागिनी गठन की एक अभिनव प्रणाली का आविष्कार किया। हमारे छः राग और छत्तीस रागिनियों के बदले वे बाईस (22) मुकाम या द्वाविंशति प्रकार के विभाग कर गये हैं। उनकी पद्धति को कव्वाल पद्धति कहा जाता है। इस कव्वाली रीति के अनुसार ही 'खयाल' गाया जाता है—अमीर खुसरो ही खयाल के जन्म-दाता थे। उनके द्वारा उद्भावित रागिनियों में 'इमन' रागिनी गायकों में आज भी विशेष प्रिय है। उन्होंने भारतीय 'हिन्दोल' राग और फारसी 'मुकाम' राग मिला-कर 'इयामन्' या 'इमन' रागिनी की सृष्टि की थी। अमीर खुसरो ने जिस प्रकार कण्ठसंगीत में खयाल गायकी की सृष्टि की थी, उसी प्रकार वाद्यसंगीत में भी 'सितार' वाद्य का उद्भावन किया था। पण्डित-प्रवर सुदर्शन शास्त्री के ग्रन्थ में यह उल्लेख मिलता है कि अमीर खुसरो ने तीन तार युक्त सितार पहली बार तैयार किया था। फारसी भाषा में 'सह' शब्द से तीन संख्या अभिहित की जाती हैं। तीन तार विशिष्ट इस वाद्य का नाम अमीर खुसरो ने 'सह तार' या 'सेतार' (सितार) रखा था। अमीर खुसरो ने सितार पर गत-तोड़ा वादन की प्रणाली का प्रवर्तन किया, उस समय तक सितार वाद्य पर आलाप बजाने की प्रणाली प्रवर्तित नहीं हुई थी। 'खयाल' गान और सितार-वादन को ही 'कव्वाली' संगीत कहा जाता है।

अमीर खुसरो का ऐतिहासिक विवरण श्रद्धेय पोपले (Rev. Popley) ने दिया है :

"Amir Khusru was a famous singer at the Court of Sultan Allauddin (A.D. 1295-1316). He was not only a poet and musician but also a soldier and statesman and was a minister of two Sultans. The 'Kawali' mode of singing—a judicious mixture of Persian and Indian models was introduced by him. The Sitar, a modification of the Vina was first introduced by him."

अमीर खुसरो द्वारा प्रवर्तित कव्वाली संगीत बाद में राजा गान, स्वामी हरिदास और तानसेन द्वारा प्रवर्तित ध्रुपद संगीत के समक्ष इतना प्रभावहीन हो गया था कि कई शताब्दियों बाद तक कोई भी यथार्थ रस स्रष्टा खयाल-गान या सितार की ओर आकृष्ट नहीं हुआ। जिसके द्वारा ध्रुपद की उपलब्धि होती है, उसे ही 'ध्रुपद' कहते हैं ध्रुपद संगीत हमारी सुप्राचीन अध्यात्म साधना की गम्भीर प्रेरणा का अनुसरण कर रहा था। 'कव्वाली' संगीत को 'खयाल' कहा जाता था, क्योंकि उसमें अध्यात्म प्रेरणा नहीं थी, किन्तु सरस कल्पनावृत्ति का खेल था। ध्रुपदियों को 'मिस्टिक' और खयालियों को 'रोमाण्टिक' कहा जा सकता है।

तानसेन के वंशज भी चिरदिन इस 'मिस्टिक' (ईश्वरवादी, रहस्यवादी) संगीत का ही अनुसरण करते आ रहे हैं। इसलिए उन्हें 'कलाविद्' कहा जाता था,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्योंकि वे कलाविज्ञानसम्पन्न थे। कलाविद्या कहने से केवल art का ही बोध नहीं होता। हमारे शास्त्र में 'कला विद्या' का अर्थ और भी गम्भीर है। शास्त्र में 'कला' का अर्थ 'शक्ति' समझाया गया है। पराप्रकृति ही यह शक्ति है। सृष्टि की आदि कारणस्वरूपिणी महाशक्ति ने नादरूप में जगत् का विकास किया है। नाद द्विविध है—वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक। वर्णात्मक नाद से वेद या अपौरुषेय मन्त्रों की उत्पत्ति है; ध्वन्यात्मक नाद से सप्त स्वर और राग-रागिनी की उत्पत्ति है। इस नाद विद्या को ही कला-विद्या कहा जाता है। अतः 'कलाविद्' होना गम्भीर साधना-सापेक्ष है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

तानसेन वास्तविक कलाविद् थे—उनके वंशज भी कलाविद्या के उपासक थे। किन्तु बाद में उन्होंने अनुभव किया कि इस विद्या का अधिकारी सर्वसाधारण नहीं हो सकता, किन्तु उन्हें जनसाधारण को संगीत-शिक्षा देनी पड़ती थी। इसी-लिए ध्रुपद संगीत और वीणा या रबाब-वादन उन्होंने उन्नत अधिकारी व्यक्तियों के लिए रखा और जनसाधारण में खयाल और सितार का प्रचार किया। बिलास खाँ वंश के मसीद खाँ औरंगजेब की मृत्यु के बाद दिल्ली दरबार में अधिष्ठित थे। उन्होंने सितार पर तारों की संख्या बढ़ा दी और उस पर चिकारी के तार लगाकर ध्रुपद के अनुसरण से सितार पर वादनार्थ विलम्बित गत का प्रचलन किया। वीणा की दीर्घ मींड़ को खण्डित कर सितार के उपयुक्त एक प्रकार की आलाप-रीति की सृष्टि की और तानतरंग वंश के 'सेनियों' को सितार की शिक्षा दी। इस प्रकार मसीदखानी वादन-पद्धति का उद्भव हुआ। किन्तु कहना न होगा कि सितार की मसीदखानी वादन-पद्धति का उनके (मसीद खाँ के) वंश के किसी भी गुणी ने अनुसरण नहीं किया। उन्होंने अपने शिष्यों के लिए ही उक्त पद्धति का प्रवर्तन किया था। मसीद खाँ के पुत्र बहादुर खाँ भी कई उत्कृष्ट गतों की रचना कर गये हैं।

अमीर खुसरो प्रवर्तित सितार वाद्य का प्रचार और उत्कर्ष जिस प्रकार मसद खाँ ने किया, उसी प्रकार अमीर खुसरो उद्भावित खयाल संगीत में नवप्राण का संचार किया नियामत् खाँ शाह सदारंग ने। आश्चर्यजनक बात यह है कि इनमें से किसी ने भी कव्वाली संगीत का अनुसरण कर अपनी शिल्प-प्रतिभा का इजहार नहीं किया। ये दोनों ही ध्रुपदिये और बीनकार थे, किन्तु जनसाधारण के लिए उन्होंने कव्वाली संगीत और वाद्यसंगीत का प्रचार किया। इससे हम समझ सकते हैं कि ध्रुपदिये इच्छा होने पर खयाल की इच्छानुसार निर्मित कर सकते हैं, किन्तु कोई भी खयालिया ध्रुपद का कोई नया मार्ग नहीं दिखा सकता। ध्रुपद का श्रेष्ठत्व हमें स्वीकार करना ही होगा।

शाह सदारंग का पैतृक नाम था नियामत् खाँ। वे तानसेन के दौहित्र वंशीय लाल खाँ के पुत्र थे एवं पूर्वपुरुष-क्रम से वीणावादन तत्त्व में परम विशारद थे। हमने पहले ही जिक्र किया है कि तानसेन के पुत्रवंश में रबाब वाद्य और दौहित्र वंश में वीणावादन का प्रचलन था। नियामत् खाँ के मामले में भी इसका

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

व्यतिक्रम नहीं हुआ। उस समय तानसेन के पुत्रवंशीय गुलाब खाँ दिल्ली दरबार में सम्मानपूर्वक प्रतिष्ठित थे और बादशाह मुहम्मद शाह के संगीत गुरु थे। गुलाब खाँ मुख्यत: गायक ही थे। इसीलिए जब गुलाब खाँ गाते थे तब नियामत खाँ को वीणा पर उनके संगीत का अनुसरण करना पड़ता था। गुलाब खाँ के आसन के बाद ही नियामत खाँ का आसन रहता था। उस समय भी गायक की अपेक्षा वाद्य-यन्त्रकार का सम्मान कुछ कम था। इससे नियामत खाँ मानसिक रूप से व्यथित हुए और उन्होंने दो वर्षों तक बादशाह के दरबार में आना बन्द कर दिया। इन दो वर्षों में उन्होंने दो भिक्षुक बालकों को खयाल संगीत की शिक्षा दी थी—यही है कव्वाली संगीत के नवजन्म का मूल इतिहास। दोनों बालकों का कण्ठस्वर अत्यन्त मीठा था एवं दो वर्षों की शिक्षा के बाद उन्होंने खयाल-गायन से रसिक श्रोताओं का मन जीत लिया। बादशाह को अपने मन्त्री से इन बालकों के विषय में संवाद मिला, तब उन्होंने इन बालकों को दरबार में आमन्त्रित किया। इनसे अभिनव प्रणाली का गान सुनकर बादशाह मुग्ध हो गये। जब बादशाह को पता चला कि नियामत खाँ इन बालकों के गुरु हैं, तब बादशाह महम्मद शाह ने नियामत खाँ को श्रेष्ठ गुणी का आसन प्रदान कर उन्हें पुन: दरबार में आमन्त्रित किया। दरबार में पुन: प्रवेश के बाद नियामत खाँ ने जो सम्मान पाया, वैसा सम्मान मियाँ तानसेन के बाद दिल्ली दरबार में अन्य किसी गुणी ने नहीं पाया। नियामत खाँ का आसन बादशाह के सिंहासन के पास रखा गया एवं बादशाह ने उन्हें सखारूप में ग्रहण किया। नियामत खाँ को ध्रुपदी गुलाब खाँ के गायन के साथ वीणा पर संगति नहीं करनी पड़ती थी। बादशाह उनका वीणा-वादन अलग सुनने लगे। वीणा का सम्मान कण्ठसंगीत से भी ऊपर हो गया।

इस समय बादशाह ने नियामत खाँ को 'शाह' की उपाधि प्रदान की। भारतवर्ष के इतिहास में हमने देखा है कि दिग्विजयी बादशाह को शाह कहा जाता था। सेरशाह, बादशाह अकबर आदि दिग्विजयी सम्राटों ने 'शाह' उपाधि प्राप्त की थी। बादशाह ने नियामत खाँ को भी श्रेष्ठ गुणी मानकर उन्हें 'शाह' उपाधि प्रदान की थी। तानसेन के दौहित्र वंश के और दो बीनकारों ने दिल्ली दरबार से 'शाह' उपाधि पायी थी, वे थे नियामत खाँ के वंश के जीवन शाह और निर्मल शाह। संगीत-विद्या में शिल्प-प्रकाश की महिमा में समसामयिक गुणी-मण्डली में निर्विवाद रूप से श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर ही वे 'शाह' उपाधि से विभूषित हुए थे।

बादशाह महम्मद शाह ने नियामत् खाँ का नया नाम दिया 'शाह सदारंग'। सदारंग नाम का भी विशेष तात्पर्य है। नियामत खाँ वीणा-वादन और कण्ठ-संगीत में इतने प्रचुर परिमाण में 'खुशरंग' यानी हृदयग्राही वैचित्र्य-सुषमा ले आये थे, जितना पूर्ववर्ती कोई भी संगीत-साधक नहीं ला सका। उनके संगीत में सदारंग का औज्ज्वल्य परिलक्षित होता था, इसीलिए उनका नाम सदारंग रखा गया था। तानसेन-दुहिता सरस्वती देवी के संगीत में नारी प्रतिभा-सुलभ वर्ण-वैचित्र्य-सम्भार की बात हमने पहले कही है, अत: नियामत खाँ ने रंग का यह विचित्र

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रकाशकौशल उत्तराधिकार सूत्र से ही पाया था। प्रकाश-छाया के विचित्र सम्मिश्रण, सूक्ष्म-सूक्ष्म विचित्र वर्ण के सुचारु सामंजस्य से चित्र की शोभा में वृद्धि होती है, उसी प्रकार नियामत खाँ के संगीत में सूक्ष्म स्वरसमूह की श्रुतियों और मींड़, गमक के मनोहर सम्मिलन के फलस्वरूप वैचित्र्य, ऐश्वर्य और सौकुमार्य की सृष्टि होती थी, जिससे मन पुलकित, अभिभूत हुए बिना रह नहीं सकता।

बादशाह महम्मदशाह शाह सदारंग को इतना धन और पारितोषिक देते थे कि जिन्हें सुनकर वे सब बातें परियों की कथा के समान लगेंगी। सुना जाता है कि उन्हें सोना, चाँदी और कई जवाहरात बख्शिश स्वरूप दिये जाते थे। किन्तु शाह सदारंग स्वयं फकीर की तरह ही रहते थे और पूरा धन मार्ग में गरीब भिखारियों में दान कर देते एवं स्वयं खाली हाथ ही रहते थे। इसीलिए प्रचुर धन पाकर भी उन्हें धन का अभाव सर्वदा अनुभव होता था। किसी दरिद्र को दान किये बिना वे रह नहीं सकते थे। धन समाप्त हो जाने पर वे महाजनों से कर्ज ले लेते और बाद में बादशाह को वह कर्ज चुकाना पड़ता। स्वयं साधु फकीर के समान विलासहीन जीवन व्यतीत करते हुए भी अति दानशीलता के कारण वे विपद में फँस जाते थे। कर्ज स्वरूप रुपये लेने की मजेदार प्रथा थी। कर्ज देने पर महाजन कुछ सम्पत्ति गिरवी रखवाना चाहते थे। सदारंग की कोई जमींदारी तो थी नहीं—महाजन उनसे राग-रागिनी बन्धक रूप में रखने की माँग करते। अर्थात् ऐसा करार था कि जब तक रुपये लौटाये नहीं जाते तब तक अमुक-अमुक राग-रागिनी वे दरबार में गा-बजा नहीं सकेंगे। इसके पश्चात् बादशाह जब सदारंग से वे राग-रागिनियाँ गाने-बजाने की फरमाइश करते तब सदारंग कहते, "हुजूर! ये सब राग-रागिनी मैंने अमुक-अमुक महाजनों के पास बन्धक रखकर इतने रुपये लिये हैं।" बादशाह हँसकर रुपये लौटा देते—यह सब कौतुकप्रद था।

शाह सदारंग वास्तव में दीनबन्धु थे। पूर्व कथित भिक्षुक बालकद्वय के भरण-पोषण का भार स्वयं वहन कर उन्हें दरबार में यथोचित आसन दिलाया था। वे भिक्षुक बालकद्वय 'कव्वाल' के रूप में हिन्दुस्थान में प्रसिद्ध थे। भारत का श्रेष्ठ खयाल-गान उनके वंश से सुना गया। सुप्रसिद्ध खयालिया अहमद खाँ उनके ही वंशज थे। कव्वाली रीति की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति हम इस वंश में ही पाते हैं। प्रसिद्ध खयालिया तानराज खाँ, हद्दू खाँ, हस्सू खाँ, नत्थू खाँ प्रभृति सभी इस भिक्षुक वंश के ही शिष्य थे। इनके घराने के एक-दो उस्ताद रीवाँ दरबार में आज भी विद्यमान हैं।

शाह सदारंग स्वयं खयाल-गायन में दक्ष थे—उन्होंने खयाल की सृष्टि की थी। किन्तु सदारंग स्वयं सर्वदा ध्रुपद और होरी-ध्रुपद गाते थे और वीणा पर ध्रपद-आलाप बजाते थे। हिन्दुस्थान के जनसाधारण उनके द्वारा रचित खयाल सुनकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं, किन्तु उनके द्वारा रचित ध्रुपद और होरी के बारे में जनसाधारण कम ही जानते हैं। उन्होंने अपने वंशजों और संगीत के उत्तम अधिकारियों के लिए असंख्य ध्रुपद व होरी रचनाएँ की थीं। जिन गुणियों ने उन्हें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुना है वे जानते हैं कि माधुर्य और गम्भीरता की दृष्टि से दोनों में कितना प्रभेद है। काञ्चन के साथ कांच की तुलना नहीं हो सकती। शाह सदारंग ने अपने पुत्रों को ध्रुपद, होरी और वीणावादन की उत्तम तालीम दी थी, जो उनके वंश में आज भी प्रचलित है। उनके पुत्र अदारंग और अन्यान्य वंशज भी अपने शिष्यों को खयाल की शिक्षा देते थे किन्तु दरबार में कोई भी कभी खयाल गायन नहीं करते थे। ध्रुपद, होरी और आलाप को ही वे रसाभिव्यक्ति का उपयुक्त एवं उत्कृष्ट अवलम्बन मानते थे।

शाह सदारंग की मृत्यु के बाद उनके दो पुत्र—फिरोज खाँ और भूपत खाँ ने लम्बे अरसे तक महम्मद शाह की सभा को अलंकृत किया। फिरोज खाँ की उपाधि थी 'अदारंग' और भूपत खाँ की 'महारंग'। महारंग के दो पुत्र थे—जीवन शाह और प्यार खाँ अंगलीकट। प्यार खाँ को अंगलीकट कहा जाता था, क्योंकि बाल्यकाल में रास्ते में खेलते समय एक बैलगाड़ी का पहिया गाड़ीवान की असावधानी के कारण प्यार खाँ के दाहिने हाथ की तर्जनी अंगुली के ऊपर से निकल गया, जिसके फलस्वरूप उनकी वह अंगुली काटनी पड़ी; इसीलिए उनका नाम 'अंगुलीकट' या 'अंगलीकट' था। अंगलीकट प्यार खाँ ने कई वर्षों तक वीणा नहीं बजायी। बाद में उनके भाई जब वीणा-वादन में विशेष कृती, दक्ष हो गये, तब उन्होंने अपते पिता से एक दिन दुःखी मन से कहा कि उम्र हो गयी है, अंगुली कट चुकी है, मेरे जीवन-काल में मुझे वीणा-वादन की शिक्षा नहीं मिलेगी—जीवन वृथा हो जायगा। महारंग ने अपने पुत्र की कातरता देखकर उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा कि छः माह के अन्दर मैं ऐसी वीणा-वादन-शिक्षा दूंगा कि हिन्दुस्थान में तुम्हारे मुकाबले का कोई बीनकार नहीं मिलेगा। वस्तुतः ऐसा ही हुआ। प्यार खाँ की तर्जनी पर एक बड़ा मिजराब पहनाकर महारंग ने उन्हें वीणा-वादन की शिक्षा दी। अंगुली कटी होने के बावजूद प्यार खाँ ऐसे बीनकार हुए कि उस समय भारत में उनके तुल्य कोई बीनकार नहीं हुआ। महारंग की मृत्यु के बाद उनके पुत्रद्वय जीवन शाह और अंगलीकट प्यार खाँ दिल्ली-दरबार में श्रेष्ठ बीनकार के रूप में सम्मानित हुए। किन्तु प्यार खाँ दीर्घायु नहीं हुए और उनकी कोई सन्तान भी नहीं थी। उनकी मृत्यु के बाद उनके भ्राता जीवन खाँ ने बादशाही दरबार से 'शाह' की उपाधि प्राप्त की। जीवन शाह दिल्ली दरबार के अंतिम बीनकार थे।

महम्मद शाह बादशाह की मृत्यु के बाद दिल्ली मुगल बादशाही क्रमशः दुर्बल से दुर्बलतर होने लगी तथा वह नाम मात्र में पर्यवसित हो गयी। बादशाह द्वितीय आलमगीर की मृत्यु के बाद जब शाह आलम दिल्ली के तख्त पर आसीन हुए तब वे बादशाह होते हुए भी उनका कोई राज्य और विशेष कुछ था नहीं। इस समय में दिल्ली-दरबार या गुणी-सभा के अंतिम रत्न इतस्ततः जाने लगे। इस समय से ही इन गुणियों ने अन्यान्य राजन्यवृन्द का आश्रय ग्रहण किया। शाह आलम के पूर्व दिल्ली के अन्तिम दरबार में तानसेन के पुत्रवंशीय छज्जू रबाबी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और उनके दो भ्राता ज्ञान खाँ और जीवन खाँ ने विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की थी। इस समय बीनकार के आसन पर जीवन शाह प्रतिष्ठित थे। छर्ज्जू खाँ, ज्ञान खाँ और जीवन खाँ—भ्रातृत्रय भी असाधारण प्रतिभा के धनी थे। छर्ज्जू खाँ ने रबाब-वाद्य को विशेष विकसित, उन्नत किया था। ज्ञान खाँ और जीवन खाँ ध्रुपदिये थे। इन तीन भ्राताओं के कण्ठ एवं वाद्ययंत्र संगीत का श्रेष्ठ अवदान भारत के चरणों में दिल्ली दरबार की शेष पुष्पांजलि है।

मुगल शासन के बाद दिल्ली की गुणी मण्डली दो भागों में विभक्त हो गयी और उन्होंने भारत के दो अंचलों में आश्रय लिया। तानसेन के अपने वंशज पूर्व में चले आये (उनका नाम हुआ पूरबिया) और उनके शिष्यवंश के गुणियों ने राजपूताना के राजाओं की सभाओं में स्थान पाया—उनका नाम हुआ पछाँव-वाला। तानसेन के पुत्रवंशीय रबाब-वादकों और दौहित्र वंशीय बीनकारों ने पूर्व भारत में आकर वाराणसी धाम में भद्रासन स्थापित किया और निकटवर्ती हिन्दू और मुसलमान राजाओं और नवाबों का सम्मानित आतिथ्य ग्रहण किया। इस समय अयोध्या के नवाब, बेतिया के राजा, रीवाँ के राजा, वाराणसी के नरेश और अन्यान्य कई नृपति संगीत के विशेष अनुरागी थे, यहाँ तक कि कई नरेश संगीत के एकनिष्ठ भक्त भी थे। दिल्ली से रबाब-वादकों और बीनकारों के चले आने के बाद इन नृपतियों ने उन्हें इतने आग्रह के साथ वरण कर लिया था कि उन्हें किसी प्रकार का दुःख या कष्ट नहीं उठाना पड़ा। तानसेन के वंशज जब दिल्ली छोड़कर पूर्व भारत में आ रहे थे तब विष्णुपुर के महाराजा उनमें से एक बड़े ध्रुपदी को आमंत्रित कर बाँकुड़ा ले आये। यहीं हमें बंगाल में ध्रुपद के बहुल प्रचार और सम्मान का मूल इतिहास मिलता है। विष्णुपुर के महाराजा रबाबी छर्ज्जू खाँ के अन्यतम भ्रातुष्पुत्र और ध्रुपदी जीवन खाँ के पुत्र बहादुर खाँ को बाँकुड़ा विष्णुपुर ले आये थे और उन्हें यथोचित सम्मान और समादर के साथ रखा था। बहादुर खाँ कुछ उत्तम बंगाली ध्रुपदी शिष्य तैयार कर गये हैं। वे विद्या को कभी गुप्त नहीं रखते थे। बंगाल के श्रेष्ठ ध्रुपद-गायक स्व० यदु भट्ट बहादुर खाँ के शिष्यवंशीय थे। यदु भट्ट के समान गायक भारत में अधिक नहीं हुए। उनके सम्बन्ध में हम बाद मे आलोचना करेंगे। स्वर्गीय राधिका गोस्वामी और ध्रुपदी संगीतनायक गोपेश्वर बन्द्योपाध्याय महाशय बहादुर खाँ के शिष्यों में थे। कुछ लोगों का कहना है कि 'सेनी' कलाकारों ने किसी को भी शिक्षा नहीं दी—यह बात तब गलत सिद्ध होती है जब हम देखते हैं कि तानसेन के एक गुणी वंशज सुदूर दिल्ली से बंगाल आकर शुद्ध वाणी के ध्रुपद की बहुल परिमाण में और खुले मन से शिक्षा दी; इसके फलस्वरूप ही यदु भट्ट, राधिका गोस्वामी और गोपेश्वर बन्द्योपाध्याय महाशय के समान गुणी बंगाल में हुए।

वीणानायक जीवन शाह के दो पुत्र छोटे नवात् खाँ और निर्मल शाह वीणा-करण नैपुण्य में भारत में असाधारण ख्याति अर्जित कर गये। छोटे नबात् खाँ के बारे में सभी कहते थे कि स्वयं मिश्री सिंहजी ने पुनः जन्म लिया है। उनका अन्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नाम था रसबीन खाँ। पण्डित प्रवर स्व० सुदर्शनाचार्य शास्त्रीजी ने उनके बारे में लिखा है :

"नबात् खाँ जी के वंश में अन्त में रसबीन खाँ जी भारी बीनकार हुए, लोग इनको दूसरे नबात् खाँ जी (मिश्री सिंहजी) कहते थे। ये पहले ऐसे ही फिरा करते थे, एक दिन समाज में अनादर पाकर पिता से खाने को संखिया माँगा, पिता (जीवन शाह) ने बहुत समझाया, कहा कि संखिया खाने की कोई जरूरत नहीं, परिश्रम करो, चौबीस दिनों में तुमसे वीणा बजवा देंगे। ऐसा ही किया, फिर तो ये (रसबीन खाँ) वीणा के अद्वितीय उस्ताद हो गये।"

छोटे नबात् खाँ का हाथ इतना मीठा था कि गुणी जन उन्हें आदर से 'रंगारंग' कहकर पुकारते थे। छोटे नबात् के पुत्र उमराव खाँ ने भी पैतृक गुण और विद्या सम्पूर्ण रूप में पायी थी। निर्मल शाह छोटे नबात् खाँ या रसबीन खाँ के कनिष्ठ भ्राता थे। ये दोनों भाई इतने बड़े गुणी थे कि यह निर्णय करना कठिन था कि इनमें कौन श्रेष्ठ है। निर्मल शाह को अयोध्या के नवाब ने 'शाह' की उपाधि दी थी। आधुनिक भारत के प्रायः सभी बड़े ततवाद्य-वादक निर्मलशाह के किसी-न-किसी शिष्य के घराने से सम्बद्ध हैं। निर्मल शाह संगीतविद्या का खूब प्रसार कर गये हैं और उनके कई शिष्य हैं। इस विषय में उनकी बड़ी ख्याति है। कव्वाली में प्रसिद्ध खयालिया श्रेणी के मखखन खाँ उनके शिष्य थे। निर्मल शाह शिष्यों की रुचि, योग्यता और क्षमता को ध्यान में रखकर ध्रुपद और खयाल दोनों अंगों की शिक्षा देते थे। उनके ध्रुपद-अंग की शिक्षा सुप्रसिद्ध बीनकार गुसर्रफ खाँ के पूर्वपुरुषों ने पायी और उनके खयाल गायक शिष्यों के वंश में सुप्रसिद्ध बीनकार बन्दे अली खाँ और मुराद खाँ एवं विख्यात सितारनवाज इमदाद खाँ हुए। निर्मल शाह स्वयं बड़े सशक्त वादक थे। उनके वीणावादन में कमनीयता की अपेक्षा शक्ति का समधिक परिचय मिलता था। उनके भ्राता के वादन में ललित मधुर रस की अभिव्यंजना होती थी किन्तु उनके वीणावादन में उदात्त भाव था। वीणा की ध्वनि साधारणतया कुछ क्षीण है—वह अधिक दूर सुनी नहीं जा सकती—किन्तु निर्मल शाह इतना मोटा तार लगाकर वीणा बजाते थे कि बड़े सभागृह में भी अंतिम छोर तक उनकी वीणा की झंकार तीव्र मधुर अनुरणन के साथ श्रोताओं के कानों में स्पष्ट रूप से झंकृत होती। वे भारतीय वाद्ययंत्र संगीत में वास्तव में नवप्राण का संचार कर गये हैं।

निर्मल शाह ध्रुपद की चारों वाणियों में पारदर्शी थे। ध्रुपद और वीणा की चार वाणियाँ हैं—गौड़ीय या गोबरहर वाणी, खण्डार वाणी, डगर वाणी और नौहरवाणी* गौड़ीवाणी का प्रधान लक्षण है प्रसाद गुण। यह शान्त रस उद्दीपक है—इसकी गति धीर है। खण्डार वाणी की विशेषता है वैचित्र्य और ऐश्वर्य का

---

* हकीम महम्मद ने अपने 'मादनुल मूसीकी' नामक संगीत ग्रंथ में चार वाणियों के उद्भावकों के सम्बन्ध में लिखा है : →

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रकाश। यह तीव्र रस उद्दीपक है—इसकी गति अधिक विलम्बित नहीं है। गौड़ी वाणी की अपेक्षा इसका वेग और तरंग अधिक है। कहना न होगा कि प्रचलित खण्डार वाणी या स्वर के मल्लयुद्ध एवं यथार्थ खण्डार रीति में भारी अंतर है। डागर वाणी का प्रधान गुण है सारल्य और लालित्य। इसकी गति सहज और सरल है। इसमें स्वरसज्जा का जो वलयित बंकिम विन्यास दिखायी देता है, वह वास्तव में कठिन बिलकुल नहीं है। नौहर रीति कहने से सिंह की गति का बोध होता है। एक स्वर से दो-तीन स्वरों का लंघन कर परवर्ती स्वर पर जाना इसका लक्षण है। यह आश्चर्य रसोद्दीपक है—इससे किसी बड़े रस की सृष्टि नहीं होती। जिसे हम केवल वाणी या शुद्ध वाणी कहते हैं वह गौड़ी या डागरी वाणी का ही नामांतर है। शुद्ध वाणी ही संगीत की आत्मा है। शुद्ध वाणी में ही संगीत की प्रतिष्ठा है, इसमें सदेह नहीं। खण्डार वाणी यदि शुद्ध वाणी की यति और छन्द को भंग न करे, तो उसमें स्वर का वैचित्र्य और ऐश्वर्य उद्घाटित हो सकता है। शुद्ध वाणी के संश्रव से विच्युत होकर चलने पर खण्डार वाणी अत्यंत उत्कंठ हो जाती है। उसकी भव्यता से लोग किकर्तव्यविमूढ़ हो सकते हैं किन्तु उससे अन्तर की पिपासा नहीं मिटती। वह संगीत प्राण में किसी प्रकार की शान्ति या किसी आनन्द का स्पर्श, आभास नहीं देता। संगीत की प्राणस्वरूप जो रसवस्तु है, उसका अविकृत उत्स शुद्ध वाणी में मिलेगा। रस का प्रकाश-वैचित्र्य उसी के द्वारा सम्भव है, जिसने उस उत्स, प्रस्रवण का सन्धान पा लिया है। इसीलिए सेनिया गायक सर्वदा शुद्ध वाणी के संगीत पर इतना जोर दे गये हैं। निर्मल शाह के वीणा-वादन में खण्डार की तानों का यथेष्ट ऐश्वर्य रहते हुए भी, उनके वीणा-

---

"अकबर बादशाह के दरबार में उस समय चार महान् गुणी थे। उनके नाम लिखे जा रहे हैं—

(1) तानसेन—ग्वालियर निवासी, पिता का नाम मकरन्द। वृन्दावन के स्वामी हरिदास के शिष्य, पहले गौड़ीय ब्राह्मण थे।

(2) ब्रिजचन्द—ब्राह्मण, दिल्ली के निकट डागुर ग्राम में घर।

(3) राजा समोखन सिंह—राजपूत, बीनकार, खण्डार नामक ग्राम के निवासी।

(4) श्रीचन्द—राजपूत, नौहर में घर।

अकबर के समय में इन चार गुणियों के नाम से चार वाणियाँ प्रसिद्ध थीं। तानसेन गौड़ीय ब्राह्मण थे अतः उनकी वाणी का नाम था गौड़ी अथवा गोबरहरी। प्रसिद्ध बीनकार मिश्री सिंहजी (राजा समोखन सिंह के पुत्र) ने तानसेन की कन्या सरस्वती देवी के साथ विवाह किया, तब उनका नाम हो गया था नबात् खाँ। नबात् खाँ की वाणी का नाम था 'खण्डारी', क्योंकि वे खण्डार के निवासी थे। ब्रिजचंद के निवास स्थान के अनुसार उनकी वाणी का नाम डागुर हुआ। राजपूत श्रीचन्द नौहर के अधिवासी थे अतः उनकी वाणी को नौहर वाणी कहा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

संगीत की मूल प्रेरणा ध्यानगम्भीर और सागर सम गभीर शुद्ध वाणी से ही मिलती थी।

संगीत की चार वाणियों में गौड़ीय वाणी को गुणियों ने राजा का आसन दिया है। डागर (डागुर) वाणी को मन्त्री का, खण्डार वाणी को सेनापति का और नौहर वाणी को भृत्य का स्थान दिया गया है। प्रत्येक वाणी की अपनी-अपनी विशेष सार्थकता है। फिर भी प्रथमोल्लिखित वाणीद्वय शुद्ध वाणी के अन्तर्भुक्त है। गौड़ी वाणी के स्वरों में प्रत्येक अपनी-अपनी सीमा में सुनिर्दिष्ट रूप में प्रतिभात होता है। स्पष्टता ही है इस वाणी का प्रधान लक्षण। डागर वाणी में एक स्वर अन्य स्वर के साथ जैसे मिल जाना चाहता है, इसीलिए डागर वाणी में कैसा एक रहस्यमय भाव रहता है। स्वरों को स्पष्ट रूप में पकड़ा-छुआ नहीं जाता, श्रोताओं को अपनी कल्पना से जैसे उसे पूर्ण कर लेना होता है। लालित्य और गंभीरता इन दोनों वाणियों में यथेष्ट मिलती है। खण्डार वाणी को संस्कृत में 'भिन्ना गीति' कहा गया है। इस वाणी में स्वर कटे-कटे-से गाये जाते हैं या लिये जाते हैं एवं वक्र गति से गान किया जाता है,—इसीलिए संस्कृत में इसे 'भिन्ना' (भिद् धातु से भिन्न शब्द निष्पन्न हुआ है) कहा जाता है एवं हिन्दुस्थानी में 'खण्डार'। दोनों शब्दों का मूल तात्पर्य एक ही है। स्वरों को सरल ढंग से न लगाकर इसमें वक्र ढंग से स्वरों को कटे-कटे ढंग से लगाया जाता है। किन्तु इसके बावजूद इसमें माधुर्य का ह्रास नहीं होता। सूक्ष्म गमक की सहायता से स्वर काटने या आन्दोलित करने पर उसमें मधुरता की वृद्धि ही होती है। इसीलिए उत्तम गुणी मधुर, सूक्ष्म गमक के सहयोग से खण्डार वाणी गाते हैं। गमक के अपप्रयोग और उत्कट प्रयोग से ही खण्डार वाणी में विकृति आ गयी है, किन्तु पूर्वाचार्य और तानसेन वंश के बीनकार अति सूक्ष्म गमक तथा श्रुति प्रयोग से खण्डार वाणी में यथेष्ट मधुरता का प्रदर्शन कर गये हैं।

किन्तु शुद्ध वाणी को ही सर्वदा कायम रखकर चलना उचित है। खण्डार वाणी का बीच-बीच में वैचित्र्य के लिए प्रयोग किया जा सकता है। सेनिया घराने के गुणी वैसा ही करते आ रहे हैं। सेनिया ध्रुपदों में अधिकांश शुद्ध वाणी में गाये जाते हैं। आलाप के समय विलम्बित अंश में शुद्ध वाणी का ही प्राधान्य है। मध्य ताल में खण्डार वाणी का विशेष-विशेष स्थलों पर व्यवहार होता है। वाद्ययंत्र-संगीत में सेनिया घराने के वादकों ने वीणा पर ही खण्डार वाणी का व्यवहार मध्यताल या गमक जोड़ में विविध प्रकार से किया है, किन्तु रबाब पर विलम्बित, मध्य और द्रुत इन त्रिविध आलाप अंशों में शुद्ध वाणी का समान प्राधान्य है, क्योंकि रबाब के स्वर सरल, सीधे हैं—रबाब पर वीणा के समान गमक वैसी खिलती नहीं है।

तानसेन के पुत्रवंशीय सभी गुणी गौड़ीय वाणी में सिद्ध थे। इसीलिए उनके गायन और वाद्य-वादन में रंग का वैसा खेल नहीं मिलता, किन्तु राग के सौन्दर्य को निखारने में उनकी तुलना नहीं है। सरलता ही उनका वैशिष्ट्य है, उनकी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रकृति भी उनके संगीत की तरह सरल है। तानसेन के कनिष्ठ पुत्र विलास खाँ से शुरू कर हासन खाँ, गुलाब खाँ, छर्ज्जू खाँ, ज्ञान खाँ, जीवन खाँ प्रभृति गुणियों के इतिवृत्त की समीक्षा करने पर हमें पता चलता है कि वे मुनियों के समान सरल, आडम्बरहीन और भगवत्प्राण थे। हासन खाँ को सभी 'शुभ्रदेवता' या सफेद देव कहते थे; उनका अन्तःकरण जिस प्रकार सरल, साफ था, उसी प्रकार उनका शरीर भी मनोहर गौरकान्ति था। इनमें से कोई भी बादशाह के दरबार के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े नहीं रहते थे। सांसारिक धनरत्न और ऐश्वर्य के आडम्बर से दूर निर्जन कुटीर में इनका निवास था। बादशाह अयाचित ही अजस्र धन इन्हें दे गये, किन्तु अधिकांश धन दान एवं दीनजन-प्रतिपालन में व्यय होता था। बादशाह इच्छा होने पर कभी भी इनका गायन सुन नहीं सकते थे, कई साध्य-साधना, अनुनय से इन्हें दरबार में लाया जाता था।

हासन खाँ और उनके पुत्र गुलाब खाँ उत्कृष्ट ध्रुपद-गायक थे। गुलाब खाँ के तीन पुत्र थे—छर्ज्जू खाँ, ज्ञान खाँ और जीवन खाँ। छर्ज्जू खाँ ने रबाब-वादन में विशेष दक्षता प्राप्त की थी। ज्ञान खाँ और जीवन खाँ ध्रुपद-गायक थे। इन तीन भाइयों के शेष जीवन-काल में ही दिल्ली का बादशाही दरबार टूट गया। छर्ज्जू खाँ के तीन पुत्र थे—जाफर खाँ, प्यार खाँ और बासत् खाँ। ज्ञान खाँ निःसन्तान थे। जीवन खाँ के दो पुत्र थे—बहादुर खाँ और हैदर खाँ। बहादुर खाँ विष्णुपुर के महाराज के निमंत्रण पर बंगाल आ गये और हैदर खाँ संन्यास-आश्रम का अवलम्बन कर फकीर हो गये। बहादुर खाँ के बंगाली शिष्य-वंश की बात का उल्लेख हमने पहले किया है। हैदर खाँ फकीर थे और संगीत-साधना में वे काफी अग्रसर हो गये थे। उनके एक ध्रुपदिया-शिष्य का वंश कानपुर के निकट अभी विद्यमान है। लखनऊ के गुणी राजा नवाब अली खाँ साहब उनका विशेष सम्मान और प्रशंसा करते हैं।

छर्ज्जू खाँ के तीन पुत्रों—जाफर खाँ, प्यार खाँ और बासत् खाँ—के नाम भारतीय संगीत के इतिहास में सर्वदा स्वर्णाक्षरों में लिखे रहेंगे। ये तीनों भाई वास्तव में संगीत के अवतार-स्वरूप थे। गायन, वाद्य, विद्या और साधना में इनका स्थान उस समय के सभी गुणियों में शीर्ष पर था। वास्तव में ये नायक पदवाच्य थे। जाफर खाँ और प्यार खाँ ने अपने पिता छर्ज्जू खाँ से शिक्षा प्राप्त की थी, किन्तु बासत् खाँ के गुरु थे उनके चाचा ज्ञान खाँ। ज्ञान खाँ निःसन्तान थे अतः भ्रातुष्पुत्र बासत् खाँ को पोष्यपुत्र रूप में ग्रहण किया था और उसका पालन-पोषण किया था। बासत् खाँ को उन्होंने योग साधना और संगीत की शिक्षा दी थी।

इसके अलावा निर्मल शाह बीनकार की भी इन तीन भाइयों के प्रति बड़ी अनुरक्ति थी, इन भाइयों की प्रतिभा शैशवकाल से प्रकट होने लगी और निर्मल शाह की दृष्टि इस ओर आकृष्ट हुई थी। निर्मल शाह तानसेन के दोहित्र वंशीय थे अतः वंश के सम्बन्ध से वे इनके गुरु थे। वे इन्हें बड़े स्नेह से वीणा सुनाते और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वीणा के सभी गूढ़ रहस्य लिख कर देते थे। निर्मल शाह को कोई पुत्र नहीं था। उन्होंने अपनी समस्त विद्या अपने भ्रातुष्पुत्र उमराव खाँ को सिखायी थी। उमराव खाँ प्यार खाँ के समवयस्क और अंतरंग सुहृद थे। किन्तु संगीत के मामले में दोनों में होड़ भी बहुत तीव्र थी। जाफर खाँ, प्यार खाँ और बासत्—इन तीन भाइयों और उमराव खाँ—सभी ने एक ही समय में एक ही स्थान पर बाल्यजीवन बिताया था—छज्जू खाँ, ज्ञान खाँ और निर्मल शाह के समान ये भी गुरुओं की स्नेहपूर्ण छाया में संगीत सिद्ध हो उठे थे। इसीलिए इनमें संगीत-साधना के बीज ठीक समय पर ठीक ढंग से बोये गये। समय के साथ ये बीज फल-फूल सुशोभित विशाल संगीत-तरु रूप में परिणत हुए। ये ही तरु हिन्दुस्थान के असंख्य संगीत-पिपासुओं को कल्पवृक्ष के रूप में आश्रय प्रदान करने में समर्थ हुए।

जाफर खाँ, प्यार खाँ और बासत् खाँ बाल्यकाल से ही निर्मल शाह के साथ काफी समय तक रहे और वीणा-वादन की शिक्षा पायी थी। दिल्ली की बादशाही के अवसान के बाद तानसेन वंश के गुणियों ने वाराणसी में भद्रासन (वासगृह) स्थापित किया। वे समीपवर्ती राजन्यवृन्द की सभा में यातायात करते थे। कोई गुणी अयोध्या के दरबार में, कोई रीवाँ अधिपति की सभा में, कोई बेतिया के नरेश की राजसभा में आमन्त्रित होते थे। कई दिनों तक वे किसी दरबार या सभा में निर्धारित अवधि के लिए नहीं रहे। वर्ष में अपनी इच्छानुसार अलग-अलग समय पर अलग-अलग सभाओं में वे जाते थे—जहाँ भी वे जाते वहाँ के नरेश या नवाब अपने को धन्य मानते और उनकी यथोचित संवर्द्धना करते। किन्तु वर्ष में एक बार तानसेन वंश के सभी गुणी वाराणसी में सम्मिलित होते थे,—वर्ष में एक बार एक पारिवारिक प्रीति-सम्मेलन होता था। उस समय प्रत्येक गुणी अपने-अपने गुण और विद्या का परिचय देता था। बासत् खाँ, प्यार खाँ और जाफर खाँ को निर्मल शाह एक बार एक माह से अधिक समय तक प्रतिदिन वीणा सुनाते और वीणा-वादन का कौशल समझाते थे, वे प्रतिदिन नवीन-नवीन प्रणाली से नायकी तार (बाज के तार) से मन्द्र के तार पर जाकर मन्द्र षड्ज स्वर इस प्रकार ध्वनित करते कि तीनों भाई चकित हो जाते। निर्मल शाह किस प्रकार मध्य सप्तक से पलक भर में मन्द्र सप्तक के सभी स्वर झंकृत कर देते,—वीणा के परदों पर अंगुली के कितने प्रकार के खेल सम्भव हैं, यह देखकर तीनों भाई विस्मित होते किन्तु एक माह से अधिक काल तक सुनकर भी वे वह कौशल हृदयंगम नहीं कर सके। अन्त में निर्मल शाह ने उन्हें यह कौशल समझा दिया।

किन्तु निर्मल शाह जब गौरव के सर्वोच्च शिखर पर समासीन थे, उस समय उनके पुत्रतुल्य और छात्रोपम जाफर खाँ अपनी प्रतिभा के बल पर उनके समकक्ष स्थान प्राप्त कर सके थे। एक बार वार्षिक प्रीति-सम्मिलन में जब सभी गुणी काशीधाम में समागत हुए, तब काशी-नरेश की सभा में निर्मल शाह का वीणा-वादन और जाफर खाँ का रबाब वादन हुआ था। उस समय वर्षा ऋतु थी। वर्षा ऋतु में रबाब का चमड़ा शिथिल हो जाता है अतः रबाब की आवाज दब जाती है एवं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक प्रकार का श्रुतिकर्कश 'ढप्-ढप्' शब्द निकलता है। इसीलिए निर्मल शाह के अपूर्व वीणा-वादन के बाद रबाब की आवाज अत्यन्त अप्रिय, कर्कश लगी। तब जाफर खाँ ने वादन बन्द कर काशी-नरेश और निर्मल शाह से कहा कि एक माह के बाद मैं रबाब-वादन सुनाऊँगा। इस एक माह में जाफर खाँ ने वाराणसी के वाद्य-यन्त्र कारीगर से एक अभिनव वाद्य का निर्माण करवाया। यह वाद्ययन्त्र रबाब के ही समान है—किन्तु इस पर चमड़ा नहीं है, नीचे के भाग में चर्म और काष्ठ के बदले इस पर सुरबहार के समान तुम्बा है और ऊपर के भाग में सरोद के समान काष्ठदण्ड पर स्टील प्लेट लगी है। रबाब पर तांत के तार रहते हैं जबकि इस पर स्टील और पीतल के तारों का व्यवहार होता है। जाफर खाँ ने इस वाद्ययन्त्र का नाम रखा 'सुरशृंगार'। वीणा और रबाब दोनों वाद्ययन्त्रों के विभिन्न 'बाज' या वादन प्रणालियों को मिश्रित कर उन्होंने सुरशृंगार वाद्ययन्त्र का प्रवर्तन किया। एक माह बाद वे सुरशृंगार वाद्ययंत्र लेकर काशी-नरेश के पास गये। एक विशाल सभा का आयोजन कर निर्मलशाह को आमन्त्रित कराया गया। सुरशृंगार के स्वर इतने सुमिष्ट हैं कि इसके तारों की केवल झंकार से ही प्राण शीतल हो जाते हैं। सुरशृंगार वाद्ययन्त्र पर वीणा और रबाब का सम्यक् आलाप अंग जब जाफर खाँ ने दिखाया तब निर्मल शाह ने जाफर खाँ का आलिंगन कर कहा, "वाह बेटा! तुमने आज वीणा को हरा दिया।" इसे ही कहते हैं—"सर्वत्र जयमन्विच्छेत् शिष्यात् पुत्रात् पराजयम्"। जाफर खाँ के नव-गौरव से निर्मल शाह का वक्ष उल्लास से भर गया।

इसके पश्चात् रबाबी वश के गुणी वर्षा ऋतु में रबाब के बदले सुरशृंगार ही बजाते थे। शीतकाल में एवं मृदंग संगत के समम वे रबाब का व्यवहार करते थे, क्योंकि मृदंग-संगत होने पर रबाब श्रेष्ठ वाद्ययंत्र है। आज तक यही रीति प्रचलित है।

अंग्रेज शासनकाल के प्राग्भाग में अर्थात् अष्टादश शताब्दी के अन्तिम भाग और ऊनविंश शताब्दी के प्रारम्भ में तानसेन-वंश के कई उज्ज्वल प्रतिभाशाली वाद्ययंत्रकार एक साथ दिखायी देते हैं। भारतीय संगीत के वाद्ययंत्र-विभाग का यह एक अत्यन्त गौरवमय युग है। कण्ठसंगीत के शीर्ष पर वाद्ययंत्र-संगीत के अधिकार का कारण है। प्रथमतः श्रेष्ठ भारतीय कण्ठसंगीत में जिस प्रचुर प्राण-शक्ति का संहत और विशाल आत्मप्रकाश पहले मिलता था, परवर्ती युग में वह कम हो गया था। प्राण की विशालता, धीरता और एकाग्रता के लिए जिस प्रकार की साधना का प्रयोजन है, उस साधना की उपयोगी आधार-संख्या में ह्रास हो गया था। प्राणायाम को यदि हम व्यापकतर अर्थ में समझने की चेष्टा करें तो संगीत को एक श्रेष्ठ प्राणायम के रूप में समझ सकते हैं। प्राणायाम के फलस्वरूप प्राण पर सम्पूर्ण अधिकार—प्राण की व्याप्ति और प्राचुर्य होता है। परवर्ती गुणियों के देहयंत्र में जब पाण-धारण का सामर्थ्य कम हो गया तब वे यदि बाहर के वीणायंत्र पर ही प्राणों के विकास की अपनी सम्पूर्ण साधना लगा दें, तो इसमें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आश्चर्य की क्या बात है ?

वाद्ययंत्र-संगीत के उत्कर्ष का दूसरा कारण यह है कि वाद्ययंत्र-संगीत में जिस प्रकार के वैचित्र्य का विकास जितना सम्भव है, उतना कण्ठसंगीत में संभव नहीं है। कण्ठ की श्रेष्ठता स्वीकृत होने का कारण यह है कि यह सहजात है और कण्ठ के स्वर का इच्छानुसार खेल करना जितना सहज है, बाहर के जड़वाद्ययंत्र से स्वर निकाल कर उसका इच्छानुसार खेल दिखाना उतना सहज नहीं है। किन्तु वाद्ययंत्र जड़ होते हुए भी उसकी सुविधा है—वाद्ययंत्र की सुविधा यह है कि मनुष्य की कुछ स्वाभाविक सीमा है, (वाद्य) यंत्र जड़वस्तु है—जड़ की वह सीमा नहीं है, जड़ का परिश्रम से क्लान्ति का प्रश्न नहीं है, जड़ से ऐसी कई सुविधाएँ मिल सकती हैं जिन्हें जीवित प्राणी से पाना सम्भव नहीं है। यथा, मोटर से जो सुविधा है, घोड़ागाड़ी से वह सम्भव नहीं है। जड़ के साथ चेतन का पार्थक्य चिरकाल से रहा है—भविष्य में भी रहेगा।

वाद्ययंत्र-संगीत में 'द्रुत' अंश का उत्कर्ष अत्यधिक है—कण्ठ से 'बेसुरापन' दूर करना कठिन है, किन्तु वाद्ययंत्र को अच्छे ढंग से मिलाने पर उससे मधुर स्वर स्वतः निःसृत होता है।

कहना न होगा कि कण्ठसंगीत में जिस प्रकार प्राणायाम या श्वास पर काबू प्रयोजनीय है, उसी प्रकार वाद्ययंत्र-संगीत के उत्कर्ष के लिए भी चित्त की स्थिरता जरूरी है—चंचल मन से गभीर और श्रेष्ठ संगीत का विकास कभी सम्भव नहीं है।

गत शताब्दी के सेनिया-गुणियों ने उत्कृष्ट वाद्ययंत्र-संगीत का बहुत विकास किया। जाफर खाँ, प्यार खाँ और बासत् खाँ ने रबाब एवं सुरश्रृंगार-वादन तथा उमराव खाँ ने वीणा संगीत का इतना गभीर और उन्नत स्तर कायम कर दिया था कि कण्ठसंगीत के उत्कर्ष का अभाव रहते हुए भी किसी को वास्तव में अभाव महसूस नहीं हो सका। प्यार खाँ और बासत् खाँ वाद्ययंत्र-संगीत में ही नहीं बल्कि कण्ठसंगीत में भी असाधारण प्रतिभा और सृष्टि-शक्ति का परिचय दे गये हैं। प्यार खाँ अत्यन्त सुमधुर गायक थे, और बासत् खाँ तो शेष जीवन में गायन ही प्रस्तुत करते थे। बासत् खाँ कई उत्कृष्ट ध्रुपदों की रचना कर गये हैं।

जाफर खाँ वाद्ययंत्र-संगीत में सिद्ध थे—अत्यन्त कठोर तपस्या से वे 'रबाबी' संगीत-पद्धति को वाद्ययंत्र-संगीत के शीर्ष-स्थान पर ले जा सके थे। सुरश्रृंगार वाद्ययंत्र का अपरूप लालित्य और आवेशमय मादकता उनका ही अवदान है। प्यार खाँ भी अधिक समय तक सुरश्रृंगार ही बजाते थे। जाफर खाँ और प्यार खाँ दोनों भ्राता काफी समय तक स्वनामधन्य, प्रतिभा के अवतार स्वरूप राजा-राम वंशीय रीवाधिपति महाराज विश्वनाथ सिंह की सभा में रहते थे। महाराज विश्वनाथ सिंह की काव्य-प्रतिभा के सम्बन्ध में सूर्यप्रसन्न वाजपेयी महाशय ने कुछ दिन पहले किसी मासिक पत्रिका में समीक्षा लिखी थी। महाराज विश्वनाथ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सिद्ध संगीत-विद्या में भी पारदर्शी और यथार्थ संगीत-साधक थे। वे जाफर खाँ साहब के शिष्य थे और कई उत्कृष्ट ध्रुपदों की रचना कर गये हैं। राजाराम और राजा मान के बाद संगीत की एकनिष्ठ साधना में हिन्दू नृपतियों में महाराज विश्वनाथ का नाम चिरदिन अग्रगण्य रहेगा।

प्यार खाँ भी महाराज विश्वनाथ की सभा में ही रहते थे, किन्तु बीच-बीच में वे बेतिया-महाराज नन्दकिशोर के दरबार में भी जाते थे। नन्दकिशोर स्वयं उत्कृष्ट ध्रुपद-गायक थे और उन्होंने स्वयं कई ध्रुपदों की रचना की। वे कथक ब्राह्मण गायकों को शिक्षा देते थे। बेतिया के 'कथक' घराने के उस्ताद उनके शिष्य-वंश के ही हैं। बेतिया कथक घराने के ब्राह्मण गायकों में बख्तावरजी, शिवनारायणजी, गुरुप्रसादजी प्रभृति गुणियों के नाम उल्लेखनीय हैं। यह बात सम्भवतः कई गुणी जानते हैं कि कलकत्ता के विख्यात धमार गायक विश्वनाथ राव इस शिवनारायण मिश्र के शिष्य थे और स्व० राधिका गोस्वामी ने गुरुप्रसाद जी से शिक्षा पायी थी। विख्यात गायक काशीनाथ भी बेतिया घराने के थे। बेतिया महाराज नन्दकिशोर प्यार खाँ के शिष्य थे। इससे हम समझ सकते हैं कि भारत के सभी घरानों के गुणी परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से तानसेन-वंश के ऋणी हैं।

प्यार खाँ साहब केवल अद्वितीय सुमिष्ट गायक या मात्र वादक ही नहीं थे, बल्कि संगीत के उच्चस्तरीय स्रष्टा थे। तिलक कामोद रागिनी से प्रत्येक संगीत रसिक परिचित है। तिलक कामोद की गभीरता कम नहीं है, यह रागिनी इतनी श्रुतिमधुर है कि अशिक्षित भी इस रागिनी से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। यह तिलक कामोद रागिनी प्यार खाँ की सृष्टि है। उन्होंने एक अत्यन्त नगण्य धुन से इस सुमिष्ट रागिनी की सृष्टि की थी। एक दिन प्यार खाँ गाँव के रास्ते से गुजर रहे थे कि किसी एक कुटीर से एक स्त्री के गाने की धुन उनके कानों में पड़ी। वह स्त्री ग्रामीण धुन में एक ग्रामीण गीत (छड़ा) गाते-गाते जाँता (चक्की) में धान पीस रही थी। वह धुन प्यार खाँ साहब को बहुत की प्रिय लगी। उन्होंने अनुभव किया कि इस सहज मीठी धुन में बड़ी-बड़ी रागिनियों का बिना प्रयत्न प्राप्य, सुलभ मिश्रण निहित है—उसी का अवलम्बन कर उन्होंने तिलक कामोद रागिनी की सृष्टि की। देश, बिहाग और कामोद के मिश्रण से तिलक कामोद की सृष्टि हुई। तिलक कामोद रागिनी संगीत जगत् में अमर हो गयी। प्यार खाँ ने इस रागिनी में उत्कृष्ट आलाप का द्वार उद्घाटित कर दिया और इस रागिनी में उत्कृष्ट ध्रुपदों की रचना कर अपनी संगीत-प्रतिभा का परिचय दिया।

संगीत-प्रतिभा इसी को कहते हैं। राग-रागिनी का मिश्रण थोड़ा-बहुत कई लोग कर सकते हैं, किन्तु इस प्रकार का मिश्रण, जिसके फलस्वरूप एक स्वतंत्र प्राणवन्त रागिनी की सृष्टि हो सके, सबके लिए सम्भव नहीं है। इस प्रकार की क्षमता जिनमें है वे ही यथार्थ में कलाविद् हैं। प्यार खाँ में यह क्षमता थी और वे अत्यन्त प्राणस्पर्शी कलावन्त थे। विद्या से मनुष्य की श्रद्धा अर्जित की जा सकती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है किन्तु माधुर्य से मनुष्य का हृदय द्रवीभूत होता है। प्यार खाँ के कण्ठसंगीत और सुरशृंगार-वादन में एक प्रकार की अपरूप उन्मत्तताकारक और अभिभूत-कारक शक्ति थी, जो उनके समसामयिक कम ही गुणियों में पायी जाती थी। प्यार खाँ ने रबाबी वाद्ययंत्र-संगीत के गाम्भीर्य के साथ वीणाकार की मोहक झंकार मिला दी थी, ध्रुपद के धीर-उदात्त रस में होरी का लालित्य मिला दिया था; इस मिश्रण के फलस्वरूप ही उनके संगीत ने सम्मोहन-गुण और चित्ताकर्षण के कारण अतुलनीय स्थान प्राप्त कर लिया था।

प्यार खाँ के समसामयिक उत्तरसाधक और प्रतियोगी थे उमराव खाँ। इनकी संगीत-पद्धति परस्पर के अनुरूप थी। इनके संगीत में जिस प्रकार उज्ज्वल रस का आधिक्य मिलता है, उसी प्रकार इनके छन्द में शोभन लास्य का अनुभव होता है। हिन्दुस्थान के वातावरण में इन्होंने सौन्दर्य और सौकुमार्य का प्रचुर प्रसार कर दिया था। ये गुणी अधिकांश समय अयोध्या, बेतिया, रीवाँ, टोंक, प्रभृति दरबारों में ही बिताते थे। इनके कई शिष्य थे। कई गुणी ऐसे हैं, जो गुण और विद्या के प्रसार में विशेष पटु नहीं हैं, यद्यपि उन्होंने स्रष्टा और गुणी के हिसाब से बहुत महनीय स्थान प्राप्त किया है। उनका अन्तःकरण अधिक केन्द्रमुखी होने के कारण वे विद्या का प्रचार नहीं कर सके। इस मामले में जाफर खाँ और उनके स्वनामधन्य तीन पुत्रों—काजम अली, सादिक अली और निसार अली खाँ—के नाम लिये जा सकते हैं। संगीत के इतिहास में इनके नाम चिरस्मरणीय रहेंगे, किन्तु इनकी कलासृष्टि इनके साथ ही समाप्त हो गयी। आज कहीं भी उसका चिह्न नहीं मिलेगा—किन्तु प्यार खाँ का कलासौन्दर्य जाफर खाँ की सृष्टि की अपेक्षा गरिमामय न होते हुए भी उसका प्रसार अत्यधिक था। प्यार खाँ का संगीत चारों दिशाओं में फैल गया था, क्योंकि वे सौन्दर्य-वितरण करना जानते थे। प्यार खाँ के असंख्य शिष्य थे, किन्तु उनमें उनके भागिनेय बहादुर सेन ही सर्वश्रेष्ठ थे। अन्यान्य शिष्यों में बेतिया के राजा नन्दकिशोर और टोंक के नवाब हसमत जंग के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

उमराव खाँ के शिष्य भी कम नहीं थे। उनके दो पुत्र अमीर खाँ और रहीम खाँ बीनकार बड़े गुणी थे। इनके अलावा उनके दो शिष्य कुतबुद्दौला और गुलाम महम्मद खाँ बहुत प्रसिद्ध थे। कुतबुद्दौला अमात्य थे, वे अयोध्या के नवाब के विशेष प्रिय थे। नवाब किसी कारणवश उमराव खाँ पर क्रुद्ध हो गये थे, कुतबुद्दौला ने उस गुरुतर विपद से उमराव खाँ की रक्षा की। इसीलिए उमराव खाँ ने कुतबुद्दौला को सितार और बीन की उत्तम ढंग से शिक्षा दी। गुलाम महम्मद खाँ भी उमराव खाँ के बड़े प्रिय शिष्य थे। किन्तु उन्हें वीणा-वादन की शिक्षा नहीं दी गयी। उमराव खाँ बड़ा सितार तैयार करवा कर उस पर ही उन्हें आलाप की शिक्षा देते थे—इस प्रकार सुरबहार वाद्ययंत्र की उत्पत्ति हुई। गुलाम महम्मद खाँ के पुत्र विख्यात सुरबहार-वादक सज्जाद महम्मद खाँ का नाम कलकत्ता के संगीत-रसिक निश्चय ही जानते हैं। सज्जाद महम्मद दीर्घकाल तक महाराज

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यतीन्द्रमोहन ठाकुर महोदय के सभा-वादक थे। उनके समान अन्य कोई सितार एवं सुरबहार-वादक कलकत्ता में नहीं आया। आज भी ऐसा मानते हैं कि 'सज्जाद महम्मद के साथ सुरबहार वाद्ययंत्र भी मर गया'।

जाफर खाँ और प्यार खाँ के कनिष्ठ भ्राता बासत् खाँ का नाम बंगाल में सुपरिचित है। बासत् खाँ ऊनविंश शताब्दी के यथार्थ संगीत नायक थे। गत शताब्दी में उनके तुल्य प्रतिभाशाली संगीत क्षेत्र में और कोई नहीं था। बासत् खाँ का जन्म अनुमानतः ई० 1787 में हुआ था। उस समय उनके पिता छर्ज्जू खाँ दिल्ली दरबार के प्रतिष्ठित गायक और वादक थे, अतः बासत् खाँ का जन्म सम्भवतः दिल्ली नगर में हुआ। छर्ज्जू के अन्य भ्राता ज्ञान खाँ निःसन्तान और फकीर थे। इसीलिए ज्ञान खाँ ने बासत् खाँ के बाल्यकाल में छर्ज्जू खाँ से उसे पोष्यपुत्र रूप में ग्रहण किया। बासत् खाँ ज्ञान खाँ से ही शिक्षित और दीक्षित थे। छर्ज्जू खाँ के अन्य दो पुत्रों—जाफर खाँ और प्यार खाँ ने संगीत विद्या में निःसन्देह असाधारण शिक्षा और पारदर्शिता प्राप्त की थी, किन्तु बासत् खाँ की शिक्षा और भी सर्वतोमुखी थी। बासत् खाँ गायन-वादन या संगीत विद्या के ही नहीं; संस्कृत, धर्मशास्त्र और पारसी भाषा के भी विलक्षण पण्डित थे और फकीर ज्ञान खाँ के पालन-पोषण में बड़े होने के कारण उनके (बासत् खाँ के) अन्तर में धर्मभाव भी अच्छी तरह से जाग्रत हो गया था। बासत् खाँ परिणत आयु में यथार्थ योगी पुरुष हो सका था। ज्ञान खाँ वास्तव में नादयोग के योगी थे। उन्होंने बासत् खाँ को बाल्यकाल से ही अपने पास रखकर बड़ा किया था। बासत् खाँ पर उनका स्नेह अत्यधिक था। सुना जाता है कि शिक्षा आरम्भ होने के बाद बासत् खाँ को बारह वर्षों तक रबाब पर केवल 'सरगम' और विविध अलंकारों का ही अभ्यास करना पड़ा था—उसके बाद ज्ञान खाँ ने बासत् खाँ को विविध राग-रागिनियों की शिक्षा दी थी। रबाब पर बासत् खाँ का हाथ जिस प्रकार अत्यन्त सुमिष्ट था, उसी प्रकार उनका कण्ठ भी सुमधुर था। दुःख की बात यह है कि यौवन में प्रवेश के पहले ही बासत् खाँ रबाब वाद्ययंत्र छोड़ देने के लिए बाध्य हुए थे। कहा जाता है कि एक बार लखनऊ-दरबार में किसी एक साधु मृदंग-वादक ने आकर सभी गुणियों का प्रतियोगिता के लिए आह्वान किया—उनके मृदंग-वादन की संगत में कोई भी गुणी गा-बजा नहीं सका, क्योंकि लय पर साधु का जिस प्रकार अधिकार था, उसी प्रकार उनका हाथ भी असामान्य रूप से तैयार था। जब सभी गुणी एक-एक कर पराजित हो गये, तब बासत् खाँ रबाब लेकर प्रतियोगिता के लिए उपस्थित हुए। बासत् खाँ से साधु पराजि हो गये। तब साधु ने बासत् खाँ पर किसी प्रकार का आभिचारिक अनुष्ठान किया, जिससे बासत् खाँ का दाहिना हाथ वातव्याधि से आक्रान्त हो गया, इसी कारण वे जीवन-भर वाद्य-यंत्र नहीं बजा सके। किन्तु कण्ठसंगीत से वे मृत्युपर्यन्त जनमण्डली को मुग्ध और भाव-विभोर करते रहे। एक बार देश रागिनी में उनके द्वारा रचित गान सुनकर बादशाह वाजिद अली शाह ने अपना बहुमूल्य हीरकहार कण्ठ से खोलकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बासत् खाँ को पहना दिया था।

लखनऊ दरबार भंग हो जाने के बाद बासत् खाँ कलकत्ता आ गये और एक वर्ष से अधिक समय तक मेटियाबुरुज में बन्दी वाजिद अली शाह के पास रहे। उस समय सुप्रसिद्ध धार्मिक और विद्वान् भूपति हरकुमार ठाकुर ने उनसे रबाब और सितार-वादन की शिक्षा पायी। हरकुमार ठाकुर एक आदर्श राजा थे। साधकों में वे अग्रणी थे, तंत्रशास्त्र पर उनका जिस प्रकार असामान्य अधिकार था, संगीत-साधना में भी वे उसी प्रकार अग्रगण्य थे। कलकत्ता में उन्होंने एक विराट सभा का आयोजन कर कई गुणियों और पण्डितों के समक्ष बासत् खाँ साहब को दस सहस्र रुपये पारितोषिक स्वरूप दिये और 'संगीत नायक' की उपाधि से विभूषित किया। बासत खाँ साहब भी हरकुमार ठाकुर महोदय को एक प्रशंसापत्र लिख गये कि "ठाकुर महोदय मेरे यथार्थ संगीत शिष्य हैं।" बासत् खाँ के कलकत्ता-निवास के समय विख्यात रबाब-वादक कासिम अली खाँ ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। कासिम अली खाँ बासत् खाँ के ज्येष्ठ भ्राता जाफर खाँ के पौत्र थे। कासिम अली खाँ के तुल्य वाद्ययंत्र-संगीत-पारदर्शी और कोई कभी बंगाल में नहीं आया। बासत् खाँ की शिक्षा के बल पर ही कासिम अली खाँ इस क्षेत्र में इतनी उन्नति कर सके थे। बासत् खाँ के अन्य शिष्य सरोदवादक नियामतुल्ला खाँ भी भारत में सुविख्यात हैं। नियामतुल्ला के पुत्र कौकुभ खाँ आज जगद्विख्यात हैं। करामतुल्ला खाँ साहब नियामतुल्ला के दूसरे पुत्र हैं। कलकत्ता नगर करामतुल्ला खाँ साहब और कौकुभ खाँ साहब की गुणवत्ता को कभी भूल नहीं पायेंगे। करामतुल्ला खाँ साहब का सरोद-वादन सुनने का जिन्हें सौभाग्य मिला है और जिन्होंने उनकी यथार्थ तालीम का वादन सुना है वे जानते हैं कि करामतुल्ला खाँ साहब के साथ-साथ आज किस वस्तु का भारत से लोप हो गया। सरोद पर रबाब के अंग से आलाप यदि कोई बजा सका है तो नियामतुल्ला खाँ और केवल उनके पुत्र ही। अन्यान्य सरोद-वादकों ने वीणा और सुरबहार का अंग लिया है किन्तु ये यथार्थ में रबाब अंग से बजाते थे। बासत् खाँ साहब से मात्र छः मास तक तालीम पाकर नियामतुल्ला खाँ साहब भारत के श्रेष्ठ सरोद-वादक हो गये थे। इससे हम समझ सकते हैं कि बासत् खाँ किस प्रकार के गुणी और प्रतिभाशाली थे।

मेटियाबुरुज में बादशाह वाजिद अली शाह की संगीत सभा में बासत् खाँ साहब डेढ़ वर्ष तक रहने के बाद राणाघाट के जमींदार पाल चौधुरी महोदय के आमंत्रण पर कुछ महीनों तक राणाघाट में रहे। इस अवधि में वाजिद अली शाह की मृत्यु हो गयी। इसीलिए बासत् खाँ साहब ने अन्य किसी दरबार में जाने का निश्चय किया था, किन्तु पाल चौधुरी तथा उनके परिवार के लोगों ने बासत् खाँ को विशेष सम्मान के साथ राणाघाट में रखा और उनसे संगीत-शिक्षा प्राप्त की। संगीत और साहित्य में इस परिवार की बड़ी अभिरुचि थी। कविवर नवीनचन्द्र सेन की आत्मजीवनी से हमें पाल चौधुरी-परिवार के काव्य-उत्साह का परिचय मिलता है। संगीत का भी वह बड़ा अनुरागी था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बासत् खाँ यथार्थ संगीतानुरागियों को निष्कपट भाव और खुले मन से शिक्षा देते थे, किन्तु जो यथार्थ संगीत-सेवी नहीं, मात्र शौक के लिए संगीत-अनुशीलन करते थे, उन्हें वे बिलकुल नहीं सिखाते थे। शिक्षा के मामले में उनकी दृष्टि धन के प्रति नहीं थी। वे नादविद्या के प्रति अकृत्रिम भक्ति चाहते थे। इस प्रकार की भक्ति वे जहाँ भी अनुभव करते वहाँ वे विद्या का मुक्तहस्त वितरण करते थे। शिष्यों को वे इतना कुछ सिखा देते कि शिष्य सीखकर भी अभ्यास से उसे पूरा नहीं कर सकते थे। राजा हरकुमार ठाकुर के प्रति उनका आन्तरिक स्नेह था और उन्होंने अपनी अत्यन्त गोपनीय विद्यासम्पद् उन्हें दान कर दी थी। हरकुमार ठाकुर के उनके शिष्य होने के बाद शुरू में कुछ महीनों तक बासत् खाँ ने उन्हें बिलकुल नहीं सिखाया, केवल 'सरगम'-साधना करने के लिए कहते रहे। कुछ माह बाद ठाकुर महाशय ने उनसे पूछा, इस प्रकार शिक्षा देने से क्या शिक्षा सम्पूर्ण होगी? तब बासत् खाँ ने उनसे कहा कि शिक्षा का अब समय आ गया है। इसके पश्चात् तीन महीनों तक इतना सिखा दिया कि हरकुमार ठाकुर महाशय की और कुछ आकांक्षा नहीं रही। शिक्षा का ऐसा कौशल वे जानते थे कि अत्यन्त कम समय में ही वे शिष्य को संगीत के अत्यन्त गूढ़ और दुरूह विषय में भी पारदर्शी बना देते थे। मात्र छः माह की शिक्षा से ठाकुर महोदय रबाब और सितार वादन में उच्च-श्रेणी के वाद्ययंत्र-संगीत विद्या को आयत्त कर सके।

बंगाल में डेढ़ वर्ष रहने के बाद बासत् खाँ गया के निकटवर्ती टिकारी राज्य के अधिपति के निमंत्रण पर गया गये। उनका शेष जीवन गया में ही बीता। टिकारी के राजा ने बासत् खाँ से एक अलौकिक क्षमता का परिचय देने का अनुरोध किया था। उस समय टिकारी राज्य में अनावृष्टि के कारण भीषण दुर्भिक्ष था। प्रजा में हाहाकार मचा हुआ था। टिकारी के राजा ने बासत् खाँ का आह्वान कर कहा, "खाँ साहब! आपके पूर्वपुरुष संगीत के प्रभाव से जंगल में आग जला सकते थे, आकाश से वर्षा करा सकते थे, आप भी अभी यह अनावृष्टि दूर करें। आप यदि मेघ का गान गायें तो अवश्य ही वर्षा होगी!" तब बासत् खाँ ने महाराज से कहा, "महाराज! मेरे पूर्वपुरुष महायोगी थे, किन्तु मैं संसारी-गृहस्थ पुरुष हूँ—स्त्री, पुत्रों के भरण-पोषण की चिन्ता में रहता हूँ—केवल सुबह-शाम भगवान् नाम मात्र लेता हूँ! मेरे गायन से क्या वर्षा होगी?" किन्तु महाराज ने बासत् खाँ को छोड़ा नहीं—बासत् खाँ को मेघ और मल्लार में आलाप और गान गाना पड़ा। विधि की कृपा से अघटन भी घट गया—कई दिनों की अनावृष्टि के बाद उस दिन ही आकाश में बादल घिर आये और वृष्टि होने लगी। बासत् खाँ जानते थे कि यह नितान्त देवकृपा है, किन्तु महाराजा को न जाने कैसे विश्वास हो गया कि बासत् खाँ के संगीत के फलस्वरूप ही अनावृष्टि का निवारण हो गया। तब महाराजा ने बासत् खाँ को बड़ी भूसंपत्ति दे दी, जिस पर किसी प्रकार का कर नहीं लगता था। टिकारी राज्य के कुछ सर्वोत्कृष्ट ग्राम पुरुषानुक्रम से बासत् खाँ को मिले। इसीलिए बासत् खाँ ने मृत्युपर्यन्त टिकारी राज्य का परित्याग नहीं किया। इसी समय में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गया के कुछ धनी पण्डाओं ने भी बासत् खाँ का शिष्यत्व ग्रहण किया और बासत् खाँ की उपस्थिति से गया संगीत के एक प्रधान केन्द्र रूप में परिणत हो गया। गया के पण्डाओं ने विष्णुपाद पद्म में यात्रियों द्वारा प्रदत्त पिण्डसह दक्षिणा का एक अंश इस समय बासत् खाँ साहब के लिए निर्दिष्ट कर दिया था।

बासत् खाँ बड़े दीर्घजीवी थे। उनकी आयु शतवर्ष से अधिक हो गयी थी। गया में वे अधिकांश समय साधन-भजन में बिताते थे। वे देव-देवी के परम भक्त थे—फकीरी, योगसाधना और हिन्दू भक्ति साधना उनमें समभाव से क्रियाशील थी। वे रात-दिन नाम जप करते रहते थे और प्राणायाम में वे विलक्षण अग्रसर हुए थे। इसीलिए उनके लिए अत्यंत दीर्घ निरोग जीवन सम्भव हो सका था। बासत् खाँ द्वारा रचित ध्रुपदों का पाठ करने पर हमें उनकी आंतरिक भक्ति और रस का परिचय मिल जाता है। ई० 1887 में बासत् खाँ ने गयाधाम में तीन पुत्रों और एक कन्या के सामने सज्ञान अवस्था में ईश्वर पदारविन्द के ध्यान में निमग्न होकर इहलीला संवरण की। बासत् खाँ के समान कृती और साधक संगीत जगत् में वास्तव में विरल है। सेनिया वंश में भी उनके समान सदानन्द, निरभिमानी, भगवन्निष्ठ, नादविद्या की पराकाष्ठा पर पहुँचे अन्य किसी भी संगीतसाधक का उदाहरण दुर्लभ है।

जाफर खाँ, प्यार खाँ और बासत् खाँ की संगीत-विद्या उत्तराधिकार रूप में सादिक अली खाँ, बहादुर सेन खाँ और अली महम्मद खाँ (बड़कू मियाँ) ने पायी थी। सादिक अली खाँ जाफर खाँ के पुत्र थे, बड़कू मियाँ बासत् के पुत्र थे, किन्तु बहादुर सेन खाँ प्यार खाँ के भागिनेय थे। प्यार खाँ ने विवाह नहीं किया; उन्होंने अपने भागिनेय को ही पोष्यपुत्र रूप में ग्रहण किया था और संगीतविद्या का उत्तराधिकार दिया था। सादिक अली और बहादुर सेन समवयसी और संगीत-विद्या में तीव्र प्रतियोगी थे। बासत् खाँ के बाद संगीत जगत् में इनका नाम विशेष प्रसिद्ध हो गया था। सादिक अली के और तीन भ्राता थे। काजम अली खाँ सबसे ज्येष्ठ थे, उसके बाद सादिक अली, फिर निसार अली और बाद में आमद अली। आमद अली अल्पायु थे, इसीलिए उन्हें संगीत क्षेत्र में अपनी गुणवत्ता का परिचय देने का अवसर नहीं मिला। अन्य तीन भाइयों ने भारत में विशेष ख्याति प्राप्त की थी। बंग विख्यात रबाब-वादक काशिम अली खाँ काजम अली खाँ के पुत्र थे। काशिम अली खाँ का नाम बंगाल आज भी भूला नहीं है—उनके साथ-साथ उनके पिता का नाम भी अमर रहेगा। और सादिक अली खाँ को हिन्दुस्थान कभी नहीं भूला और भूलेगा भी नहीं, क्योंकि सादिक अली खाँ अत्यन्त शक्तिशाली वादक थे और संगीत-विद्या में प्रमाण स्वरूप थे। बासत् खाँ के बाद सादिक अली के समान सुपण्डित और कोई दिखायी नहीं देता। बासत् खाँ की भाँति इन्होंने भी उत्तम पण्डितों से शिक्षा पायी थी और संगीत विषयक संस्कृत शास्त्रों से प्रगाढ़ ज्ञान प्राप्त किया था। किन्तु पाण्डित्य ने सादिक अली को शुष्क नहीं बनाया, बल्कि पांडित्य ने सादिक अली की संगीत-सृष्टि को ज्ञान-गरिमा से मण्डित

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कर दिया और विद्या के गभीर रसस्तर के साथ उनके अन्तर को संयुक्त कर दिया। यथार्थ विद्या कभी शुष्कता को जन्म नहीं देती—स्वयं वीणापाणि वाणी (सरस्वती) विद्यास्वरूपिणी है किन्तु वहाँ रस का किसी प्रकार का अभाव है ? विद्या के गभीर रसस्तर में प्रवेश न कर हम केवल बाहर के व्याकरण, अलंकार आदि को लेकर सिर खपाते रहते हैं इसीलिए हम सोचते हैं कि विद्या रस की अन्तराय, बाधक है, किन्तु ऐसा सोचना बड़ी भूल है। मस्तिष्क की शुष्क विद्या-चर्चा नीरस हो सकती है किन्तु जिस विद्या की उपलब्धि हृदय से की जाती है, वह रस-भाण्डार स्वरूप है।

इस रस-भाण्डार में प्रवेश करना सीख गये थे, इसीलिए जाफर खाँ, बासत् खाँ और सादिक अली मात्र प्राणहीन, रसहीन उस्ताद रूप में परिणत नहीं हुए—बल्कि अत्यन्त समृद्ध ज्ञानसम्पद से पूर्ण और प्रगाढ़ रस के रसिक, अनन्य सामान्य कलाविद् और तंत्रकार रूप में अपनी नव-नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा की सृष्टि से हिन्दुस्थान को महिमामण्डित करने में समर्थ हुए थे।

दूसरी ओर बहादुर सेन में पाण्डित्य का अभाव था, बहादुर सेन के संगीत में प्रगाढ़ रस का परिचय हमें उतना नहीं मिलता, किन्तु उनके संगीत में रंजिनी शक्ति इतनी अधिक थी कि हिन्दुस्थान में लोकरंजन गुणों के लिए बहादुर सेन का पद सभी को अतिक्रम कर गया था। बहादुर सेन ने प्यार खाँ से रबाब और सुरश्रृंगार वादन की शिक्षा पायी थी। उनके हाथ में ईश्वरप्रदत्त असामान्य मिठास थी। इस मिठास गुण के बल पर वे सभी का मन जीत लेते थे। किन्तु बहादुर सेन में धी-शक्ति नहीं थी, इसीलिए वे राग-रागिनी के गूढ़ स्वरूप और राग-रागिनी के स्वधर्म और लीला के मूल रहस्य को हृदयंगम नहीं कर सके। राग-रागिनी के व्यवहार में किसी प्रकार का दोष नहीं रहता था एवं मिष्टता गुण के बल पर वे जो कुछ भी बजाते, उसके बाद किसी का भी गाना-बजाना जमता नहीं था। उनकी कला-सृष्टि में ज्ञान की दृष्टि नहीं थी—किन्तु एक स्वतः-सिद्ध आवेग था, जो भूल-भ्रान्ति की सृष्टि नहीं करता, आनन्द की तन्मयता में स्रष्टा और श्रोता दोनों को ही आत्म-विस्मृत बना देता है। वस्तुतः बहादुर सेन स्वयं क्या अद्भुत सृष्टि करते थे, उस विषय में वे स्वयं-अज्ञान नहीं थे।

उनकी सृष्टि बहुत सुन्दर होते हुए भी ज्ञान के अभाव में बहुमुखी समृद्धता, विचित्र और नवोन्मेष की क्षमता में वृहद् बन नहीं सकी। हाथ की मिठास कम होते हुए भी सादिक अली का स्थान बहादुर सेन के ऊपर था। शिक्षा सम्पूर्ण कर जब इन्होंने लोकालय में प्रवेश कर प्रथम बार बजाने की अनुमति पायी, तब इनका एक प्रकाण्ड पारिवारिक संगीत-सम्मेलन काशीधाम में अनुष्ठित हुआ था। इस संगीत—सम्मेलन का आह्वान प्यार खाँ ने किया था। काशीधाम के तत्कालीन सभी विख्यात गायक-वादक इस सम्मेलन में आमंत्रित किये गये थे। बहादुर सेन की शिक्षा समाप्त हो जाने पर उन्हें जनसमाज में यथार्थ पद प्राप्त करने की सुविधा प्रदान करने के उद्देश्य से ही प्यार खाँ ने इस जलसे का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आयोजन किया था। इस आयोजन का और एक उद्देश्य था। उनके भ्रातुष्पुत्र काजम अली, सादिक अली प्रभृति को बहादुर सेन की गुणवत्ता से अभिभूत करना। प्यार खाँ चाहते थे कि उनके भागिनेय हिन्दुस्थान-विजयी हो जायें। इस विषय में भ्रातुष्पुत्रों के प्रति उनके पक्षपात का कुछ अभाव था।

उस जलसे में सभी को केवल बिहाग रागिनी गाने-बजाने के लिए कहा गया। पहले काशी के सभी गुणियों ने एक-एक कर कण्ठ से या वीणा पर बिहाग में आलाप पेश किया। उसके बाद बहादुर सेन का आह्वान किया गया। बहादुर सेन की तालीम में प्यार खाँ ने रंजक रस का इस ढंग से समावेश कर दिया था कि इस रंजिनी शक्ति के बल पर ही बहादुर सेन ने बिहाग के आलाप से उपस्थित गुणीमण्डली को मुग्ध और विह्वल कर दिया। बहादुर सेन ने दो घण्टा बिहाग में आलाप बजाकर जब सुरश्रृंगार-वादन बद किया, तब प्यार खाँ ने उच्च स्वर में अपने भ्रातुष्पुत्रों का आह्वान कर कहा, "आओ, तुम लोग इसके ऊपर यदि कुछ बजा सकते हो तो आओ।" तब सादिक अली खाँ के बड़े भाई काजम अली खाँ ने रबाब पर बिहाग का आलाप शुरू किया। सुरश्रृंगार पर सूंत और चिकारी की झंकार से जो श्रुति-सुखकर और रंजनगुण-मनोहर आलाप सम्भव है, रबाब पर वह सम्भव नहीं है। रबाब के गम्भीर नाद से जो आलाप उत्पन्न होता है, उसका रस भिन्न प्रकार का है। किन्तु रबाब के छन्द का वैचित्र्य सुरश्रृंगार की अपेक्षा अधिक है। काजम अली ने स्थायी, अन्तरा समाप्त कर पूर्व कल्पनातीत मार्ग से आभोग जब शुरू किया तो बिहाग का सौन्दर्य और माधुर्य इतना निखरा, जैसे मेघ के रुद्ध द्वार भेद कर पूर्णचन्द्र आकाश में उदित हो गया हो। समवेत गुणियों ने 'हा-हा' शब्द कर एक अननुभूतपूर्व आनन्द की लहर उठा दी। तब काजम अली ने वादन बन्द कर प्यार खाँ को सम्बोधन करते हुए कहा, "काका मियाँ! आपने यह तालीम क्या बहादुर सेन को दी है!" प्यार खाँ ने तब सिर झुका कर काजम अली के पास आकर उनके दोनों हाथ थामते हुए कहा, "काजम! यह तालीम तुम लोगों के लिए ही है! बहादुर सेन का वादन जैसे हीरों का कलश है! उसमें रोशनी का अभाव नहीं, किन्तु राग का अमृतकुण्ड तो तुम लोगों ने ही पाया है—तुम लोगों का कलश मिट्टी का है किन्तु उसमें पवित्र तीर्थ सलिल है! तुम लोगों में रोशनी का अभाव है, किन्तु बहादुर सेन के घड़े में जल का अभाव है। रंग की प्रदीप्ति से बहादुर सेन हिन्दुस्थान को पागल, मुग्ध कर देगा, किन्तु विद्या का पूर्ण कुम्भ सादिक अली के ही अधिकार में है!"

बहादुर सेन खाँ साहब और सादिक अली खाँ साहब की शिक्षा की बात हमने पूर्व अध्याय में लिखी है। गत शताब्दी में इनके तुल्य और कोई तन्त्रकार भारतवर्ष में नहीं था। शिक्षा समापन के बाद इन दोनों ने ही हिन्दुस्थान के विशिष्ट-विशिष्ट दरबारों में अत्यन्त श्रद्धेय पद पाया था। सादिक अली खाँ साहब पहले लम्बे अरसे तक बेतिया राजदरबार में थे, बाद में वे वाराणसी-नरेश के पास रहे, वाराणसी में ही उनकी मृत्यु हुई। सादिक अली खाँ तेजस्वी व्यक्ति थे। एक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बार बेतिया के महाराजा ने उन्हें एक माह की छुट्टी दी थी, किन्तु छुट्टी की अवधि समाप्त हो जाने पर भी सादिक अली खाँ कर्मक्षेत्र में नहीं लौटे, अतः महाराजा असन्तुष्ट हुए। उसी क्षण सादिक अली खाँ बेतिया का कार्य छोड़कर वाराणसी चले गये, जहाँ उन्होंने प्रधान संगीतज्ञ का पद ग्रहण किया।

राग-रागिनी पर सादिक अली खाँ का असाधारण अधिकार था। वे इच्छानुसार नवराग-सर्जन कर सकते थे। एक बार जयपुर में वे कोमल ऋषभ का प्रयोग कर दरबारी कान्हड़ा में आलाप बजा गये और वह इतना सुन्दर व अद्भुत बन पड़ा कि कोई भी उसमें किसी प्रकार का दोष नहीं निकाल सका। हिन्दुस्थान में सादिक अली खाँ की विद्या का कोई भी प्रतिद्वन्द्वी नहीं हुआ, होने का साहस भी नहीं किया किसी ने।

सादिक अली ने विवाह नहीं किया, उनके उत्तराधिकारी थे उनके कनिष्ठ भ्राता निसार अली खाँ। निसार अली खाँ सादिक अली के साथ काशी में रहते थे और सादिक अली की मृत्यु के बाद काशी-नरेश के गुरु-पद पर नियुक्त हुए। निसार अली खाँ उदार अन्तःकरण के व्यक्ति थे। वे उत्तम शिष्य तैयार कर गये हैं।

अपने घराने के गुणियों में बंग-विख्यात काशिम अली खाँ रबाबी ही इनके श्रेष्ठ शिष्य थे। काशिम अली खाँ, सादिक अली के ज्येष्ठ भ्राता काजम अली के एकमात्र पुत्र थे। उन्होंने अपने पिता और चाचाओं से वीणा और रबाब की शिक्षा उत्तम रूप से प्राप्त की थी। निसार अली के अन्यान्य शिष्यों में वाराणसी के वैद्य अर्जुनदास नामक कश्मीरी ब्राह्मण वैद्य और पन्नालाल नामक एक ब्राह्मण के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन दोनों ने सुरश्रृंगार और सितार की उत्तम शिक्षा पाई थी। वजीर खाँ साहब ने भी बाल्यकाल में निसार अली से रबाब की शिक्षा ग्रहण की थी। वजीर खाँ साहब निसार अली के दोहित्र थे।

दूसरी ओर बहादुर सेन खाँ ने रामपुर के तदानीन्तन नवाब काल्वे अली खाँ बहादुर के संगीत गुरु का पद प्राप्त कर रामपुर में ही जीवनयापन किया। बहादुर सेन के वादन की रंजिनी शक्ति का उल्लेख पहले किया गया है। सादिक अली के रागगठन की श्रेष्ठता की जिस प्रकार तुलना नहीं है, उसी प्रकार बहादुर सेन के लालित्य और उन्मादन-शक्ति की भी उपमा नहीं है। जनश्रुति है कि संगीत की उन्मादन-शक्ति से वन के पशु तक आकृष्ट होते हैं, किन्तु रामपुर के आबाल-वृद्ध-वनिता सभी जानते हैं कि मजदूर सिर पर बोझा लादे जब बहादुर सेन के निवास के पास से गुजरते तब यदि योगिन खाँ साहब रियाज करते होते तो उन मजदूरों का बोझा सिर पर ही धरा रहता और वे सुध-बुध खोकर घण्टों तक वादन सुनते रहते। वादन रुकने तक वे अपना काम भूल जाते। बहादुर सेन का वादन उस्तादों को ही नहीं, बल्कि अशिक्षित जनसाधारण को भी मुग्ध कर देता था।

बहादुर सेन के असंख्य शिष्य थे। उन्होंने संगीत-विद्या का खूब प्रसार किया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बहादुर सेन को कोई सन्तान नहीं थी, इसीलिए वे बालक वजीर खाँ को सन्तान के समान शिक्षा देते थे। इस सम्बन्ध में हम बाद में लिखेंगे। उनके अन्यान्य शिष्यों में प्रधान थे नवाब काल्वे अली खाँ बहादुर के भ्राता हैदर अली खाँ साहब। हैदर अली खाँ ने बहादुर सेन की सम्पूर्ण विद्या आयत्त की थी। रबाब, वीणा और सुरश्रृंगार—तीनों वाद्ययंत्रों पर हैदर अली का जिस प्रकार असामान्य अधिकार था, उसी प्रकार कठ्यसंगीत में सेनिया घराने के ध्रुपद, होरी प्रभृति पर उन्होंने अधिकार कर लिया था। कहा जाता है कि हैदर अली खाँ ने एक लाख रुपये देकर बहादुर सेन से सेनिया घराने की विशुद्ध शिक्षा प्राप्त की थी। किन्तु उनके गुरु भी असाधारण प्रकृति के व्यक्ति थे, शिष्य को सम्पूर्ण विद्या सिखाने के बाद गुरु बहादुर सेन ने हैदर अली खाँ को वे एक लाख रुपये लौटा दिये थे—विद्या कभी धन के विनिमय से बेची नहीं जाती। विद्यादान के आरम्भ में शिष्य की परीक्षा लेने के लिए उन्होंने धन लिया था। इस प्रकार के निःस्वार्थ और उदारचेता गुरु जगत् में दुर्लभ हैं।

रबाब और सुरश्रृंगार वाद्ययंत्र-वादन के क्षेत्र में जब सादिक अली खाँ और बहादुर सेन खाँ अपनी प्रतिभा और कला-सृष्टि के सौन्दर्य से देश-भर को मंत्र-मुग्ध कर रहे थे, इसी समय बीनकार-वंश के प्रतिनिधि स्वरूप अमीर खाँ और रहीम खाँ—भ्रातृद्वय ने विशेष ख्याति प्राप्त की। अमीर खाँ और रहीम खाँ उमराव खाँ साहब के पुत्र थे। उमराव खाँ साहब वीणा-वादन में भारत में अद्वितीय थे, इनके बारे में हमने पहले लिखा है। सुप्रसिद्ध सुरबहार वाद्य-प्रवर्तक गुलाम मुहम्मद खाँ और उनके पुत्र विख्यात सज्जाद महम्मद खाँ उमराव खाँ साहब की कृपा से ही इतनी दक्षता का परिचय दे सके थे। बान्दा के नवाब हस्मत जंग साहब ने सुरबहार-वादन में उमराव खाँ की शिक्षा के फलस्वरूप ही भारत के शौकीन गुणीसमाज में शीर्षस्थान प्राप्त किया। उमराव खाँ ने लखनऊ, बान्दा और शेष जीवन रीवाँ राज्य में बिताया। अमीर खाँ और रहीम खाँ उनके ही पुत्र थे।

पिता की मृत्यु के समय ये दोनों भ्राता रीवाँ राज्य में थे। वहाँ कुछ वर्ष रहने के बाद दोनों भ्राता उत्तर भारत चले गये। अमीर खाँ रीवाँ से लखनऊ गये और बाद में रामपुर दरबार में सुप्रतिष्ठित हुए। रहीम खाँ अधिकांश समय तक बान्दा राज्य में रहते थे—बीच-बीच में रामपुर जाया करते थे। रहीम खाँ ने उस समय वीणा-वादन में हिन्दुस्थान मे अतुलनीय गुणी रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की थी। उनका हाथ जिस प्रकार तैयार था, उसी प्रकार उनके वादन में मिठास थी। यह दुःखद है कि उनका असमय निधन हो गया और उनका कोई पुत्र नहीं था। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण वीणा-वादन-पद्धति की पूरी शिक्षा अपने भ्रातुष्पुत्र अर्थात् अमीर खाँ के पुत्र बालक वजीर खाँ को ही दी थी—उनके अन्य उल्लेख-योग्य शिष्यों में परलोकगत सरोदवादक अजगर अली का नाम लिया जा सकता है। इस युग के अन्यतम श्रेष्ठ सरोदवादक हाफिज अली खाँ से सम्पूर्ण संगीत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जगत् परिचित है। अजगर अली खाँ हाफिज अली खाँ के ज्येष्ठ पितृव्य-पुत्र थे। अजगर अली द्वारभांगा राज्य में विशेष सम्मान के साथ प्रतिष्ठित थे।

रहीम खाँ साहब के निधन के बाद अमीर खाँ साहब बीनकार घराने के एकमात्र उज्ज्वल रत्नरूप में दीर्घकाल तक विराजमान थे। इस समय में रबाबी-वंश के कई गुणियों ने हिन्दुस्थान में विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की थी। बहादुर सेन और सादिक अली खाँ की बात मैंने पहले लिखी है। उनके कनिष्ठ निसार अली खाँ, बासत् खाँ साहब के पुत्र अली मुहम्मद खाँ (बड़कू मियाँ), सादिक अली के भ्रातुष्पुत्र विख्यात काशिम अली खाँ, सभी उस समय अपनी-अपनी विशिष्ट प्रतिभा के गौरव और दीप्ति से देदीप्यमान थे। प्रत्येक हिन्दुस्थान के विशेष-विशेष अंचल में पूजित थे।

बीनकार घराने के पूर्वतम मिश्री सिंहजी ने रबाबी वंश के स्रष्टा मियाँ तानसेन की दुहिता सरस्वती देवी के साथ विवाह किया था, इसका उल्लेख हमने पहले किया है—इन दोनों वंशों में परस्पर विवाह आदि का आदान-प्रदान बीच-बीच में होता आया है। सबसे आखिर में अमीर खाँ साहब ने रबाबी घराने की कन्या से विवाह किया। सादिक अली खाँ साहब की भ्रातुष्पुत्री अर्थात् काजम अली खाँ की कन्या रामपुर में बहादुर सेन के घर में ही लालित हुई थी। बहादुर सेन ने उस कन्या का हाथ अमीर खाँ साहब के हाथ में सौंप दिया। विगत युग के संगीतनायक स्वर्गीय वजीर खाँ साहब इस विवाह का ही स्वर्णफल था।

तानसेन के वंश में सभी को गायन और वादन दोनों प्रकार की शिक्षा दी जाती है। गुणीजन अपनी-अपनी रुचि और क्षमता के अनुसार किसी एक विधा का अनुशीलन करते हैं—कोई कण्ठसंगीत का, एवं कोई वाद्य संगीत का। यह रीति पूर्वापर चली आ रही है। अमीर खाँ साहब ने वीणा के द्वादशांग, समस्त तंत्रविद्या आयत्त की थी, किन्तु उनका कण्ठ असाधारण मीठा था। उनका वीणा-विनिन्दित कण्ठस्वर उस समय में अतुलनीय था, इसीलिए उन्होंने वाद्ययंत्रसंगीत के अनुशीलन का भार अपने कनिष्ठ भ्राता रहीम खाँ को सौंप कर स्वयं कण्ठ-संगीत में अधिक मन लगा दिया था।

अमीर खाँ जब रामपुर आये, तब बहादुर सेन खाँ नवाब काल्वे अली खाँ के गुरु पद पर आसीन थे। बहादुर सेन ने अमीर खाँ के विवाह के बाद उनका बड़े आदर के साथ वरण किया। उस समय बहादुर सेन हिन्दुस्थान में सूर्य के समान अपनी गौरवमय दीप्ति से दस दिशाओं में प्रकाश फैला रहे थे, किन्तु अमीर खाँ के ध्रुपद-होरी की स्निग्ध-मधुर रश्मि की प्रभा भी कम नहीं थी—वह चन्द्रकिरण के समान ही प्राण-मन के लिए संजीवनी थी। बहादुर सेन खाँ के सुरशृंगार-वादन के बाद अन्य किसी प्रकार का संगीत जमाना दुःसाध्य होता, किन्तु अमीर खाँ की मधुर स्वरलहरी सुरशृंगार के 'सुर' को और भी समुज्ज्वल कर देती। बहादुर सेन और अमीर खाँ रामपुर-दरबार में एक साथ एक ही समारोह में अपनी असाधारण प्रतिभा और गुणवत्ता का परिचय

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दे गये हैं।

इस प्रकार दो प्रतिभाशाली कलाविदों को एकत्र पाकर रामपुर का संगीत-सम्भार विशेष समृद्ध हो गया था। काल्वे अली खाँ नवाब बहादुर की बड़ी साध थी कि रामपुर दरबार को दिल्ली के मुगल दरबार के अनुरूप बनाया जाय। उनकी यह वासना वास्तव में पूर्ण हुई थी। उस समय बहादुर सेन और अमीर खाँ वाद्ययंत्र संगीत और कण्ठसंगीत के क्षेत्र में हिन्दुस्थान में शीर्ष स्थान पर थे। इनके अलावा वासर अली खाँ खयालिया रामपुर में कव्वाली संगीत के उत्कृष्ट गायक थे। बहादुर सेन और अमीर खाँ दोनों ने कई उपयुक्त शिष्य तैयार कर रामपुर दरबार की समृद्धि में वृद्धि की थी। विद्या को छुपा कर रखना उनका स्वभाव नहीं था। खुले हाथों विद्या का वितरण करना वे जानते थे—यहाँ तक कि शिक्षादान के सम्बन्ध में भी उनमें प्रतियोगिता थी। किसका शिष्य विद्या के क्षेत्र में अग्रसर हो रहा है, इस ओर भी उनकी नजर थी। इसके फलस्वरूप शिष्यों की शिक्षा के स्वर्ण सुयोग का अभाव नहीं था। बहादुर सेन के शिष्यों में गुलाम नबी खाँ बीनकार और सरोदिये मजरू खाँ ने विशेष उन्नति की थी। मजरू खाँ के भ्रातुष्पुत्र अहमद अली खाँ सरोदी महाराजा दिनाजपुर के दरबार में और मुक्तागाछा के स्वनामधन्य राजा जगतकिशोर आचार्य चौधुरी महोदय के दरबार में रहकर जीवन अतिवाहित किया। अहमद अली खाँ का सरोदवादन में हाथ जिस प्रकार मीठा था, उसी प्रकार तैयार, द्रुत था। उन्हों। विद्या भी यथेष्ट पायी थी। बंगाल के संगीत-रसिक अहमद अली खाँ के नाम से विशेष परिचित हैं। मजरू खाँ उनके ही गुरु और ज्येष्ठ तात थे।

अमीर खाँ के शिष्यों में सरोदिया फिदा हुसेन की कलकत्ता में अपरिचित नहीं हैं। फिदा हुसेन ने निखिल भारत संगीत सम्मेलन में सर्वदा प्रथम स्थान पाया है। फिदा हुसेन ने अमीर खाँ से रबाब और सरोद की शिक्षा पायी थी।

इसके अलावा उन्होंने कलकत्ता के विख्यात गायक और सारंगीवादक मेहदी हुसेन खाँ के पिता बनियात हुसेन खाँ, अमीर खाँ और बहादुर सेन खाँ से शिक्षा ग्रहण की थी। बनियात हुसेन खाँ सारंगी-वादकों में शिरोमणि स्वरूप थे। महम्मद हुसेन बीनकार भी दोनो के ही शिष्य थे।

ये सभी उस्ताद-सम्प्रदायभुक्त थे। इनके अलावा शौकीन सम्प्रदाय में नवाब हैदर अली खाँ साहब की बात का उल्लेख हमने पहले किया है। हैदर अली खाँ रामपुर के नवाब बहादुर के सहोदर भ्राता थे। बहादुर सेन से उन्होंने जिस प्रकार रबाब और सुरशृंगार की समुदय विद्या अधिगत की थी, उसी प्रकार उन्होंने अमीर खाँ से वीणा और होरी-ध्रुपद की सम्पूर्ण तालीम पायी थी। वे दोनों के ही अत्यन्त अन्तरंग शिष्य थे। दोनों ही अपने-अपने घराने की समस्त गुप्त विद्या हैदर अली को दे गये। इसीलिए हैदर अली खाँ वास्तव में उनके पुत्र समान ही थे। उनकी विद्या, क्रिया-दक्षता और प्रतिभा किसी भी सेनी गुणी से कम नहीं थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्वर्गीय वजीर खाँ साहब अमीर खाँ के ही पुत्र थे। अमीर खाँ वजीर खाँ को कण्ठ्यसंगीत और वीणा की समुदय अंग शिक्षा देने के बाद गम्भीर रोग से आक्रान्त हो गये। बहादुर सेन उसके पूर्व ही परलोक सिधार चुके थे, वृद्ध और मृत्युरोगाक्रान्त अमीर खाँ ने अपने प्रिय पुत्र वजीर खाँ को नवाब हैदर अली खाँ के हाथों सौंप कर इहलीला संवरण की। वजीर खाँ ने उस समय किशोरावस्था पार कर यौवन में प्रवेश किया था। कण्ठ्यसंगीत और वीणा की शिक्षा उन्होंने अपने पिता अमीर खाँ और चाचा रहीम खाँ से सुसम्पन्न की थी। रबाब और सुरश्रृंगार की तालीम भी उन्होंने अपने दो नाना निसार अली खाँ और बहादुर सेन से उत्तम रूप में पायी थी। इस अवस्था में भारत में सुसंगीत-सूर्य वजीर खाँ हैदर अली खाँ के घर पर आश्रय ग्रहण कर संगीत के एकनिष्ठ अनुशीलन में व्रती हुए। वजीर खाँ की जीवनी बाद में दी जायगी। इसके पूर्व रबाबी वंश के शेष रत्नों के जीवनवृत्त की आलोचना प्रयोजनीय है—हम बासत् खाँ के पुत्रों और कासिम अली खाँ रबाबी के इतिवृत्त का वर्णन करेंगे।

साधक और संगीतनायक बासत् खाँ साहब का पावन जीवनवृत्त इसके पूर्व दिया गया है। वे अपने जीवन के शेष काल में टिकारी महाराजा के संगीत-गुरु पद पर गयाधाम में निवास करते थे। टिकारी महाराजा ने उन्हें बड़ी भू-सम्पत्ति दान की थी। बासत् खाँ के निधन के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र अली मुहम्मद खाँ ने वह सम्पत्ति उत्तराधिकार सूत्र से प्राप्त की। बासत् खाँ के अन्य पुत्रद्वय महम्मद अली खाँ और रियासत अली खाँ दीर्घकाल तक ज्येष्ठ भ्राता के साथ ही रहते थे। अली महम्मद खाँ (बड़कू मियाँ) ने बासत् खाँ से कण्ठ्यसंगीत और वाद्य-यंत्रसंगीत की पूरी शिक्षा पायी थी, वे रबाब और सुरश्रृंगार वादन में सिद्धहस्त थे। मध्यम पुत्र महम्मद अली खाँ का कण्ठस्वर अत्यन्त सुमिष्ठ था, अतः बासत् खाँ ने उन्हें रबाबयंत्र-वादन के साथ-साथ गीतांग की अधिक शिक्षा दी और साधना करायी। कनिष्ठ रियासत् अली खाँ ने संगीत साधना की अपेक्षा जमींदारी की ओर ही अधिक ध्यान दिया। पिता की मृत्यु के अल्पकाल बाद ही उनका निधन हो गया।

अली महम्मद खाँ वैषयिक व्यक्ति बिलकुल नहीं थे। उत्तराधिकार सूत्र से प्रचुर सम्पत्ति प्राप्त कर वे उसकी रक्षा नहीं कर सके। वे सर्वदा दरिद्र शिष्यों से घिरे रहते; सम्पत्ति से प्राप्त आय उनमें बाँट देते; स्वयं भी काफी विलासी थे, भोग और दान से उनकी सम्पत्ति शीघ्र ही समाप्त हो गयी। अधिकांश भू-संपत्ति बेच कर लाखों रुपये उन्होंने विलास और वितरण में लुटा दिये। किन्तु उसके लिए बड़कू मियाँ ने कभी अफसोस महसूस नहीं किया। वे जानते थे कि उनके लिए धन का अभाव कभी नहीं होगा—क्योंकि विधाता ने उन्हें इतने गुण दिये हैं कि भारत के किसी भी नृपति के दरबार में उनका अधिष्ठान विशेष गौरव का विषय होगा—ऐसे रत्न को पाकर कोई भी राजा धन व्यय करने में बिलकुल कुण्ठित नहीं होगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बड़कू मियाँ को धन की कमी नहीं रही बल्कि प्रचुर धन मिला और उसी प्रकार सम्मान का भी प्राचुर्य रहा। नेपाल के तत्कालीन अधीश्वर को यह संवाद मिलते ही कि बड़कू मियाँ दरबार में योगदान करना चाहते हैं, वे उन्हें आमंत्रित कर ले गये। बड़कू मियाँ के नेपाल जाने से वहाँ के राज-दरबार का संगीत-सम्भार समृद्ध हो गया।

बड़कू मियाँ ने नेपाल में संगीत के विकास हेतु काफी कार्य किया था। वस्तुतः उनके आगमन के साथ-साथ ही नेपाल उच्च संगीत के एक विशिष्ट केन्द्र रूप में परिणत हो गया। नेपाल के अधीश्वर स्वयं संगीत के विशेष पृष्ठपोषक थे एवं उनके प्रधानमंत्री और अन्य मंत्रीगण भी उच्चसंगीत के उत्कर्ष के लिए मुक्त धन-वितरण में कभी कुण्ठित नहीं हुए। नेपाल के स्थानीय कथकों और गायकों को भी हिन्दुस्थान के विशिष्ट गुणियों के आगमन से संगीत-शिक्षा का पर्याप्त सुयोग मिला। आज भी नेपाल में उच्च श्रेणी के गायकों का अभाव नहीं हैं।

नेपाल दरबार में बड़कू मियाँ के समसामयिक सभी गुणियों ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया था। बड़कू मियाँ का स्वभाव था कि वे कभी कहीं भी अकेले नहीं रहते थे, कई शिष्य उन्हें घेरे रहते थे। विद्यादान में भी वे जिस प्रकार उदार थे एवं मुक्त हस्त से विद्यादान करते थे, उसी प्रकार अर्थदान में उनका मिजाज बादशाही था। उन्होंने कई दरिद्रजनों का भरण-पोषण किया। कई उस्तादों को संगीत की शिक्षा देना और उन्हें लेकर आमोद करना उनका प्रधान शौक था।

नेपाल में तत्कालीन गुणियों में ताज खाँ ध्रुपदिया, रामसेवकजी खयालिया-सितारिया, नियामतुल्ला खाँ सरोदिया, और मुराद अली खाँ सरोदिया बड़कू मियाँ के बाद विशेष सम्मान-जनक पदों पर थे।

रामसेवकजी कलकत्ता के भ्रातृद्वय विख्यात गायक और तालाध्याय में भारत के शीर्षस्थानीय सुपण्डित पशुपतिजी और शिवसेवकजी के पिता थे। रामसेवकजी असाधारण गुणी थे। वे लखनऊ दरबार के विख्यात प्रसिद्ध-मनोहर नामक गायक भ्रातृद्वय के वंश के थे। उस समय में खयाल-गायन में कोई भी हिन्दू गायक उनके तुल्ल नहीं था, विशेषतया लय के सूक्ष्म काम में इस वंश की तुलना नहीं थी। रामसेवकजी ने बड़कू मियाँ से सितार की शिक्षा पायी थी।

नियामतुल्ला खाँ सरोदिया का उल्लेख हमने पहले किया है—वे बासत् खाँ के शिष्य थे। रबाब अंग से सरोद-वादन पद्धति का प्रवर्तन इन्होंने ही किया। उनके समान द्रुत गति का हाथ किसी सरोदिये का नहीं था। गुणों में भी उनके समकक्ष गुणी बहुत कम ही थे। भारत विख्यात सरोदिया केरामतुल्ला खाँ साहब और कौकब खाँ साहब उनके ही सुयोग्य पुत्र थे। ये सभी रबाब अंग से सरोद बजाते थे। मुराद अली खाँ सरोदिया से भी कलकत्ता अपरिचित नहीं है। मुराद अली खाँ सुमधुर सरोदवादक जनप्रिय दरदी उस्ताद हाफिज अली खाँ के ज्येष्ठ चाचा थे। हाफिज अली खाँ के वादन में हाथ की असाधारण मिठास उनका स्वोपार्जित नहीं,—यह उनका वंशगत वित्तस्वरूप है। मुराद अली खाँ सरोद में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वीणा का कायदा ले आये थे। मुराद अली खाँ के पिता गुलाम अली उत्कृष्ट गत-तोड़ा बजाते थे, किन्तु मुराद अली ने सरोद पर आलाप, विशेषतया विलम्बित आलाप वादन में यथेष्ट उत्कर्ष प्रदर्शित किया। वे गुलाम महम्मद खाँ सुरबहारी और वजीर खाँ साहब के विशेष प्रिय थे और इनसे वीणा अंग के आलाप, विशषतया विलम्बित आलाप की शिक्षा ग्रहण कर, सरोद पर उसका प्रवर्तन किया। कलकत्ता के आत्मभोला, सरलचित्त गुणी सरोदिया महम्मद अमीर खाँ और उनके पिता अब्दुल्ला खाँ मुराद अली खाँ के प्रधान शिष्य थे। महम्मद अमीर खाँ का कुछ वर्षों पूर्व कलकत्ता में देहावसान हो गया।

सौर जगत् में जिस प्रकार सभी ग्रह सूर्य के चारों ओर भ्रमण करते हैं, अली महम्मद खाँ भी उसी प्रकार उल्लिखित उस्तादों से परिवृत्त थे। ये सभी प्रायः बड़कू मियाँ के ऋणी थे। बड़कू मियाँ अधिकांश समय सुरशृंगार बजाते थे। संगीतविद्या उनके लिए साधना की वस्तु और प्राण के आराम का विषय था। विद्या में प्रतियोगिता करना, किंवा अन्य गुणियों को विद्या में परास्त करना उनकी प्रवृत्ति नहीं थी। वे अत्यंत शान्तिप्रिय व्यक्ति थे। उनके निश्छल, स्नेहशील और उदार व्यवहार, उनकी विद्या की प्रगाढ़ता और अपूर्व क्रियाकौशल के कारण सभी उनकी ओर आकृष्ट होते और उनके पास आते थे। सुरशृंगार के आलाप में उनका असाधारण धैर्य प्रकट होता था। एक-एक राग को विलम्बित और मध्यलय में घण्टों बजाते रहते, फिर भी ऐसा लगता कि राग जैसे समाप्त होना चाहता ही नहीं है। उनका सृजन-कौशल इतना आश्चर्यजनक था कि किसी राग को घण्टों बजाने पर भी राग की तानों में नवीनता का कभी अभाव नहीं रहता था।

अली महम्मद खाँ साहब अपने जीवन के शेषकाल में नेपाल राज्य का परित्याग कर काशीधाम में निवास करने लगे एवं काशी में ही उनकी इहलीला समाप्त हुई। उनके पितृव्य-पुत्र (चाचा के पुत्र) सादिक अली खाँ साहब और उनके भ्राता निसार अली खाँ काशी-नरेश के संगीत-गुरु पद पर कई वर्षों तक प्रतिष्ठित थे—यह बात मैंने पहले कही है। उनके लोकान्तर-गमन के बाद उस पद पर अधिष्ठान के लिए अली महम्मद खाँ का आह्वान किया गया था। उन्होंने भी वृद्धावस्था में सुदूर नेपाल की शीतप्रधान आवहवा की अपेक्षा काशीधाम ही पसन्द किया और काशी-नरेश के गुरुपद पर अधिष्ठित हुए।

वाराणसी इसके पूर्व तानसेन-घराना के गुणियों द्वारा प्रचारित संगीत-सम्भार से विशेष समृद्ध था—बड़कू मियाँ ने उस समृद्धि को अधिक बढ़ाने में सहायता ही की। काशी में ही बड़कू मियाँ के सभी प्रधान शिष्य सम्मिलित हुए। इस समय वाराणसी के राजदरबार में निम्नलिखित गुणीजन संगीत सभा में स्थायी या सामयिक रूप से रहते थे, यथा :

(1) गायक अली बक्स (धमारी)—ये बंगाल के विख्यात होरी-ध्रुपद गायक स्वर्गीय अघोरचन्द्र चक्रवर्ती महाशय के गुरु थे। (2) पश्चिम भारतीय सेनिया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

घराने के विख्यात ध्रुपदिये दौलत खाँ—ये अपने जीवन के शेषकाल में कलकत्ता में विशेष ख्याति के साथ रहते थे। (3) ध्रुपदिये रसूल बक्स—श्रीरामपुर के गोस्वामी वंशीय बंगाल के रत्नस्वरूप स्वर्गीय रामदास गोस्वामी महोदय के गुरु। (4) गायक तसद्दुक हुसेन खाँ।

इन गुणियों के बीच बड़कू मियाँ के आविर्भाव से वाराणसी का संगीत क्षेत्र उज्ज्वलतर हो उठा था। बड़कू मियाँ काशीधाम में अर्से तक स्वस्थ रहे। वे संगीत का यथेष्ट प्रचार और प्रसार कर गये। उनके शिष्य भी असंख्य थे; उनमें निम्न-लिखित गुणियों के नाम उल्लेखनीय हैं। बड़कू मियाँ के सर्वश्रेष्ठ शिष्य थे जालन्धर निवासी सैयद वंशीय मीर साहब। मीर साहब के समान गुरु-सेवा कम शिष्यों द्वारा सम्भव हुई—अत्यंत अभिजातवंश में जन्म ग्रहण करने पर भी मीर साहब भृत्य के समान बड़कू मियाँ की सेवा-परिचर्या करते थे, इसी के फलस्वरूप वे बड़कू मियाँ की सम्पूर्ण विद्या-शिक्षा अधिगत कर सके थे—सुरश्रृंगार वाद्ययंत्र का आलाप और घराने का ध्रुपद सभी घड़कू मियाँ उन्हें दे गये। बड़कू मियाँ को कोई पुत्र नहीं था; मीर साहब को ही पुत्रवत् रखकर उन्होंने शिक्षा दी।

मीर साहब के बाद अन्यान्य वादक-शिष्यों में नन्ने खाँ बीनकार और पटना के जमींदार सितारिये प्यारे नवाब खाँ के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। बड़कू मियाँ के हिन्दू शिष्यों में काशी के विख्यात बीनकार मिठाईलाल के नाम से सभी परिचित हैं। इनके अलावा सुरश्रृंगार-वादक पन्नालाल ने भी कई दिनों तक अली महम्मद खाँ से शिक्षा ग्रहण की थी।

अली महम्मद खाँ के अन्य प्रधान शिष्य थे—स्वर्गीय राजा सर सौरीन्द्रमोहन ठाकुर महोदय। राजा सौरीन्द्रमोहन ठाकुर बड़कू मियाँ के अत्यंत प्रिय शिष्य थे। ठाकुर महोदय भी बड़कू मियाँ की बड़ी श्रद्धा करते थे। काशीधाम और कलकत्ता में राजा बहादुर ने बड़कू मियाँ से दीर्घ काल तक संगीतविद्या और तंत्रविद्या की शिक्षा ग्रहण की और यथार्य रूप में उसे आयत्त किया। संगीत की उन्नति के लिए सौरीन्द्रमोहन ठाकुर महोदय ने जो कार्य किया है, उसकी तुलना नहीं है। बड़कू मियाँ से उन्होंने जो विद्या प्राप्त की थी, उसका परिचय उनके द्वारा प्रणीत अमूल्य ग्रंथों में मिलता है। राग-रागिनियों के सम्बन्ध में उनके द्वारा प्रदत्त समस्त परिचय तानसेनवंशीय विद्या की गभीर भित्ति पर प्रतिष्ठित है। वे उत्कृष्ट सितार-वादक थे और ध्रुपद पर भी उनका असाधारण अधिकार था। राजा सौरीन्द्र-मोहन ठाकुर महाशय बंगीय संगीत-भारती के जनकस्थानीय थे, इसमें कोई सन्देह नहीं।

बड़कू मियाँ के अन्यान्य शिष्यों में कलकत्ता के प्रसिद्ध भूस्वामी स्वर्गीय काशी-प्रसाद घोष के पौत्र, श्रीयुक्त ताराप्रसाद घोष महाशय बंगाल के संगीत के एक निभृतचारी महासाधक थे। ताराप्रसाद घोष महाशय अत्यन्त शान्त प्रकृति के व्यक्ति थे, किन्तु नीरव रहकर भी उन्होंने बंगाल के संगीत की कितनी उन्नति की, उससे आज भी जनसाधारण अपरिचित है। उनकी विस्तृत जीवनी बाद में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लिखूंगा। ध्रुपदिया दौलत खाँ, सितारिया इमदाद खाँ साहब और खयालिया काले खाँ ताराप्रसाद बाबू के बीडन स्ट्रीट स्थित भवन में रहकर ही बंगाल के संगीत की अशेष उन्नति करने में समर्थ हुए थे।

ताराप्रसाद बाबू ने किशोरावस्था में रामदास गोस्वामी महाशय से ध्रुपद की शिक्षा ग्रहण की—स्वनामधन्य मधुरकण्ठ के धनी और सुपण्डित ध्रुपद-गायक श्रीयुक्त हरिनारायण मुखोपाध्याय महाशय ताराप्रसाद बाबू के ही सतीर्थ-गुरु-बन्धु थे। उन दोनों की शिक्षा रामदास गोस्वामी से आरम्भ हुई। बाद में ताराप्रसाद बाबू बड़कू मियाँ के शिष्य हुए। बड़कू मियाँ का ताराप्रसाद बाबू के प्रति बड़ा स्नेह था, और उन्होंने ताराप्रसाद बाबू को कई ध्रुपद और वाद्य-आलाप की शिक्षा दी थी। ताराप्रसाद बाबू को वे प्रतिदिन वाद्यसंगीत सुनाते थे—उनके कानों में उस (बड़कू मियाँ के) संगीत की स्वर्गीय मूर्छना सर्वदा अनुरणित होती थी। ताराप्रसाद बाबू से बड़कू मियाँ के सुरशृंगार-वादन का वर्णन सुनकर कोई भी मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता। आलाप में धैर्य क्या असामान्य था—स्वर की क्या स्थायी आस! अनुरणन! और प्रत्येक स्वरझंकार जैसे सुधारस सिक्त—इसीलिए ताराप्रसाद बाबू बड़कू मियाँ के वादन के सम्बन्ध में उच्छ्वसित कण्ठ से कहते हैं कि बड़कू मियाँ का वादन सुनने का सौभाग्य जिन्हें प्राप्त हुआ है—उनके लिए अन्य सकल संगीत प्राणहीन और नीरस है; वह संगीत जैसे स्वर्गीय था—उसके बाद पृथिवी का अन्य कोई भी संगीत प्राण को किसी प्रकार की तृप्ति नहीं देता;—यह कहते हुए ताराप्रसाद बाबू की आँखों से अश्रु छलकने लगते हैं।

अली महम्मद खाँ का विंश शताब्दी के आरम्भ में ही काशीधाम में निधन हो गया। मृत्यु के समय ताराप्रसाद बाबू काशीधाम में उनके पास थे। बड़कू मियाँ का कोई पुत्र नहीं था—कन्या थी। उनके दोहित्र काशी-नरेश के आश्रय में अर्से तक प्रतिपालित हुए। अली महम्मद खाँ की मृत्यु के बाद उनके भ्राता महम्मद अली खाँ साहब रबाबी ने उनका स्थान लिया था।

रबाब-वादक काशिम अली खाँ साहब ऊनविंश शताब्दी के शेष भाग में बंगाल में उच्च संगीत के एक विराट स्तम्भ स्वरूप थे। श्रेष्ठ ध्रुपद-गायक श्रीयुक्त हरिनारायण मुखोपाध्याय महाशय ने अपनी पुस्तक 'संगीते परिवर्तन' में काशिम अली के नाम का एकाधिक बार उल्लेख किया है। काशिम अली खाँ सुप्रसिद्ध रबाब-वादक सादिक अली खाँ साहब के भ्रातुष्पुत्र थे। उनके पिता काजम खाँ अली संगीत-नायक वजीर खाँ साहब के नाना थे। काशिम अली खाँ ने बाल्यकाल में अपने पिता और चाचा से रबाब और वीणा-वादन की उत्तम शिक्षा पायी थी। काशिम अली यद्यपि वंश से रबाबी थे, तथापि वीणा वाद्य के प्रति उनका अनुराग और साधना चरम सीमा पर पहुँच गयी थी। यौवनावस्था के प्रारम्भ में साधना की उनकी क्षमता असाधारण थी। इसी के फलस्वरूप वे वीणा और रबाब दोनों वाद्ययंत्रों के वादन पर समान रूप से अधिकार कर सके थे। लड़ी, लड़गुथाव और मृदंग-संगत के साथ वादन में उनके समकक्ष

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिन्दुस्थान में कोई बड़ा नहीं था।

युवावस्था में प्रवेश के समय पिता की मृत्यु के बाद काशिम अली मेटियाबुरुज के नवाब वाजिद अली शाह के दरबार में वृत्तिभोगी बीनकार-पद पर प्रतिष्ठित हुए। इस समय संगीतनायक बासत् खाँ साहब नवाब साहब के संगीतगुरु-पद अधिष्ठित थे। काशिम अली ने अपने दादामहाशय बासत् खाँ से कई राग-रागिनियों और ध्रुपद की शिक्षा प्राप्त कर संगीत विद्या को पूर्ण रूप से आयत्त किया था। महाराजा यतीन्द्रमोहन ठाकुर महोदय काशिम अली के प्रति अनुरक्त थे। महाराजा बहादुर ने कई बार काशिम अली को अपने प्रासाद में आमन्त्रित कर उनका वीणा और रबाब वादन सुना है। कलकत्ता के प्राचीन संगीतानुरागी गुणीजन आज भी एक ही स्वर में कहते हैं कि काशिम अली के समान तन्त्रकार बंगाल में कभी नहीं आया।

मेटियाबुरुज का दरबार समाप्त हो जाने के बाद बासत् खाँ साहब जब गयाधाम चले गये तब काशिम अली त्रिपुराधिपति महाराजा वीरचन्द्र माणिक्य बहादुर के आमन्त्रण पर त्रिपुरा राज्य में चले गये। वहाँ त्रिपुरा के महाराजा ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। उस समय में यदु भट्ट त्रिपुरा राज्य में गायक रूप में कार्य-रत थे। खाँ साहब ने यदु भट्ट को सितार-वादन की शिक्षा दी, किन्तु श्रुतिधर यदु भट्ट महाशय काशिम अली के रियाज के समय निकटवर्ती किसी गुप्त स्थान पर छुप कर खाँ साहब का रबाब-वादन सुनकर वह तालीम भी अधिगत कर सके थे। बाद में इसका पता चल जाने पर काशिम अली खाँ नाराज हुए और त्रिपुरा राज्य का परित्याग कर उन्होंने भावाल राज्य के महाराजा राजेन्द्रनारायण राय के पास आश्रय ग्रहण किया। काशिम अली ने अपने जीवन का शेष काल भावाल में अतिवाहित किया।

काशिम अली का वादन सुनना राजा-महाराजाओं के लिए भी सुलभ नहीं था। अन्तर से संगीत की प्रेरणा प्राप्त न होने तक वे कभी बजाते नहीं थे; वे कहा करते कि 'मेरे वाद्ययन्त्र का मिजाज ठीक नहीं है, मिजाज ठीक होने पर बजाकर सुनाऊँगा।' जब वे अपने अन्तर में संगीत का प्रवाह अनुभव करते, तब एक ही राग घंटों बजाने पर उनकी सृष्टि का उत्स समाप्त नहीं होता था। भावाल में एक बार उन्होंने राव के चार बजे से दिन के दस बजे तक रबाब पर भैरव राग का आलाप बजाया था। इस बैठक में ढाका के नवाब वंशीय और पूर्व बंगाल के विशिष्ट अभिजात वंशीय भूस्वामीगण उपस्थित थे। ढाका के प्रसिद्ध तबला-वादक प्रसन्न वणिक्य महाशय से काशिम अली खाँ के सम्बन्ध में इस प्रकार की कई घटनाओं का विवरण हमें मिलता है। वे कहा करते थे—काशिम अली खाँ मनुष्य नहीं थे—नरदेहधारी कोई गन्धर्व या देव विशेष थे। इतने बड़े गुणी का बंगाल में आना उस समय बंगाल के लिए विशेष सौभाग्य का विषय था। काशिम अली खाँ का विंश शताब्दी के प्रारम्भ में भावाल में देहावसान हो गया। उनकी समाधि भावाल में विराज करती है और उनके अपने रियाज का रबाब वाद्य राजप्रासाद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में आज भी यत्नपूर्वक संरक्षित है।

अली महम्मद खाँ और काशिम अली खाँ के बाद रबाबी वंश में केवल महम्मद अली खाँ साहब ही रहे—ये भारत के अन्तिम रबाबी और तानसेन के पुत्र-वंश के अन्तिम रत्न थे। महम्मद अली खाँ का इतिवृत्त अब हम देंगे, जबकि इनके नाम का एकाधिक बार उल्लेख हम इसके पूर्व कर चुके हैं। ये बासत् खाँ साहब के मझले पुत्र थे। शिक्षा इन्होंने पिता से पूर्णतया ली थी। बासत् खाँ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अली महम्मद खाँ को सुरशृंगार की शिक्षा दी थी और महम्मद अली खाँ को कण्ठसंगीत में ध्रुपद और आलाप तथा वाद्ययन्त्र में रबाब की तालीम दी थी। तीस वर्षों की शिक्षा के बाद पिता के न रहने पर ज्येष्ठ अली महम्मद खाँ नेपाल चले गये, किन्तु महम्मद अली खाँ ने पैतृक भद्रासन गयाधाम में कई दिनों तक निवास किया था। गया के बिहारीलाल नामक पण्डा और प्रसिद्ध इसराज-वादक धनी पण्डा कनाईलाल ठेंगड़ीजी ने महम्मद अली खाँ साहब का शिष्यत्व ग्रहण किया।

गया में सात-आठ वर्ष रहने के बाद महम्मद अली खाँ साहब गिधौर राज्य के संगीतगुरु-पद पर प्रतिष्ठित हुए। खाँ साहब से हमने सुना है कि वे एक बार हरिहरछत्र मेले में घूमने गये थे, इस समय गिधौर के दीवान साहब राज्य के लिए हाथी, घोड़े आदि खरीदने वहाँ आये थे। वहाँ उन्हें महम्मद अली खाँ साहब का रबाब-वादन सुनने का सुयोग मिला था। खाँ साहब का वादन सुनकर दीवान साहब अत्यन्त आह्लादित हुए और खाँ साहब को गिधौर ले गये। उस समय महम्मद अली खाँ साहब की आयु पचास वर्ष थी। इस समय से मृत्युकाल तक के सुदीर्घ पैंतीस वर्षों तक खाँ साहब और गिधौर राजदरबार का सम्बन्ध अक्षुण्ण रहा। बीच-बीच में अन्यान्य राजदरबारों में भिन्न-भिन्न अवधियों के लिए रहने के बावजूद खाँ साहब अधिकतर गिधौर में ही अवस्थान करते थे।

महम्मद अली खाँ साहब अन्यान्य संगीत कलाविदों के समान धन और प्रतिपत्ति के सम्बन्ध में विशेष उत्साही नहीं थे। धन के लिए वे स्वतः प्रवृत्त होकर कहीं भी जाते नहीं थे—कोई यदि आग्रह कर निमन्त्रित करता तो उस निमन्त्रण का सम्मान कर वहाँ जाते थे। गिधौर दरबार में उन्हें स्थायी रूप से रखा गया था, अतः उन्होंने अन्य दरबार की कभी खोज नहीं की। फिर भी अन्यान्य भूपति कई बार अपनी राजसभा में उन्हें संगीतगुरु रूप में आमन्त्रित कर दीर्घ समय के लिए रखने में सफल हुए थे।

काशीधाम में अली महम्मद खाँ की मृत्यु के बाद महम्मद अली खाँ साहब काशी-नरेश के आह्वान पर कुछ वर्षों तक वहीं रहे। उस समय सरोदिया मजरू खाँ और गायक तसद्दुक हुसेन खाँ काशी दरबार के प्रधान गुणियों में थे। वाराणसी में महम्मद अली खाँ साहब ने रबाब-वादन और कण्ठ्यसंगीत में शीर्षस्थान प्राप्त किया था। हमने सुना है कि एक बार दुःसह ग्रीष्म के समय संगीतसभा में काशी-नरेश ने महम्मद अली खाँ साहब से रबाब पर 'वृन्दावनी सारंग' बजाने का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अनुरोध किया। खाँ साहब के बादन के बाद काशीराज इतने तृप्त हुए कि उन्होंने सभा में अन्य सभी गुणियों का गाना-बजाना बन्द करवा दिया। उस समय उन्होंने कहा था—"महम्मद अली खाँ का 'सारंग' सुनकर मेरा दग्ध हृदय शीतल हो गया है, इसके बाद अन्य गायन-वादन का और क्या प्रयोजन है ?"

काशीधाम में कुछ वर्ष रहने के बाद महम्मद अली खाँ पुनः गिधौर लौट आये। इस समय भारत विख्यात कलाविद् नवाब हैदर अली खाँ साहब रामपुर के निकटवर्ती अपने 'विल्सी' स्टेट में अपने असामान्य प्रतिभाशाली पुत्र सादत अली खाँ साहब को संगीत शिक्षा दे रहे थे। अपने अधिगत सकल विद्या की शिक्षा पुत्र को देने के बाद वे महम्मद अली खाँ साहब को आमंत्रित कर वहाँ ले आये। इसका एक उद्देश्य था अपने से अज्ञात विद्या की महम्मद अली खाँ से शिक्षा प्राप्त करना और दूसरा उद्देश्य था अपने पुत्र को तानसेन के पुत्रवंशीय संगीतगुरु से दीक्षा दिलवाना। इन दो उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही उन्होंने महम्मद अली को बुलाया था। महम्मद अली खाँ विल्सी स्टेट में नवाब साहब के अतिथि के रूप में छह माह तक रहे और सादत अली खाँ की शिक्षा पूरी की थी। महम्मद अली के आशीर्वाद से नवाब-जादा सादत अली खाँ साहब ने वास्तव में शीघ्र ही भारत के एक अद्वितीय कला-विद् और तंत्रकार रूप में उज्ज्वल कीर्ति प्राप्त की। सादत अली खाँ का अन्य नाम था छम्मन साहब। नवाब छम्मन साहब का नाम हिन्दुस्थान के एक कोने से दूसरे कोने तक सुविदित है। इसमें सन्देह नहीं कि छम्मन साहब महम्मद अली के शिष्यों में शीर्षस्थानीय थे।

नवाब छम्मन साहब की शिक्षा समाप्त हो जाने के बाद महम्मद अली खाँ साहब गिधौर लौट आये और प्रायः बीस वर्षों तक वे कहीं नहीं गये। इसी बीच रामपुर के गत नवाब हामेद अली खाँ बहादुर ने अपने पितृपुरुष का पदानुसरण कर रामपुर के संगीत-गौरव में विशेष वृद्धि की थी। वजीर खाँ साहब उनके संगीत-गुरु थे एवं नवाब साहब ने अपने चाचा के पुत्र छम्मन साहब को गृह-सचिव का पद सौंपकर रामपुर की संगीत सभा को हिन्दुस्थान के अद्वितीय आसन पर प्रतिष्ठित कर दिया। नवाब हामेद अली खाँ बहादुर ने महसूस किया कि महम्मद अली खाँ साहब के अभाव में रामपुर दरबार असम्पूर्ण है, अतः महम्मद अली को आमंत्रित करने का भार उन्होंने छम्मन साहब को सौंपा। छम्मन साहब महम्मद अली के प्रिय शिष्य थे—उनके आन्तरिक आग्रह के कारण महम्मद अली खाँ गिधौर से अनिर्दिष्ट काल के लिए छुट्टी लेकर रामपुर गये बिना रह नहीं सके।

रामपुर के गत नवाब हामेद अली ने इस समय महम्मद अली का शिष्यत्व स्वीकार किया और प्रचुर धन देकर छः-सात वर्षों तक बड़े यत्न से उनका प्रति-पालन किया था। उस समय खाँ साहब की आयु अस्सी (80) वर्ष से अधिक होते हुए भी शरीर और मन से वे स्वस्थ थे। रामपुर नवाब के समक्ष खाँ साहब ने बराबर रबाब बजाया है और नवाब बहादुर को शिक्षा भी दी है। वजीर खाँ साहब महम्मद अली खाँ के दौहित्र थे और उनमें आपस में बड़ी रसिकता चलती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

थी। महम्मद अली सर्वदा ही वजीर खाँ के वीणा-वादन की भूरि-भूरि प्रशंसा करते और वजीर खाँ भी मातामह और रबाबी वश के शेष रत्न रूप में उनका सम्मान करते थे।

दरबार में कुछ वर्ष बिताने के बाद महम्मद अली खाँ साहब रामपुर नवाब के दरबार की अपेक्षा अपने प्रिय शिष्य छम्मन साहब के घर पर रहने को अधिक आरामप्रद मानकर विल्सी चले गये। विल्सी में दो वर्ष बिताने के बाद विधाता का कठोर प्रहार हुआ और खाँ साहब का प्रिय शिष्य छम्मन साहब का देहान्त हो गया, खाँ साहब ने अपना रत्न खो दिया। छम्मन साहब के मात्र चालीस वर्ष की आयु में परलोकगमन से भारतीय संगीत की कितनी बड़ी क्षति हुई, उससे आज भी भारत के अधिकांश लोग अवगत नहीं हैं।

शिष्य होते हुए भी छम्मन साहब यथार्थ में महम्मद अली के पुत्रस्थानीय थे। महम्मद अली के औरस-पुत्र न रहने के कारण उन्होंने पोष्यपुत्र ग्रहण किया था—किन्तु उनका पोष्यपुत्र संगीत क्षेत्र में सक्रिय न रहने के कारण छम्मन साहब ने ही पुत्र के समान शिक्षा ग्रहण की। इस प्रकार के रत्नस्वरूप शिष्य की अकाल मृत्यु से महम्मद अली को जो दुःसह आघात लगा था, उसका सहज ही अन्दाजा लगाया जा सकता है। छम्मन साहब के निधन के बाद शोकातुर महम्मद अली लखनऊ में संगीत-कालेज के प्रतिष्ठाता राजा साहब नवाब अली के अतिथि स्वरूप छह माह तक रहे। इस अवधि में नवाब अली खाँ ने महम्मद अली से सौ से अधिक ध्रुपदों की शिक्षा ग्रहण की और अपनी विख्यात पुस्तक 'म आरिफुन्नगमात्' का द्वितीय खण्ड प्रकाशित किया—उक्त पुस्तक में खाँ साहब की एक प्रतिकृति भी मुद्रित है। 'म आरिफुन्नगमात्' का प्रथम खण्ड स्वर्गीय भातखण्डेजी के 'श्रीमल्लक्ष्य-संगीतम्' के अनुसरण से लिखित है। पण्डित प्रवर भातखण्डेजी ने भी महम्मद अली का शिष्यत्व ग्रहण किया था और उनसे ध्रुपद की शिक्षा पायी थी। राजा नवाब अली और पण्डित भातखण्डेजी वर्तमान युग में संगीत के प्रचार के लिए अक्लान्त परिश्रम कर गये हैं। लखनऊ मारिस कालेज (अब भातखण्डे विद्या-पीठ) उनकी कई वर्षों की तपस्या का सुफल है। ये दोनों ही छम्मन साहब के सह-कर्मी थे। छम्मन साहब इन दोनों के यज्ञ के पुरोहित स्वरूप थे। छम्मन साहब के अकाल तिरोधान से लखनऊ कालेज की भारी क्षति हुई थी—विशेषतया छम्मन साहब ने हमारे प्राचीन संगीत और तंत्रविद्या के पुनरुद्धार के लिए कई ग्रंथों की रचना की थी, जो अप्रकाशित रह गये। इस क्षति की पूर्ति हेतु राजा नवाब अली साहब ने महम्मद अली को छह माह तक अपने भवन में रखकर ध्रुपदों के उद्धार की चेष्टा की और सौ से अधिक ध्रुपदों का संग्रह प्रकाशित किया। उनके इस प्रयास का मूल्य एक दिन गुणी समाज अवश्य ही समझेगा।

रामपुर और लखनऊ से लौटकर महम्मद अली खाँ साहब अन्तिम समय तक गिधौर-दरबार में रहे। ई० 1928 में गिधौर में ही उनका देहान्त हुआ। गिधौर में अन्तिम कुछ वर्षों तक अवस्थान के समय बीच-बीच में लेखक के पितृदेव पूज्य-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पाद श्रीयुक्त ब्रजेन्द्रकिशोर राय चौधुरी महोदय के निमंत्रण पर खाँ साहब मयमन सिंह—गौरीपुर आते थे। इस प्रकार खाँ साहब का ध्रुपद संगीत और रबाब, सुरश्रृंगार प्रभृति वाद्ययंत्र-वादन सुनने तथा उनसे शिक्षा प्राप्त करने का सुयोग लेखक को मिला था।

खाँ साहब का संगीत सुनने के बाद हम समझ सके थे कि यथार्थ ध्रुपद गान और आलाप क्या है और वह कितना मीठा हो सकता है। जीवनावसान के पूर्व वे अपने अन्तिम आशीर्वाद के साथ यह उपदेश दे गये कि संगीत का सार है ध्रुपद। ध्रुपद सीख लेने पर राग-रागिनियों के मर्म का द्वार उद्घाटित हो जाता है—तब अन्य सभी कुछ सरल हो जाता है।

खाँ साहब के अन्तिम कुछ वर्षों में ही हमने उनसे आलाप और ध्रुपद की शिक्षा पायी। खाँ साहब अन्त समय तक कभी वार्धक्य या व्याधि के कारण अवश नहीं हुए। मृत्यु के एक वर्ष पूर्व तक वे दो-तीन मील तक बिना किसी कष्ट के पैदल चल सकते थे। उन्हें मछली-शिकार का बड़ा शौक था। खाँ साहब का शरीर बलिष्ठ था और कुश्ती में वे दक्ष थे। इसी कारण नब्बे वर्ष की आयु में भी उनमें प्राणशक्ति का अभाव दिखायी नहीं देता था। यह भाग्य की विडम्बना ही थी कि वे कैंसर रोग से आक्रान्त हुए, अन्यथा हमारा विश्वास था कि वे परमाणु शतवर्ष पार करेंगे।

महम्मद अली खाँ साहब के साथ हमारा व्यक्तिगत सम्बन्ध कितना घनिष्ठ और प्रगाढ़ था, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनकी हम वास्तव में पिता के समान भक्ति करते थे एवं वे भी जब हमें छोड़कर गिधौर जाते, तो अश्रु संवरण नहीं कर पाते थे। आज उनकी आत्मा की अनन्त शान्ति के लिए ही हम सर्वान्तःकरण से ईश्वर के समक्ष प्रार्थना करते हैं।

अब हम इस युग के संगीतनायक बीनकार घराने के श्रेष्ठ रत्न वजीर खाँ साहब का जीवन वृत्तान्त लिखेंगे।

महम्मद अली खाँ साहब और वजीर खाँ साहब इस युग के भारत के संगीताकाश के निःसन्देह चन्द्र और सूर्य थे। दोनों ही एक ही वृक्ष की दो शाखाओं के दो स्वर्ण फल थे। एक तानसेन के पुत्रवंश के और दूसरे कन्यावंश के थे। दोनों ही दो घरानों के रत्न थे। एक ही समय इन्होंने हिन्दुस्थान में संगीत का प्रचार और प्रसार किया। सम्पर्क से ये मातामह और दोहित्र थे। प्रायः एक ही स्थान पर इनका कण्ठ्यसंगीत और वाद्ययंत्रसंगीत ध्वनित और अनुरणित हुआ एवं प्रायः एक ही समय इन दोनों ने धराधाम का परित्याग कर हिन्दुस्थान के संगीत की शेष सम्पद साथ लेकर ही परलोक गमन किया।

संगीतनायक वजीर खाँ का जन्म अनुमानतः ई० 1860 में हुआ। इस समय उनके पिता अमीर खाँ बीनकार रामपुर में नवाब काल्वे अली खाँ के दरबार में थे। विख्यात सुरश्रृंगार-वादक बहादुर सेन खाँ भी वहीं पर थे। शिशुकाल में वजीर खाँ का कण्ठ्यसंगीत और वाद्ययंत्र संगीत में अनुराग दिखायी दिया। सात-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आठ वर्ष की आयु में ही उन्होंने पिता से ध्रुपद और वीणा की शिक्षा लेनी आरम्भ की। उनके मातामह बहादुर सेन निःसन्तान थे; इसीलिए बहादुर सेन ने अपनी सन्तान की तरह ही वजीर खाँ को ध्रुपद और रबाब की शिक्षा देनी आरम्भ की। इसके फलस्वरूप किशोरावस्था पार होते-होते ही खाँ साहब ने वीणा, सुरश्रृंगार, रबाब और ध्रुपद में विलक्षण अभिज्ञता प्राप्त कर ली। वजीर खाँ की शिक्षा के विषय में बहादुर सेन और अमीर खाँ में विशेष प्रतियोगिता थी। दोनों की आंतरिक कामना, प्रत्याशा थी कि वजीर खाँ के द्वारा उनकी कीर्ति और सुनाम कायम रहेगा। जिनकी शिक्षा अधिक सामने आएगी उनके ही नाम की कीर्ति अधिक होगी; इसलिए दोनों ही जितनी अच्छी तरह सम्भव हो, शिक्षादान में किसी प्रकार की कसर नहीं रखते थे। इससे वजीर खाँ को दोहरा लाभ हुआ। वाद्ययंत्र-वादन में अतुलनीय मीठा हाथ उन्होंने बहादुर सेन का पाया, और कण्ठ में पिता का वीणा-विनिन्दित स्वर। गीत और तंत्र दोनों विधाओं में वजीर खाँ की प्रतिभा की तुलना नहीं थी।

किशोर वय में वीणा, रबाब और ध्रुपद की सम्पूर्ण शिक्षा वजीर खाँ ने प्राप्त कर ली; उसके बाद उनके मातामह और पिता दोनों का निधन हो गया। नवाब काल्वे अली खाँ के जीवित रहने तक खाँ साहब उनके दरबार में ही प्रतिपालित हुए। काल्वे अली खाँ के देहान्त के बाद उनके भ्राता हैदर अली खाँ वजीर खाँ को विल्सी ले गये। हैदर अली खाँ का उल्लेख इसके पूर्व एकाधिक बार हुआ है। उन्होंने तानसेन के पुत्रवंश के तत्कालीन प्रायः सभी गुणियों से शिक्षा पाई थी। दूसरी ओर वे बीनकार अमीर खाँ के भी प्रिय शिष्य थे। अमीर खाँ निधन के पूर्व अपने पुत्र वजीर खाँ का भार हैदर अली खाँ को सौंप गये थे। हैदर अली ने भी गुरु द्वारा सौंपे गये इस दायित्व को बड़े आनन्द से ग्रहण किया था। जब तक नवाब काल्वे अली खाँ जीवित थे तब तक रामपुर में ही हैदर अली खाँ साहब वजीर खाँ के स्वास्थ्य, शिक्षा और धर्म विषय की देखरेख करते थे। काल्वे अली खाँ के देहावसान के बाद वजीर खाँ को अपनी जमींदारी विल्सी ले आये। उन्होंने वजीर खाँ को अपने भवन में रखा। हैदर अली खाँ साहब ने वजीर खाँ को गुरुपुत्र के यथार्थ सम्मान, समादर एवं यत्न के साथ छः वर्षों तक रखा था। इस समय नवाब हैदर अली खाँ साहब की अत्यन्त घनिष्ठ नवाबवंशीय किसी आत्मीया के साथ वजीर खाँ साहब का विवाह हुआ। इस विवाह के प्रधान उद्योक्ता हैदर अली खाँ ही थे। विवाह के बाद खाँ साहब नवाब साहब से विदा लेकर देश-भ्रमण के लिए निकले। उस समय खाँ साहब की आयु 26 वर्ष थी। विद्या और अभ्यास में खाँ साहब उस समय अतुलनीय थे। इसीलिए दिग्विजय की उनकी अभिलाषा अस्वाभाविक नहीं थी।

रामपुर और विल्सी में अवस्थान के समय खाँ साहब केवल संगीत-अभ्यास तक ही अपने को सीमित नहीं रखते थे, उन्होंने योग्य पण्डितों से संगीतशास्त्र, रामायण, महाभारत, पुराण आदि का अध्ययन किया और हिन्दी, अरबी, फारसी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और कुछ अंग्रेजी की शिक्षा भी पाई थी। खाँ साहब की विद्या सर्वतोमुखी थी। फुरसत के समय में पुराण के अवलम्बन से हिन्दी भाषा में नाटक और कविता की रचना में प्रवृत्त होने से उन्हें विशेष तृप्ति की अनुभूति होती थी। इसके अलावा चित्रांकन में भी वे दक्ष थे।

खाँ साहब के अन्य मातामह सादेक अली खाँ और निसार अली खाँ रबाबी इस समय वाराणसी में काशी-नरेश के दरबार में थे। वजीर खाँ रामपुर से सर्वप्रथम काशी गये और उनके साथ कुछ समय तक रहे। सादेक अली खाँ की मृत्यु के बाद निसार अली खाँ काशी में कुछ वर्षों तक जीवित थे। निसार अली खाँ ने रबाबीवंश की समस्त गुप्त विद्या और बहादुर सेन के कई अज्ञात ध्रुपद भी वजीर खाँ साहब को सिखाये। निसार अली की मृत्यु के बाद वजीर खाँ काशी का परित्याग कर कलकत्ता आ गये। कलकत्ता में वे अधिकांश समय तक चाँदनी में मुंशीजी नामक एक धनी मुसलमान के आतिथ्य में रहते थे और बीच-बीच में देश-भ्रमण के लिए भी जाते थे। बाद में काशी में जब अली मुहम्मद खाँ साहब राजगुरु हुए, तब वजीर खाँ बीच-बीच में उनके पास जाते थे। अली महम्मद खाँ भी दोहित्र के अनुरूप वजीर खाँ का विशेष सम्मान करते थे। इसके अलावा खाँ साहब ने मामा काशिम अली खाँ के निमंत्रण पर त्रिपुरा राजदरबार में भी विशेष सम्मान पाया था।

कलकत्ता में खाँ साहब प्रायः सात-आठ वर्षों तक रहे किन्तु प्रतिवर्ष कुछ महीनों के लिए देश-भ्रमण के लिए जाना उनका विशेष शौक था। खाँ साहब द्वारभांगा-राजदरबार, इन्दौर-दरबार, हैदराबाद निजाम-दरबार और मद्रास नगर में आमन्त्रित हुए। इन सभी स्थानों पर उन्होंने अपनी निपुणता और प्रतिभा का परिचय दिया। कलकत्ता में मेटियाबुरुज के नवाब, स्वर्गीय देशपूज्य महाराजा यतीन्द्रमोहन ठाकुर महोदय, राजा दुनीशील, जमींदार श्रीयुक्त ताराप्रसाद घोष महाशय, पंचेत्गढ़ के जमींदार यादवेन्द्र बाबू प्रभृति गुणीगण खाँ साहब के विशेष अनुरागी और भक्त थे। कलकत्ता में रहते समय खाँ साहब ने बंगला भाषा की भी अच्छी शिक्षा पायी और वे बंगला उत्तम ढंग से बोल सकते थे।

खाँ साहब वीणा की अपेक्षा सुरश्रृंगार अधिक बजाते थे। जिन सभी वृद्ध बंगाली संगीतानुरागियों को खाँ साहब का वादन सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उनके कानों में खाँ साहब के सुरश्रृंगार-वादन की अपूर्व झंकार आज भी अनुरणित है। गोबरडांगा के जमींदार ज्ञानदाप्रसन्न मुखोपाध्याय के निवास पर उन्होंने चाँदनी-केदार में आलाप बजाया था, जिसे सुनने का सुयोग कई गुणियों को मिला था। उस दिन के वादन की भूरि-भूरि प्रशंसा उनके मुख से आज भी सुनी जा सकती है। खाँ साहब विशेष अभिजात व्यक्तियों और राजा-महाराजा के अलावा अन्य किसी के भी घर पर नहीं बजाते थे, किन्तु संगीतानुरागी गुणीजन उनके घर पहुँच जाते तो वे उन्हें बड़े प्रेम और उत्सुकता से वादन सुनाते थे। कलकत्ता में उनके शिष्य भी कई थे। उनमें जमींदार श्रीयुक्त ताराप्रसाद घोष महाशय और रुद्रबीन-वादक प्रमथनाथ बंद्योपाध्याय महाशय के नाम उल्लेखनीय हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कलकत्ता महानगर में कुछ वर्ष रहने के बाद वजीर खाँ साहब रामपुर के स्वर्गीय नवाब हामिद अली खाँ के संगीतगुरु-पद पर अभिषिक्त होकर वहाँ चले गये। कलकत्ता में रहते समय ही खाँ साहब के ज्येष्ठ पुत्र नजीर खाँ (प्यारे मियाँ) की संगीत-शिक्षा आरम्भ हुई। रामपुर में बालक प्यारे मियाँ को लेकर खाँ साहब स्थायी रूप से प्रतिष्ठित हुए। नवाब बहादुर के चाचा हैदर अली खाँ वजीर खाँ के नव पद पर प्रतिष्ठान के मूल में थे। उन्होंने नवाब बहादुर को संगीत की ओर प्रवृत किया, अभिरुचि जाग्रत की और प्रोत्साहित किया। नवाब साहब ने भी वजीर खाँ के समान अद्वितीय संगीतगुरु पाकर संगीत में विशेष ज्ञान प्राप्त किया था।

आरम्भ में नवाब हामिद अली ने वीणायन्त्र वादन की शिक्षा प्राप्त की, किन्तु कण्ठ्यसंगीत में अधिक रुचि के कारण उन्होंने ध्रुपद-होरी का समधिक अभ्यास किया था। दीर्घकाल के अभ्यास व साधना के फलस्वरूप समय के साथ वे ध्रुपद-होरी के एक अतुलनीय गायक रूप में परिणत हुए। खाँ साहब ने भी नवाब से अपनी वंशगत विद्या का कोई भी अंश गुप्त नहीं रखा। कश्मीर तथा अन्यान्य राज्यों के राजन्यवृन्द से काफी लुभावने पदों का आह्वान मिला था किन्तु अपने प्रिय शिष्य रामपुर-नवाब को छोड़कर कभी अन्य राज्य में नहीं गये।

खाँ साहब सर्वदा रामपुर-नवाब के साथ ही रहते थे। नवाब ने रामपुर में खाँ साहब के नाम बड़ी जमींदारी लिख दी थी। इसके अलावा प्रसादतुल्य भवन में प्रचुर दास-दासी, सिपाही, घोड़ा-गाड़ी, मोटर आदि खाँ साहब की सेवा में रखे हुए थे। वर्तमान शताब्दी में प्राचीन शिल्पकला का सम्मान रामपुर के समान अन्य किसी नृपति ने किया है, इसमें सन्देह है; और संगीत-विद्या और संगीतगुरु के प्रति भक्ति का जो निदर्शन उन्होंने दिखाया है, इस समय में उसकी तुलना नहीं मिलती।

नवाब साहब खाँ साहब के साथ मसूरी, दिल्ली, बम्बई आदि नगरों के भ्रमण के लिए निकलते थे, किन्तु रामपुर जाने के बाद कलकत्ता आने का सुयोग खाँ साहब को नहीं मिला।

रामपुर में वजीर खाँ ने संगीत की विविध विधाओं में कई शिष्य तैयार किये। नवाब के दरबार के कई हिन्दू और मुसलमान मंत्रियों और नवाब के परिवार के व्यक्तियों ने खाँ साहब का शिष्यत्व ग्रहण किया और रामपुर के संगीत-गौरव का यथेष्ट प्रसार किया। वजीर खाँ के अन्य शिष्यों में पंचेतगढ़ के जमींदार यादवेन्द्रबाबू, सितार और सुरबहार-वादक नसीर अली, बीनकार महम्मद हुसेन, सितार-वादक आबदर रहीम तथा हारमोनियम-वादक सैयद इब्बन अली मियाँ के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ये सभी खाँ साहब के यौवन और प्रौढ़ वय के शिष्य थे। किन्तु खाँ साहब की वृद्धावस्था में सरोदवादक हाफिज अली खाँ और वीणापाणि के वरपुत्र बंगगौरव अलाउद्दीन खाँ साहब ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया और उनकी ख्याति और कीर्ति में यथेष्ट वृद्धि की।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वजीर खाँ साहब के तीन पुत्र थे—नजीर खाँ उर्फ प्यारे मियाँ, नसीर खाँ और सगीर खाँ। इन सभी ने पिता से श्रेष्ठ शिक्षा पायी थी। इनमें प्यारे मियाँ का नाम विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि प्यारे मियाँ को पिता से कई वर्षों तक संगीत-शिक्षा प्राप्त करने का सुयोग मिला था और उनकी प्रतिभा भी अपने पिता के समान ही थी। वीणा-वादन की सम्पूर्ण शिक्षा आयत्त करते हुए भी प्यारे मियाँ कण्ठ्यसंगीत के प्रति अधिक अनुरक्त थे, इसीलिए वजीर खाँ ने उन्हें श्रेष्ठ गायक के रूप में तैयार किया था। संगीत में प्यारे मियाँ की मेधा इतनी तीव्र थी कि पिता के अधिकांश शिष्यों को शिक्षा वे ही देते थे। वजीर खाँ की वृद्धावस्था में खाँ साहब के सभी शिष्यों को शिक्षा देने का भार प्यारे मियाँ ने ही ले लिया था। अन्त में इन्दौर-राजदरबार के संगीत-विभाग में अत्यन्त सम्मानित पद उनके लिए स्थिर हुआ, किन्तु विधि का कठोर विधान भिन्न ही था। इन्दौर जाने के पूर्व प्यारे मियाँ अकस्मात् कालेरा रोग से पीड़ित हुए और काल कवलित हो गये। वृद्धावस्था में जीवन की सम्पूर्ण आशा और आस्था स्वरूप प्रतिभाशाली पुत्र के निधन से वजीर खाँ को कितना आघात लगा, इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

प्यारे मियाँ के तिरोधान के बाद भग्नहृदय वजीर खाँ साहब अधिक समय तक जीवित नहीं रहे। उस दुर्घटना के बाद दो-तीन वर्षों में ही खाँ साहब ने महाप्रयाण किया, संगीत जगत् में अन्धकार फैल गया। खाँ साहब का शरीर जिस प्रकार सुदृढ़ था, उससे वे और बीस वर्षों तक स्वस्थ शरीर से जीवित रह सकते थे, किन्तु असह्य पुत्रशोक के कारण उनका स्वास्थ्य गिर गया और वे यक्ष्मा से पीड़ित हुए। ई० 1927 में खाँ साहब की इहलीला समाप्त हुई।

ज्येष्ठ पुत्र के निधन के बाद खाँ साहब कुछ वर्षों तक ही जीवित थे और इस अवधि में उन्होंने प्राणपन से यह प्रयास किया था कि उनकी वंशगत अमूल्य संगीत सम्पद् अपने वंश में ही उपयुक्त आधार पर सुरक्षित रहे। उन्होंने अनुभव किया कि उनके पौत्र दबीर खाँ और कनिष्ठ पुत्र सगीर खाँ ही उनकी प्रतिभा के योग्य अधिकारी हैं। इनकी शिक्षा पूर्णांग कर जाना ही उस समय उनके जीवन का एकमात्र काम था। देव-कृपा से उनका यह प्रयास यथार्थ ही सफल रहा। दबीर खाँ ने बहुत ही अल्प काल में वीणावादन में वजीर खाँ साहब की सम्पूर्ण विद्या आयत्त कर ली, सगीर खाँ भी कण्ठ्यसंगीत में खाँ साहब की विद्या और अतुलनीय स्वर-माधुर्य का प्रतिरूप दिखाने लगे। विविध विधान से ये खाँ साहब की विद्या और स्वरलालित्य के अधिकारी हो उठे—इनसे खाँ साहब के वंश का नाम उज्ज्वल हुआ।

शिष्यों में खाँ साहब के सर्वप्रिय ये अलाउद्दीन खाँ। अलाउद्दीन खाँ के समान तपस्वी वर्तमान युग में अन्य कोई नहीं हुआ। ये (अलाउद्दीन खाँ) प्राचीन मुनि—बालकों के समान सर्वस्व त्याग कर कठोर तपस्या के अनुरूप संगीत-साधना कर गये हैं—वर्षों तक। खाँ साहब के प्रति अलाउद्दीन खाँ की भक्ति वर्तमान समय

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में गुरु-भक्ति का श्रेष्ठ निदर्शन है। वजीर खाँ साहब भी अलाउद्दीन खाँ को परम स्नेह के साथ सरोद, रबाब और सुरश्रृंगार वाद्यवादन-पद्धति की शिक्षा दे गये—उन्होंने अलाउद्दीन खाँ को कई गान भी सिखाये, जो अन्य किसी भी शिष्य को कभी नहीं मिले।

इसीलिए खाँ साहब के तिरोधान के बाद एक ओर दबीर खाँ साहब वीणा-वाद्य में वजीर खाँ साहब की अपूर्व झंकार का अनुरणन ला सके, दूसरी ओर सगीर खाँ भी अपने पिता के कण्ठ की मिष्ठता और ध्रुपद-होरी की अनुकरणीय पद्धति की छवि प्रदर्शित कर सके; शिष्यों में अलाउद्दीन खाँ ने संगीत गुरु की कीर्तिस्वरूप सम्पूर्ण भारत में संगीत का वितरण किया। बाद में उन्होंने (अलाउद्दीन खाँ) यूरोप-यात्रा की और वहाँ की विद्वद्मण्डली को अपनी असामान्य प्रतिभा से मंत्रमुग्ध किया। उनके असामान्य संगीतज्ञान की प्रशंसा में फ्रांस, इंग्लैंड प्रभृति देश मुखरित हो उठे थे। इन देशों के लोगों के मन में हिन्दुस्थानी संगीत के प्रति श्रद्धा में वृद्धि हो गयी है। इनके द्वारा ही खाँ साहब आज भी अमर हैं। सम्पूर्ण भारत में संगीत-सृष्टि के मूल में हैं वजीर खाँ साहब। हिन्दुस्थान की दिशा-दिशा में हमें प्रेरणा मिल रही हैं, हम अनुप्राणित हैं। जहाँ भी हम उच्चांग और मधुर संगीत सुनते हैं, वहाँ हमें खाँ साहब का प्रभाव सूर्य-प्रकाश की भाँति दिखायी देता है। जीवितकाल में खाँ साहब को अद्वितीय संगीतगुरु रूप में जिस प्रकार सम्मान मिला है, मृत्यु के बाद भी उस पूजा-वेदी पर उनका स्थान कायम है व चिरदिन ही रहेगा।

वजीर खाँ साहब की मृत्यु के कुछ समय बाद रामपुर के वरेण्य नवाब हामिद अली का भी देहावसान हो गया। इसके बाद खाँ साहब के कनिष्ठ पुत्र खलीफा सगीर खाँ साहब रामपुर त्याग कर कलकत्ता आ गये। स्वर्गीय राजा सर सौरीन्द्र-मोहन ठाकुर के पौत्र संगीतसाधक कुमार क्षेमेन्द्रमोहन ठाकुर, अन्धगायक श्रीयुक्त कृष्णचंद्र दे और मुझे वे संगीत-शिक्षा देते थे।

वर्तमान शताब्दी में जिन्होंने मियाँ तानसेन की प्रतिभा का वंशगत उत्तराधिकार पाकर संगीत के विभिन्न अंश में कलाविद्या और कला-सुषमा की पराकाष्ठा दिखायी है, उनमें से दो गुणियों—अर्थात् वीणाविशारद् स्वर्गीय वजीर खाँ और रबाबी महम्मद अली खाँ के जीवनवृत्तान्त का विशद वर्णन किया। वर्तमान काल में सेनिया घराने के संगीत का जो जीवन्त निदर्शन है, वह इनकी ही सृष्टि है। यह सुखद है कि इनके तिरोधान के साथ-साथ सेनिया संगीत भारत से अन्तर्हित नहीं हुआ। महम्मद अली के पोष्यपुत्र-वंश के पौत्र सौकत अली खाँ तरुण होते हुए भी विशेष मेधा के साथ रबाबी वंश की सकल अवशिष्ट गीति आयत्त कर सके हैं। इसके अलावा विद्यालय में अंग्रजी भाषा, लखनऊ मॉरिस कालेज (अब भातखण्डे विद्यापीठ) में वर्तमान स्वरलिपि-पद्धति और राग के थाट व गठन की शिक्षा प्राप्त कर वर्तमान काल में सेनिया संगीत का उपयोगी प्रचार करने में वे सक्षम हुए हैं। रबाब, सुरश्रृंगार वादन पद्धति भी उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आयत्त की है। अत: महम्मद अली के निधन के साथ रबाब और सुरश्रृंगार का विकास रुक नहीं गया। इसके लिए 'कलकत्ता म्यूजिक एसोसिएशन' नामक प्रतिष्ठान का गठन हुआ। नाटोराधिपति सुगायक, सुवादक और संगीत के उच्च-मार्ग के एक प्रधान पथप्रदर्शक महाराज योगीन्द्रनाथ राय बहादुर ने उक्त 'एसोसिएशन' का स्थायी सभापति का पद अलंकृत किया था। इस प्रतिष्ठान का उद्देश्य था सभी गुणियों के सम्मेलन का आयोजन और यथार्थ सेनिया संगीत का संरक्षण और नवविकास की सिद्धि। यह एसोसिएशन सभी के लिए खुला था।

'संगीत संघ' के संगीतनायक श्रीयुक्त गोपेश्वर बन्द्योपाध्याय महाशय और 'संगीत सम्मिलिनी' के प्रधान शिक्षक गुणीवर श्रीयुक्त गिरिजाशंकर चक्रवर्ती महाशय दोनों ही सेनिया घराने के संगीत में प्रशिक्षित थे। सेनिया घराने के संगीत के भिन्न-भिन्न मार्गों का अनुसरण कर उन्होंने अपनी-अपनी गुणवत्ता का प्रदर्शन किया और बंगाल में उच्च और सुकुमार संगीतकला के विकास में यथेष्ट सहायता की। स्वर्गीय वजीर खाँ साहब के पुत्र खलीफा सगीर खाँ और पौत्र बीनकार दबीर खाँ साहब के स्थायी रूप से कलकत्ता में अवस्थान के कारण बंगाल में सेनिया घराने के संगीत की स्थायी उन्नति की सम्भावना अत्यधिक बढ़ गयी। उस समय वे कुमार क्षेमेंद्रमोहन ठाकुर महोदय के पास थे। संगीत की शिक्षा देने में ये भी उदार थे। आलाप, ध्रुपद, टप्पा, ठुमरी, गजल प्रभृति और सभी प्रकार के वाद्यसंगीत की शिक्षा ये बिना किसी भेदभाव के दिया करते थे किन्तु विद्यालय की अपेक्षा ये अपने भवन पर ही शिक्षा दिया करते थे।

मेरे पितृदेव संगीतप्राण श्रीयुक्त ब्रजेन्द्रकिशोर रायचौधुरी महाशय के प्रयासों का ही यह फल है कि बंगाल में तानसेन के वंशज मिलते हैं। स्वर्गीय महम्मद अली को आमंत्रित कर वे ही ले आये थे। उसी समय खलीफा सगीर खाँ, बीनकार दबीर खाँ और बालक रबाबी सौकत अली का जीवन-भर वृत्तिभार भी उन्होंने ही वहन किया था, जिससे संगीत-सरस्वती की यथार्थ सेवा बंगाल में सम्भव हो सकी। महाराजा योगीन्द्रनाथ रायबहादुर ने सौकत अली को कुछ दिनों के लिए अपने भवन में आश्रय दिया था। सर्वोपरि यह उल्लेखनीय है कि बीनकार क्षेमेन्द्रमोहन ठाकुर महाशय ने सगीर खाँ और दबीर खाँ का जीवन-भर आश्रयभार ग्रहण कर संगीत-सेवा की पराकाष्ठा का प्रदर्शन किया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परिशिष्ट—क

'तानसेन' के पाठकों में मध्ययुग के गायकों-वादकों के इतिवृत्त को जानने की इच्छा जाग्रत होना स्वाभाविक है, अतः 'माद्नुल मूसीकी' नामक उर्दू ग्रन्थ का संक्षिप्त अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है।

लखनऊ के हकीम महम्मद करम इमाम नामक एक मुसलमान भद्रलोक ने ई० 1857 में उर्दू भाषा में इस पुस्तक की रचना की थी। वे स्वयं संगीतकार नहीं थे, किन्तु संगीत का उन्हें गंभीर ज्ञान था और उसके प्रति विशेष अनुराग भी। उनकी मृत्यु के दीर्घकाल बाद लखनऊ के एक भद्र व्यक्ति ने इस पुस्तक को मुद्रित एवं प्रकाशित किया।

ग्रंथकार जनाब इमाम ने लिखा है—

मेरे मातामह लखनऊ शहर में नवाब आसफुद्दौला के सभासद् थे। बाल्यकाल से ही गायन-वादन के प्रति मेरा रुझान था। सैन्य विभाग में भर्ती होने के बाद मेरे पिता दिलावर खाँ और मेरे मामा अलिमुल्ला खाँ के पास मैंने 'सोजरवानी' संगीत (मुहर्रम के दस दिनों में गाया जाता है) सीखा था। ये दोनों ही अच्छे संगीतज्ञ थे। इनके साथ लखनऊ में रहते समय आसफुद्दौला के मामा (नवाब सालरजंग) के पुत्र (नवाब हुसेन अली खाँ) के साथ मेरा विशेष बन्धुत्व हो गया। नवाब हुसेन अली खाँ सुदक्ष संगीतज्ञ थे। उनके संसर्ग में आने के बाद से ही मेरे गाने-बजाने में काफी उन्नति होने लगी। बाद में मीर अली साहब का शागिर्द होकर मैंने उनसे 'सोजरवानी' संगीत ठीक ढंग से सीख लिया। इस समय मुझे किसी प्रयोजनवश लखनऊ से बाहर जाना पड़ा। बाहर जाने से मेरा बड़ा उपकार ही हुआ था—मेरे समय के कई बड़े-बड़े गायकों और वादकों के सम्पर्क में आने का सुयोग बहुल परिमाण में मिला था। अयोध्या के राजा नसरुद्दीन हैदर की जब मृत्यु हुई तब मैं बान्दा-कलक्टर के कार्यालय में सेरेस्तादार (लेखपाल) था। प्रवीण संगीतज्ञ नवाब जुल्फिकार खाँ उस समय बान्दा में रहते थे। उनके सभासदों में कई विख्यात गायक-वादक थे। उनका गायन-वादन सुनने का सुयोग प्रायः रोज ही मिलता था और मैं कई दिनों तक इस सुयोग से लाभान्वित होता रहा। बान्दा में रहते समय संगीत विषयक जिन पुस्तकों को मैंने पढ़ा था, उनके नाम नीचे दिये जा रहे हैं—

(1) खुलासते उल एश, (2) नगमाते आसफी, (3) रिसाला मधनायक, (4) रिसाला अमीर खुसरो, (5) रिसाला तानसेन, (6) संगीत रत्नमाला, (7) संगीतसार, (8) संगीत दर्पण, (9) सुरसागर।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जीवन में मैंने सुदक्ष संगीतज्ञ केवल दो देखे—एक हैं लखनऊ के मीर अली साहब, अन्य हैं इलाहाबाद के बाबा रामदास। संगीतशास्त्र की सभी शाखाओं का इन्हें असाधारण ज्ञान था। ई० 1853 में बान्दा की नौकरी छोड़कर मैं लखनऊ चला आया। उस समय भी नवाब वाजिद अली खाँ साहब लखनऊ की गद्दी पर अधिष्ठित थे। उनके श्वसुर नवाब इक्तामुद्दौला की नौकरी में मैं बहाल हुआ था। लखनऊ शहर पर जब तक अंग्रेजों का अधिकार नहीं हुआ, तब तक वे वहीं थे।

प्राचीन नायकों के नाम पाठकों की अवगति के लिए मैं यहाँ लिख रहा हूँ—

(1) भानु—भारी प्रसिद्धि पायी थी, (2) लोहंग, (3) डालु, (4) भगवान, (5) गोपालदास, (6) बैजु, (7) पांडे, (8) चर्जू, (9) बक्सू, (10) धोंडू (ढूँढ़ी), (11) मीराँमध नायक—मीराँमध नायक का वास्तविक नाम था सैयद निजामुद्दीन अहमद; 1098 हिजरी में उनका जन्म हुआ था—उनका वासस्थान बिलग्रामी शहर में था—उनकी मृत्यु के बाद किसी एक व्यक्ति ने उनके सम्बन्ध में लिखा है :

"सुरपत दिर्ग सुखत नहीं निशदिन रहे उदास।
मधनायक के मरत ही चहुँदिश भये उदास॥"

पूर्वोक्त सभी गायक ध्रुपद गाते थे, (12) अमीर खुसरो—इनकी योग्यता सबसे अधिक थी—खयाल का सर्वप्रवम प्रचलन इन्होंने ही किया था।

प्रसिद्ध खयालियों के नाम हैं—

(1) अमीर खुसरो—हजरत, (2) सुलतान हुसेन शर्की—जौनपुर के राजा, (3) चंचल सेन, (4) बाज बहादुर—मालवाधिपति, (5) सूरज खाँ, (6) चाँद खाँ, (7) गुलाम रसूल—लखनऊ-अधिवासी—हमारे समय तक जीवित थे।

प्रसिद्ध टप्पा गायकों के नाम हैं—

(1) गुलाम नबी (शौरी)—इनके पिता का नाम था। गुलाम रसूल, (2) गाबू, (3) शादी खाँ—गाबू के पुत्र, खयाल भी गाते थे, (4) बाबूराम सहाय—टप्पा को छोड़कर वे अन्यान्य गान गाते थे, (5) नवाब हुसेन अली खाँ, (6) मीर अली साहब। शेषोक्त दो लखनऊ में रहते थे।

पूर्व इतिहास

अकबर बादशाह के समय में प्रसिद्ध दो गुणी जीवित थे। एक का नाम था गोपाललाल, दूसरा का नाम था बैजू। अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल के बैजू एवं गोपाल नायक पृथक् व्यक्ति हैं। ये बैजू किसी की चाकरी नहीं करते थे—जीवन के अंतिम काल में उन्हें वैराग्य हो गया था एवं उन्होंने सांसारिक जीवन का परित्याग कर दिया था।

अकबर बादशाह की राजसभा में चार महागुणी रहते थे। उनके नाम नीचे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दिये जा रहे हैं—

(1) तानसेन—पिता का नाम मकरन्द पांडे; गौड़ीय ब्राह्मण; वृन्दावन के स्वामी हरिदास के शिष्य; ग्वालियर में रहते थे। (2) ब्रिजचंद—जाति से ब्राह्मण, दिल्ली के निकट डागुर नामक ग्राम में उनका मकान था। (3) राजा समोखनसिंह—जाति से राजपूत, खण्डार नामक स्थान के अधिवासी, बीनकार। (ध) श्रीचन्द—राजपूत, नौहर स्थान के अधिवासी।

इपु चारों गुणियों के ग्रामों के नामों के अनुसार चार वाणियाँ—गौड़ी, डागुर, खण्डार, नौहर—प्रसिद्ध हुईं।

तानसेन गौड़ीय ब्राह्मण थे, अतः उनकी वाणी का नाम हुआ था 'गौड़ी' अथवा 'गोबरहरी'। तानसेन के वंशज जाफर खाँ, प्यार खाँ 'गौड़ी' या 'गोबरहरी' वाणी गाते रहे।

मिश्री सिंह प्रसिद्ध बीनकार थे। मुसलमान धर्म ग्रहण करने के बाद उनका नाम हुआ था 'नबात खाँ'[1]—बाद में उन्होंने तानसेन की कन्या के साथ विवाह किया।

---

1. रामपुर के नवाब हामिद अली खाँ के उस्ताद वजीर खाँ उनके ही वंशज थे। नबात खाँ की वंशतालिका दी जा रही है—

बड़े नबात खाँ (समोखन सिंह बीनकार)
|
शेर खाँ
|
हुसेन खाँ
|
असत खाँ
|
लाल खाँ
|
बेनजीर खाँ
|
असत खाँ
|
खुशहाल खाँ
|
लाल खाँ सामी
|
महावत खाँ — न्यामत खाँ खयाल रचयिता सदारंग)

जीवनशाह — प्यार खाँ (अंगलीकट)
|
छोटे नबात खाँ
|
उमराव खाँ
|
अमीर खाँ (गायक और बीनकार)
|
वजीर खाँ (रामपुर नवाब के गुरु)
|
प्यारे मियाँ (मूल ग्रन्थ की वंशतालिका से यह तालिका भिन्न लगती है।)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समोखन सिंह[1] या बड़े नबात खाँ की वाणी का नाम था 'खण्डासे' वाणी।

ब्रिजचन्द—इनके वंशज थे यूसुफ खाँ और वजीर खाँ ध्रुपदिया—वजीर खाँ बम्बई के महाराजा जीवन लाल के दरबार में गायक थे।

श्रीचन्द—तानरस खाँ[2] इनके वंशज थे और दिल्ली में रहते थे।

अकबर बादशाह के समय में 'रागसागर' नामक ग्रन्थ लिखा गया था। इस ग्रन्थ में राग के सम्बन्ध में जो वर्णन है वह 'मानकुतूहल' नामक ग्रन्थ के वर्णन से पृथक् है। मेरे मत से ग्वालियर के राजा मान के दरबार की अपेक्षा बादशाह अकबर के दरबार में अपेक्षाकृत अधिकतर गुणसम्पन्न गायक थे। राजा मान उनके समय के एक श्रेष्ठ संगीत-नायक थे। मानकुतूहल ग्रन्थ में राग-वर्णन उनके ही कथन के अनुसार किया गया।

मेरे मत के अनुसार अकबर बादशाह के समय के सभी गायक 'अताई' थे। संगीतशास्त्र का जिन्हें ज्ञान नहीं, उन्हें ही मैं 'अताई' कहता हूँ। तानसेन श्रेष्ठतम नायक थे, इसमें बिन्दु मात्र सन्देह नहीं। यह बात भी सत्य है कि हजार वर्षों में भी उनके समान गायक ने जन्म ग्रहण नहीं किया, किन्तु यह भी स्वीकार करना होगा कि संगीतशास्त्र का उन्हें ज्ञान नहीं था। तानसेन के समय के सुजान खाँ, सुरज्ञान खाँ (फतेपुरी), चाँद खाँ, सूरज खाँ, मायाचाँद (तानसेन के शिष्य), तानतरंग खाँ, विलास खाँ (तानसेन के पुत्र), रामदास धूँड़िया, दाउद खाँ ढाढ़ी, मोल्ला इसाख ढाढ़ी, खिजिर खाँ, नौबाद खाँ एवं हुसेन खाँ—सभी 'अताई' थे, यह बात मैं निःसन्देह कह सकता हूँ। वरन्, बाजबहादुर, नायक चर्जू, नायक भगवान धोंड़ी (ढूँडी), सूरतसेन (विलास खाँ के पुत्र), लाला, देवी (ब्राह्मणबन्धु), अकिल खाँ (बाकर खाँ के पुत्र)—को कुछ-कुछ शस्त्र-ज्ञान था, किन्तु इनमें से कोई भी भानु, पांडे किंवा बक्सू के समान विद्वान् नहीं थे।

अकबर के बाद जिन गुणियों का जन्म हुआ था, उनके नाम कश्मीर के

---

1. समोखन सिंह की वंशतालिका—

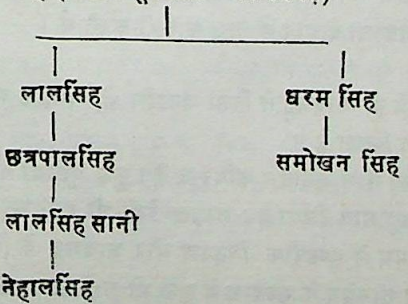

2. बम्बई के 'गायन उत्तेजक मंडली' में एक बार उनका जलसा हुआ था। वे हैदराबाद-निजाम की चाकरी करते थे। 45 वर्ष पूर्व इनकी मृत्यु हुई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुबेदार फकीरुल्ला ने अपने ग्रन्थ 'रागदर्पण' में इस प्रकार दिये हैं—

1. शेख बहारुद्दीन वर्णा—ये शाहजहाँ बादशाह के दरबार में रहते थे। बाद में 'दरवेश' (फकीर) हो गये थे। वे आजीवन अविवाहित थे। वे 'मार्गराग' गा सकते थे। रबाब और वीणा बजाते थे। ध्रुपद, होरी, तराना आदि कई रचनाएँ उन्होंने कीं।

2. शेख शेर महम्मद—ये वर्णा के एक दरवेश बन्धु थे—ये भी उत्कृष्ट गायक थे। इन्होंने कई खयाल, तराना की रचना की थी। इसके अलावा इन्होंने 'भीमसिरी', 'संकत' आदि नवीन रागों की भी सृष्टि की थी।

3. मियाँ दानु ढाढ़ी—ये प्रसिद्ध वादक थे—ये 'घट' नामक वाद्य बजाते थे।

4. लाल खाँ कलावन्त—ये विलास खाँ के जामाता थे—एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे।

5. जगन्नाथ कविराज[1]—तानसेन के बाद इस प्रकार का और कोई गुणी जन्मा नहीं। तानसेन स्वयं कहते थे—"मेरे अलावा जगन्नाथ कविराज के समान गुणी व्यक्ति और दूसरा कोई नहीं है।" सौ वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु हुई।

6. सोभालसेन—तानसेन के नाती—ये भ्रमणप्रिय थे।

7. सोदास सेन—ये सोभालसेन के पुत्र थे, कवि थे—पहले शाह सूजा के दरबार में रहते थे। अंत में कश्मीर के फकीरुल्ला दीवान के पास थे (हिजरी 1082)।

8. मिश्री खाँ ढाढ़ी—विलास खाँ के शिष्य थे; सम्राट् शाहजहाँ के पुत्र शाह सूजा के पास चाकरी करते थे। ये बंगाल में ही रहते थे।

9. हसन खाँ कव्वाल—ये विद्वान् नहीं थे। इनका निवास स्थान भी स्थिर नहीं था।

10. गुणसेन—इनका यथार्थ नाम था अफजुल। ये नायक भानु के वंशज थे। गीत एवं संगीत दोनों ही ये अच्छी तरह गा सकते थे। मार्ग राग भी वे जानते थे। कश्मीर में उनकी मृत्यु हुई।

11. शेख कमाल—मियाँ दाउधारी इनके ही शिष्य थे। ये गायक थे और कश्मीर में फकीरुल्ला दीवान के पास चाकरी करते थे।

---

1. सम्भवतः ये ही भावभट्ट ने पिता जनार्दन थे, क्योंकि भावभट्ट ने पिता का नाम भी जनार्दन लिखा है।।

मतान्तर से अन्य नाम जनार्दन कविराज है। कुछ गुणियों ने इन्हें ही भावभट्ट का पिता जनार्दन भट्ट मान लिया है। भातखण्डेजी भी इसी मत का पोषण करते थे। तानसेन के समय में पुण्डरीक विठ्ठल और भावभट्ट के पिता जनार्दन भट्ट जीवित थे। उन्होंने तानसेन के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा। भावभट्ट ने अपने ग्रन्थ 'अनूपविलास' में तानसेन द्वारा आविष्कृत 'दरबारी कान्हड़ा' के सम्बन्ध में लिखा है—'जो दरबारी सो शुद्ध कहावे'।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

12. बखत खाँ—ये कलावन्त थे—गुजरात में रहते थे।

13. रंगे खाँ—कलावन्त।

14. खुशहाल खाँ—लाल खाँ के पुत्र। इन्होंने 'गुणसमुद्र' की उपाधि पायी थी।

15. गुलाम मोहिउद्दीन—ये तुर्की वंश के कवि थे।

16. साद्द खाँ ढाढ़ी—ये गायक एवं कवि थे—इनका निवास-स्थल फतहपुर था।

17. कान खाँ कलावन्त—शाह सूजा ने बादशाह शाहजहाँ से माँग कर इन्हें अपने पास रखा था।

18. बल्लीधारी—आगरा में इनकी मृत्यु हुई थी।

19. सलीम चाँद डागुर—ये उत्तम गायक थे—इनके कई स्वरचित्त गान मिलते हैं।

20. शेख सादुल्ला—लाहोर के प्रसिद्ध गायक थे—अधिक अफीम खाने के कारण उनका गला खराब हो गया था।

21. सूजा—शेर महम्मद के भाई—कश्मीर में फकीरुल्ला दीवान के पास नौकरी करते थे।

22. महम्मद बागी—उत्तम गायक और कवि थे, किन्तु अफीम खाने के कारण उनका कण्ठस्वर विकृत हो गया था।

23. बायजित् खाँ—कलावन्त।

24. रुद्र—कव्वाल।

25. धरमदास—कलावन्त।

26. रहीमदास—ढाढ़ी।

27. कवज्योत—ढाढ़ी।

28. ईढे सिंह—राजा रोझ अफजून के पुत्र—अमीर खुसरो के गान गाते थे—तराना भी उनके समान गा सकते थे

29. मीर इमाइ—ये सैयद वंशीय कवि थे।

30. हमीर सेन एवं उनके पुत्र सोबालसेन—दोनों ही प्रसिद्ध कलावन्त थे।

31. सय्यद तीव्र—'मध' नाम का प्रयोग इन्होंने ही गीतों में किया था—इनका कण्ठस्वर अच्छा नहीं था।

32. सुन्दरघन—उत्तम कवि थे। किन्तु साधारण गान गा सकते थे।

33. वजीर खाँ नौहर—ये सुजान खाँ के नाती थे—उत्कृष्ट गायक थे। गीत और ध्रुपद दोनों ही गा सकते थे। अमीर खुसरो के खयाल भी ये उत्तम ढंग से गाते थे।

जो गायक वादन में भी कुशल थे, उनके नाम लिखे जा रहे हैं—

1. हैयात—ये जहाँगीर बादशाह की चाकरी करते थे—'सरसमोन' की उपाधि पायी थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

2. वायाझिद् रबाबी—अत्यन्त गुणी व्यक्ति थे—इस प्रकार के गुणी विरल हैं। अधिक मद्यपान के कारण इनकी अकाल मृत्यु हो गयी थी।

3. शिखरसेन कलावन्त—ये वायाझिद के शिष्य थे—इनके समान रबाबी और दूसरा नहीं है।

4. साले रबाबी ढाढ़ी—ये कश्मीर के सुबेदार के अधीनस्थ नौकरी करते थे।

5. हयाती रबाबी—इनका हाथ बड़ा मीठा था।

6 कर्याई—मार्ग संगीत गा सकते थे—कश्मीर में रहते थे—इन्हें 'मृदंगराज' की उपाधि मिली थी।

7. अमानुल्ला—परवावजी थे—कश्मीर में नौकरी करते थे—उत्तम परवावज-वादक थे।

8. फिरोज ढाढ़ी—लाहौर मे रहते थे, वहाँ उनके समान अन्य कोई भी उत्तम परवावज-वादन नहीं कर सकता था।

9. ताहीर—डफ-वादक—प्रवीण आयु में इनकी मृत्यु हुई।

10. अल्लादाद ढाढ़ी—सारंगी बजाते थे—जालंधर के निकट घर था। दोआब में उनके समान सारंगी कोई बजा नहीं सकता था।

11. रसबीन—इनका यथार्थ नाम था महम्मद।

12. शौगी—तम्बूरा-वादक—पारसी और हिन्दुस्थानी दोनों ही संगीत-पद्धतियाँ जानते थे।

13. आबु अलूबा—तम्बूरा बजाते थे—यह वाद्य पारस देश का है—हिन्दुस्थान का तम्बूरा नहीं।

14. ताराचाँद कलावन्त—शौगी के शिष्य।

15. भगवान—तानसेन के साथ रहते थे, पहले दिल्ली में अकबर बादशाह के पास थे,—बाद में कश्मीर चले गये।

16. अमीर—सुरणा नामक वाद्य बजाते थे।

जिन गुणियों के बारे में ऊपर लिखा गया वे सभी प्राचीन व्यक्ति थे। इनके समकक्ष और भी गुणी थे।

नवाब सुजाउद्दौला के राज्य में गायक-वादक कौन-कौन थे, अब उनके बारे में लिखता हूँ। इन सब गायकों-वादकों में किसी-किसी का लखनऊ में निधन हो गया—कोई-कोई नवाब सादत अली खाँ के शासनकाल में नौकरी छोड़ कर चले गये। उक्त नवाब को गायन-वादन का विशेष शौक नहीं था।

पूर्वोक्त गुणियों के बाद के एवं मेरे पहले के गुणियों के नाम दिये जा रहे हैं—

1. मियाँ जानी एवं गुलाम रसूल—ये अत्यन्त गुणी थे—इनमें आत्माभिमान भी बहुत अधिक था। एक बार ये नवाब हुसेन रजा खाँ के निवास पर गाना गाने के लिए गये थे—किन्तु वहाँ उचित सम्मान न पाकर नवाब आसफुद्दौला की चाकरी छोड़कर चले गये थे। लोगों का कहना है कि इनका गान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुनकर बुलबुल प्रभृति पक्षी पास में आकर बैठ जाते थे।

2. शक्कर खाँ एवं मखखन खाँ—अत्यन्त गुणी थे। प्रसिद्ध बड़े महम्मद खाँ कव्वाल शक्कर खाँ के पुत्र थे। शक्कर खाँ लखनऊ में रहते थे।

3. सोना और मखखन—ये दोनों बन्धु कव्वाल थे—इन्होंने विशेष प्रसिद्धि भी पायी थी।

4. मियाँ शौरी—प्रसिद्ध टप्पावाला।

5. मियाँ छज्जू खाँ कलावन्त—तानसेन वंश की गौड़ी वाणी में ध्रुपद गाते थे।

6. मियाँ जीवन खाँ—छज्जू खाँ के बन्धु—मार्ग और देशी राग गाते थे। उत्कृष्ट रबाब-वादक भी थे—आसफुद्दौला के शासनकाल में इनकी मृत्यु हुई।

7. नवाब सालरजंग—सुजाउद्दौला के कुटुम्बी, गमक और आकार में इनका सानी नहीं था—होरी और ध्रुपद भी गाते थे।

8. नवाब काशिम अली खाँ—सालरजंग के पुत्र—उत्कृष्ट गायक थे।

9. मियाँ गम्मू—कव्वाल शौरी के शिष्य। इनके कारण ही हिन्दुस्थान में टप्पा लोकप्रिय हुआ। प्रसिद्ध शादी खाँ इनके ही पुत्र थे। शादी खाँ भी ठीक पिता की योग्यता प्राप्त करने में समर्थ हो सके थे। ये काशी के राजा नारायण सिंह के पास रहते थे।

मेरे समय (ई० 1853) के प्रसिद्ध गुणियों में कम ही लोग अभी जीवित हैं। आज वैसा शास्त्रज्ञान दिखायी नहीं देता। मेरे समय के गुणियों के नाम लिखे जा रहे हैं—

'ढाढ़ी' पदवी का प्राचीन गायकों-वादकों के नामों के साथ व्यवहार पहले होता था। इतिहास से पता चलता है कि उक्त उपाधिधारी गायक-वादक विशेष परिश्रम से जीविकोपार्जन करते थे। वे 'करका' नामक गीत गाते थे। इन सभी गायकों ने बाद में मुसलमान धर्म ग्रहण किया था। इनमें से बक्सू नामक एक व्यक्ति ने नायक की उपाधि भी पायी थी। ढाढ़ियों का पहले का गौरव अब समाप्त हो गया है।

कव्वाल और कलावन्त पहले समाज में यथेष्ट सम्मान और आदर पाते थे। 'कव्वाल' नाम का प्रचलन अलाउद्दीन खिलजी के समय से हुआ है और 'कलावन्त' नाम का प्रचलन अकबर के शासनकाल से हुआ है।

तानसेन के वंशजों में आज भी कोई-कोई गान करते हैं—और कोई रबाब बजाते हैं। प्यार खाँ, जाफर खाँ और बासत् खाँ—सभी तानसेन के वंशज हैं। जाफर खाँ छज्जू खाँ के पुत्र हैं—उनके समान रबाब-वादक आज हिन्दुस्थान में और कोई नहीं है। जाफर खाँ लखनऊ के प्रसिद्ध नवाब वाजिद अली खाँ साहब के गुरु थे। प्यार खाँ ने 'सुरशृंगार' नामक नवीन वाद्य का आविष्कार किया। जाफर खाँ गायक थे। उनके प्रथम पुत्र काशिम अली खाँ रबाब बजाते थे। वे फारसी और अरबी भाषाओं में सुपण्डित थे। काशिम अली ने 'अरमुद्दौला'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पदवी प्राप्त की थी। जाफर खाँ के द्वितीय पुत्र का नाम था रहातुद्दीन और तृतीय पुत्र का नाम था निसार अली। बासत् खाँ के चार पुत्र थे।

रामपुर के जो अत्यन्त प्रसिद्ध सुरश्रृंगार-वादक हुसेन खाँ थे, वे प्यार खाँ की बहिन के पुत्र थे। प्यार खाँ की अपनी कोई सन्तान नहीं थी, अतः उन्होंने भागिनेय को सुरश्रृंगार-वादन की शिक्षा दी थी। बाद में उन्हें ही दत्तक रूप में ग्रहण किया। हुसेन खाँ के समान सुरश्रृंगार अन्य कोई बजा नहीं सका। तानसेन के वंशजों में सभी अत्यन्त अभिमानी थे।[1]

मियाँ जीवन खाँ के दो पुत्र थे—(1) बहादुर खाँ और (2) हैदर खाँ। बड़े पुत्र उत्कृष्ट रबाब-वादक थे। छोटे पुत्र वाजिद अली शाह के दीवान नवाब अली नक्की खाँ के उस्ताद थे। हैदर कुछ पागल ढंग के व्यक्ति थे, किन्तु अद्भुत गायक थे। मैं कई दिनों तक हैदर खाँ के साथ रहा। अभी उनके दो भाइयों की मृत्यु हुई। उमराव खाँ और महम्मद अली खाँ दोनों ही बीनकार थे। उमराव खाँ के दो पुत्र थे—रहीम खाँ और अमीर खाँ।

इनमें अमीर खाँ ने होरी-ध्रुपद गाकर बड़ी सुख्याति अर्जित की थी। मैंने स्वयं उन्हें चित्रकारी सिखायी थी। उनमें अभिमान बिलकुल नहीं था। वे सुसभ्य और सुशिक्षित थे। उपर्युक्त गायकों-वादकों में से किसी ने मिश्री सिंह (नबात खाँ) के, अर्थात् तानसेन के दोहित्रवंशीय रूप में, कोई सदारंग वंशज रूप में प्रसिद्ध हुए हैं। जाफर खाँ, प्यार खाँ और बासत् खाँ सभी तानसेन के पौत्र के वंशज थे। बादशाह के शासनकाल में ये सभी गायक-वादक दिल्ली में रहते थे, किन्तु बाद में नवाब सुजाउद्दौला के समय में लखनऊ (फैजाबाद) चले आये एवं वहीं पर निवास करने लगे। इनके गायन को जनसमाज में समादर मिला।

दिल्ली में तानरस खाँ नामक एक उत्कृष्ट गायक हैं। वे गजल गाते हैं। उनके समान अच्छे व्यक्ति विरल हैं। कलावन्त इमाम बक्स पहले आगरा में रहते थे, अब दक्षिण में चले गये हैं। उन्होंने शास्त्रों का अध्ययन भी किया था। उनकी आयु सौ वर्ष हो गयी है। उनके पुत्र हुसेन खाँ गाना-बजाना नहीं जानते। आगरा के वजीर खाँ और यूसुफ खाँ अपने वंश के इतिहास के अनुसार कलावन्त और

---

1. इनके अभिमान और वंशमर्यादा बोध के सम्बन्ध में लखनऊ में एक गल्प प्रचलित है—प्यार खाँ के दत्तक पुत्र बहादुर हुसेन खाँ ने प्यार खाँ के सहोदर भाई जाफर खाँ से सुरश्रृंगार-वादन के बारे में उपदेश चाहा था—इस पर जाफर खाँ ने जवाब दिया था—"मेरे घर की विद्या मैं कभी अन्य के घर में नहीं दूँगा।" इसके पश्चात् प्यार खाँ ने उन्हें सुरश्रृंगार-वादन की शिक्षा गुप्त रूप से दी थी। इस पर जाफर खाँ इतने क्रुद्ध हुए थे कि जीवन भर उन्होंने प्यार खाँ से बात नहीं की; यहाँ तक कि प्यार खाँ की मृत्यु के समय एक बार भी उन्हें देखने नहीं गये।—इस दत्तक पुत्र ने ही छम्मन साहब के पिता हैदर अली खाँ साहब को सुरश्रृंगार-वादन की शिक्षा दी थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मातामह के वंश के अनुसार कव्वाल उपाधिधारी हुए थे। ये दोनों ही होरी-ध्रुपद उत्तम ढंग से गाते थे। टप्पा-खयाल में भी अनभ्यस्त नहीं थे। मैं छह महीनों तक प्रतिदिन इनका गायन सुनने जाता था। उनकी कसरत के समय मैं उनके पास बैठा रहता। इनके मुंह से जैसी गमक मैंने सुनी है, समोखन सिंह के वंश के अन्य किसी से इस प्रकार की गमक नहीं सुनी। इनके पिता का नाम था निजाम खाँ एवं पितामह का नाम था काईम खाँ। मैंने उनसे ध्रुपद भी सुने हैं।

दिल्ली के मौज खाँ का ध्रुपद गायन चमत्कारपूर्ण है। लखनऊ के जिन शंकर खाँ की बात मैंने पहले कही है, उनके दो पुत्र हैं—बड़े पुत्र का नाम है अहमद खाँ और छोटे पुत्र का नाम है महम्मद खाँ। महम्मद खाँ की राग व खयाल प्रस्तुति अहमद खाँ की अपेक्षा शुद्धतर है। सभी स्वीकार करते हैं कि दक्षिण में महम्मद खाँ के समान अच्छा गायक अन्य कोई नहीं है। वे हिन्दू के समान सिर पर चोटी रखते थे और हिन्दू के समान ही उसे बाँधते थे। वे अत्यन्त सज्जन और भद्र पुरुष थे। रीवां राज दरबार में हजार रुपये महीने की उनकी नौकरी थी। वहीं पर उनकी मृत्यु हुई।

महम्मद खाँ पहले ग्वालियर के दौलतराव सिंधिया के दरबार में चाकरी करते थे। ग्वालियर के लोगों के मुंह से उनके सम्बन्ध में दो क्षुद्र आख्यायिकाएँ सुनी जाती हैं। ग्वालियर के महाराजा उन्हें 1200 रु० का वेतन देते थे। एक उत्कृष्ट दरबारी गायक के रूप में उन्होंने यहाँ पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त की थी। इस समय हद्दू खाँ और हस्सू खाँ नामक दो तरुण गायक भी यहाँ चाकरी करते थे। ये पीरबक्स घराने का गायन करते थे। ग्वालियर में उनके ध्रुपद अंग के और आलाप ढंग के खयाल काफी जनप्रिय हो गये थे। महाराजा महम्मद खाँ की तान-प्रणाली अधिक पसन्द करते थे। उन्होंने हद्दू खाँ और हस्सू खाँ को उक्त प्रकार की तान-प्रणाली तैयार करने का आदेश दिया। उन्होंने दो-चार महीनों तक दिन में एक बार महम्मद खाँ की तान सुनने की इच्छा प्रकट की। महाराजा ने उन्हें पलंग के नीचे छिपकर प्रत्यह महम्मद खाँ का गान सुनने का आदेश दिया। छह-सात महीनों के बाद महाराजा ने एक जलसे का आयोजन कर दोनों युवकों को महम्मद खाँ का गान गाने का आदेश दिया। दोनों युवकों ने महम्मद खाँ के गानों को अविरल रूप में पेश कर दिया। गान सुनकर महम्मद खाँ ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहा—"यहाँ रहने से मेरे साथ बड़ा धोखा हुआ है, इस प्रकार की जगह पर मैं चाकरी कभी नहीं करूँगा।" इतना कहने के बाद वे चाकरी छोड़कर चले गये, किसी की भी बात नहीं सुनी। बारह सौ रुपये वेतन से भी उनका खर्च पूरा नहीं होता था। हाथी पर बैठकर वे दरबार में आते थे।

ग्वालियर के महाराजा के मन्त्री का नाम था त्र्यम्बक राव। महम्मद खाँ का 1200 रु० वेतन लेना इन्हें बिलकुल पसन्द नहीं था। व्यय कम करने का झूठा बहाना बनाकर उन्होंने महम्मद खाँ को मासिक तीन सौ रुपये का वेतन देना स्थिर कर महारानी बायजाबाई के पास जाकर प्रस्ताव रखा। महारानी एक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अन्यान्य सभी ने उनके प्रस्ताव का अनुमोदन कर दिया। अतः एक सरकारी पत्र द्वारा उन्होंने इसकी जानकारी महम्मद खाँ को दे दी। पत्र पाते ही महम्मद खाँ चाकरी छोड़ने के लिए तैयार हो गये; किन्तु जाने के पूर्व महाराजा का दर्शन कर उन्हें प्रणाम करके जाने का निश्चय कर के एक छोटी तम्बूरी लेकर राजबाड़ी की ड्योढ़ी पर आकर खड़े हो गये। जब प्रहरियों ने उन्हें किसी भी तरह महाराजा से मुलाकात करने के लिए जाने नहीं दिया, तब ड्योढ़ी की एक ओर बैठकर, उन्होंने तोड़ी राग का आलाप आरम्भ किया। देखते-देखते ही उनके चारों ओर लोग जमा हो गये। महाराजा प्रत्यह प्रातः भ्रमण के समय अपने हाथों से सिर पर पगड़ी बाँधते थे। दूसरी मंजिल पर इस समय उन्होंने पगड़ी बाँधने के लिए हाथ में मात्र उठायी थी कि गान सुनकर उनकी आँखों से अविरल जलधारा बहने लगी—पगड़ी नहीं बाँधी जा सकी। दिन के करीब 12 बज गये—महाराजा पगड़ी हाथ में लिये खड़े ही रहे। बायजाबाई भारी क्रुद्ध हुई, उन्होंने आकर पूछा, "महाराज, आज क्या स्नानाहार नहीं करेंगे?" ठीक इसी समय गायन रुक गया। महाराजा ने महम्मद खाँ को दूसरी मंजिल पर बुलाकर कहा—"आहा! ऐसी तोड़ी तो मैंने जीवन में कभी सुनी नहीं—अच्छा खाँ साहब, आज आपको इतना विलम्ब कैसे हुआ?" तब महम्मद खाँ ने महाराज का अभिवादन कर आदेश-पत्र उनके समक्ष रख दिया और कहा—"महाराज, आज तक मैंने आपका अन्न खाया है, उसके लिए धन्यवाद ग्रहण करें। शिष्य-पुत्र आदि को लेकर तीन सौ रुपयों में मेरा खर्च बिलकुल नहीं चलेगा। जहाँ भी पेट भर अन्न-जल मिलेगा, वहीं जाने का निश्चय कर आज अन्तिम गान सुनाकर व प्रणाम कर चिर जन्म के समान विदा लेने के लिए ही मैं आया हूँ।" पत्र पढ़कर महाराजा क्रोध से लाल हो गये—त्र्यम्बक को बुलाकर पूछा—"इसका अर्थ क्या है?" त्र्यम्बक ने कहा—"महाराज, आपके अन्यान्य कर्मचारियों की तुलना में महम्मद खाँ का 1200 रुपये का वेतन अत्यधिक समझकर 900 रुपये बचाने के उद्देश्य से आफिस से मैंने यह चिट्ठी भेजी है। महारानी साहिबा ने भी इस आदेश का अनुमोदन किया है।" यह सब सुनकर महाराजा ने शान्त होकर कहा—"आपने ठीक काम नहीं किया। मुझे और एक महम्मद खाँ ला सको तो इन्हें विदा दे सकते हो। द्वितीय कोई महम्मद खाँ जब मिलेगा नहीं, तो इन्हें ही अधिक वेतन देकर रखना होगा।" ग्वालियर के गायक महम्मद खाँ के अनुकरण से अपना गला तैयार करते थे, इसी-लिए खयाल में जोरदार तानबाजी का उद्भव हुआ है।

इन महम्मद खाँ के चार पुत्र थे—(1) कुतुब अली (औरसजात पुत्र), (2) मुनव्वर खाँ, (3) मुबारक अली खाँ, (4) मुराद अली खाँ। शेषोक्त तीन जन उनकी रक्षिता के गर्भ से जात थे। मुबारक अली खाँ का पुत्र है दिलादर खाँ। कुतुब अली पिता के साथ गाते थे, उनकी मृत्यु हो चुकी है। मुराद अली खाँ अत्यन्त बुद्धिमान थे—उन्नति भी पर्याप्त की थी। रजब अली और फजल अली को भी महम्मद खाँ के वंश में जन्मे माना जाता है। वे भी उत्कृष्ट खयाल-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गायक थे। फजल अली की मृत्यु हो चुकी है। उनके भागिनेय मेड़ू खाँ कुटुम्ब के गान नहीं गाते थे—हद्दू खाँ की तरह उन्होंने भी गान-रचना की। उनके गान सुन्दर हैं। आजकल लखनऊ के मुराद अली खाँ खयाल और टप्पा उत्कृष्ट ढंग से गा सकते हैं। लखनऊ के अन्यान्य ढाढ़ी वस्तुतः नष्ट हो गये हैं—आजकल ये नाचनेवालियों के पीछे-पीछे घूमते रहते हैं—स्वयं कुछ भी नहीं जानते। हद्दू खाँ, हस्सू खाँ, नत्थू खाँ एवं नत्थन पीरबक्स के पुत्र गुलाम हुसेन का गायन मैंने कई बार सुना है। ये बड़े अहंकारी हैं—हमेशा सोचते हैं कि दुनिया में उनके समान और कोई नहीं है। गुलाम इमाम और हस्सू खाँ की मृत्यु हो चुकी है। पहली बार जब मैंने हद्दू खाँ का गायन सुना था, तब मुझे लगा था कि वे बड़े बुद्धिसम्पन्न हैं। बाद में लखनऊ में जब मैंने उनका गाना दूसरी बार सुना तब उनका गला बैठा हुआ था। ये सभी ग्वालियर में रहते थे और प्रत्येक को 400-500 रुपये मासिक वेतन मिलता था।

मेरठ के सादी खाँ और मुराद खाँ उत्कृष्ट गायक थे। लखनऊ के मुराद अली खाँ के पुत्र सुलेमान महम्मद खाँ के वंशज रजब अली खाँ के शिष्य थे। सुलेमान प्राचीन नियम के तान-पलटों के सहयोग से खयाल की उत्कृष्ट ढंग से प्रस्तुति करते हैं। पहले के प्राचीन गायक किस प्रकार गायक पेश करते थे, उनका गायन सुनकर इसे समझा जा सकता है।

नूर खाँ और मुगल खाँ कालपी में रहते थे एवं होरी गायन की उनकी प्रस्तुति उत्कृष्ट थी। सुना है कि इन दोनों की मृत्यु हो चुकी है। उनके साथ होरी गान गाने वाले व्यक्ति से मैंने यह संवाद सुना है।

गुलाम रसूल के भागिनेय मौज खाँ का घर तिरवान में है। ये नेपाल-दरबार में चाकरी करते हैं—ये भी उत्कृष्ट खयाल-गायक हैं।

परसादू—बनारस के कथक। गम्मू के पुत्र सादी खाँ के शिष्य। खयाल और टप्पा के उत्कृष्ट गायक थे।

करीम खाँ—पंजाब निवासी—उत्कृष्ट खयाल-गायक।

शौकीन, सुसभ्य और उत्कृष्ट गायकों के नाम दिये जा रहे हैं—इनमें से कोई भी पेशेवर नहीं हैं—

(1) बाबूराम सहाय—इलाहाबाद में रहते हैं। ये होरी, ध्रुपद, खयाल और टप्पा उत्कृष्ट ढंग से पेश कर सकते हैं। अभिनय में भी इनकी यथेष्ट अभिज्ञता है। मीर अली साहब का कहना है—"बाबूराम इस समय के नायक हैं।"

(2) सैयद मीर अली साहब—कर्मठ उस्ताद। ये ख्वाजा वासिद पीरजादा के दोहित्र और सभी प्रकार के गान में अभिज्ञ। अयोध्या के नवाब वाजिद खाँ साहब के ये एक सभासद् थे। नवाब के जीवन-काल में ही इनकी मृत्यु हो गयी। अपने जीवन-काल में ये नवाब के दरबार में नहीं गये; इसी कारण दीवान नासिजाद्दीन ने उनका वेतन 900 रुपये कम कर दिया था। नवाब ने इन्हें लखनऊ छोड़कर जाने का आदेश तक दिया था, किन्तु जब ये चले जाने के लिए तैयार हुए तभी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नवाब ने आदेश वापस ले लिया था एवं सम्मानसूचक एक पोषाक भी भेजी थी। ये मीर अली साहब बड़े भद्र पुरुष थे—लोग उनके निवास पर जाकर गायन सुनकर आते थे। स्वयं लखनऊ के नवाब के सम्बन्ध में भी इस नियम का व्यतिक्रम नहीं होता था। मीर अली साहब ने ध्रुपद की शिक्षा सेनिया वंश के छज्जू खाँ से ग्रहण की थी—खयाल की शिक्षा पायी गुलाम रसूल से। शक्कर खाँ, मखन खाँ एवं सेनी से भी इन्होंने गायन की शिक्षा ग्रहण की थी। शौरी ने इन्होंने टप्पा-गायन सीखा था। ये बड़े विद्वान् थे और मौला महम्मद साहब से इन्होंने फारसी भाषा सीखी थी।

रामानुज एवं नारायण दास नामक दो वैरागी बुन्देलखण्ड में रहते थे। खयाल गायन में उनके समकक्ष कोई नहीं था। बाबूराम सहाय ने खयाल-गायन की शिक्षा इनसे ही ग्रहण की थी—होरी और ध्रुपद की शिक्षा ग्रहण की तानसेन के वंशज जीवन खाँ सेन से।

नवाब काशिम अली खाँ के पुत्र नवाब सुलतान अली खाँ ध्रुपद-गायन में अतिशय निपुण थे। उनके छोटे भाई नवाब हुसेन खाँ उत्कृष्ट टप्पा-गायक थे।

मीर अहम्मद साहब और आजिम साहब प्रसिद्ध 'सोझ' गायक थे। दोनों अच्छे ध्रुपद-गायक भी थे।

दिलवर अली खाँ—मेरे पिता—होरी गाते थे—वे और मीर अली साहब दोनों ही छज्जू खाँ (सेनी) के शिष्य थे।

अलीमुल्ला खाँ—ये मियाँ जान और गुलाम रसूल के शिष्य थे। मियाँ शैफुल्ला से इन्होंने 'सोझ' गान सीखा था।

टप्पा-गायक शौरी के सम्बन्ध में एक किंवदंती सुनी जाती है। टप्पा-गान का प्रचलन पहले इस देश में नहीं था। शौरी (गुलाम नबी) यह सोचकर कि पंजाबी भाषा इस प्रकार के गान के लिए अत्यन्त अनुकूल होगी, पंजाब में रहने लगे। उन्होंने कुछ दिनों में ही वहाँ की भाषा सीख ली। लखनऊ लौट कर उन्होंने प्रत्येक राग में टप्पा की रचना की। वास्तव में साधक के समान ही उन्होंने इसकी साधना की थी। इस समय सांसारिक विषयों में उनका मनोयोग बिलकुल नहीं था। एक दिन रास्ते में उनकी मुलाकात लखनऊ के नवाब से हुई और नवाब ने उन्हें अपने निवास पर आने का विशेष अनुरोध किया। शौरी ने कहा—"मैं आपका निवास नहीं जानता।" नवाब ने कहा—"मार्ग पूछते-पूछते आइए।" शौरी का गान सुनकर नवाब इतने खुश हुए कि उन्हें विशेष पुरस्कार देकर विदा किया था। घर लौटते समय शौरी ने पूरा धन गरीबों में बाँट दिया था। नवाब ने जब यह सब सुना तो उन्होंने शौरी को पूर्ववत् पुरस्कार भेज दिया। शौरी का औरसजात कोई पुत्र नहीं था। गम्मू नामक उनका एक मात्र शिष्य था। गम्मू के पुत्र का नाम है सादी खाँ। सादी खाँ बनारस के राजा उदितनारायण के पास रहते थे। सादी खाँ को बाबूराम सहाय का खलीफा कहा जाता था। कुछ दिनों पूर्व सादी खाँ का निधन हो गया। लखनऊ में, उच्च स्तर के टप्पा-गायकों में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मुग्मी खाँ और छज्जू खाँ ही माने जाते हैं किन्तु पूर्ववर्ती गायकों के साथ उनकी किसी प्रकार की तुलना नहीं की जा सकती।

ततवाद्य-वादन के प्रसिद्ध उस्ताद

(1) उमराव खाँ—उत्तम बीनकार—रामपुर के वजीर खाँ के मातामह।

(2) महम्मद अली खाँ—वजीर खाँ के भाई—उत्कृष्ट बीनकार—बनारस के राजा के पास रहते थे।

(3) मीर नासर अहमद—पहले ये सैयद थे, किन्तु वीणा सीखने के लिए इन्होंने दिल्ली के कलावंत-वंश की कन्या से विवाह किया। इन्होंने वीणा-वादन की अच्छी शिक्षा पायी थी, किन्तु अपना धर्म नहीं छोड़ा। वाजिद अली शाह ने इन्हें आमंत्रित किया था किन्तु ये गये नहीं। ये उत्तम वादक थे। मैंने इनका वादन सुना था। ये सर्वदा गरीबों को वीणा-वादन सुनाते थे।

(4) रहीम खाँ—उमराव खाँ के पुत्र—उत्कृष्ट बीनकार।

(5) हसन खाँ बीनकार और वजीर नवाब अली नक्की खाँ—इनके विषय में क्या कहा जाय—ये सितार बजाते थे, वीणा का कायदा इनके हाथ से निकलता नहीं था।

(6) प्यार खाँ और बहादुर सेन खाँ—दोनों उत्तम रबाब-वादक थे। काशिम अली और निसार अली भी उत्कृष्ट रबाब-वादक थे। बहादुर खाँ के समान सुरशृंगार-वादक आजकल और कोई नहीं है।

प्रसिद्ध सितार-वादक

(1) रहीम सेन—मसीत खाँ के पुत्र।

(2) नवाब गुलाम हुसेन खाँ—ये दिल्ली में रहते थे। नवाब के दरबार में इस वाद्य के वादन का प्रचलन अर्से से था। दिल्ली के नवाब के निवास पर मैंने उनका वादन कई बार सुना है। बहुत अच्छा बजाते थे।

(3) गुलाम रजा—गुलाम रजा का सितार-वादन प्रसिद्ध है। संगीतशास्त्र का ज्ञान रखने वाले लोगों को ये बहुत पसन्द करते थे। वादन का इनका कोई निर्धारित नियम नहीं था। वाद्य-वादन की गति कुछ-कुछ ठुमरी के समान थी। इनका सितार-वादन सुनने के लिए लोग पागल हो उठते थे, किन्तु इनका 'ठोक', 'झाला' ठीक होता नहीं था। बड़े-बड़े उस्ताद इस ढंग से नहीं बजाते थे। मर्मज्ञ श्रोता भी इस प्रकार का वादन पसन्द नहीं करते थे। सुना जाता है कि लखनऊ के रईस-समाज को खुश करने के लिए ही इन्होंने इस प्रकार की वादन-पद्धति का आविष्कार किया था।

(4) गुलाम महम्मद—निवास बान्दा—उत्तम सितार-वादक। इनके वादन में जिस प्रकार के 'ठोक' का व्यवहार होता था, उस प्रकार का एक उमराव खाँ को छोड़कर मैंने अन्य किसी से सुना नहीं। गुलाम वीणा और रबाब भी सितार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से खराब नहीं बजाते थे। हम दोनों ने एक ही गुरु से चित्रांकन-विद्या सीखी थी। गुलाम के पुत्र सज्जाद हुसेन भी अच्छे वादक हैं। कुछ दिन पूर्व ही बलरामपुर में गुलाम की मृत्यु हुई। इनकी मृत्यु के बाद सज्जाद हुसेन (सज्जाद महम्मद) ने कलकत्ता में राजा सुरेन्द्र मोहन ठाकुर की चाकरी करना शुरू किया था।[1]

(5) बाबू ईश्वरीप्रसाद—बाबूराम सहाय के पुत्र। उत्तम सितार-वादक—वार्धक्य में प्रसिद्धि पायी थी।

(6) राज पै—प्यार खाँ, जाफर खाँ के शिष्य रूप में परिचित। ये दो मिजराबों से सितार बजाते थे। इनके द्वारा प्रस्तुत राग मैं ठीक समझ नहीं सका।

(7) बरकत उर्फ सन बहा—प्यार खाँ के शिष्य। फरुक्काबाद में रहते थे—अच्छे वादक थे।

(8) नवाब इशमत जंग—प्यार खाँ के शिष्य—कम उम्र में मृत्यु हो गयी।

(9) नवाब अल्ली नक्की खाँ—वाजिद अली शाह के दीवान—हैदर खाँ के शिष्य। उत्कृष्ट गायक। घसीट खाँ की भी अपेक्षा होरी अच्छी गाते थे।

(10) घसीट खाँ—हैदर खाँ के शिष्य—अद्भुत कण्ठस्वर—उत्कृष्ट सितार-वादक।

(11) कुतुब अली कुतुबुद्दौला—प्यार खाँ के शिष्य—बहुत अच्छे सितार-वादक।

(12) नबी बक्स—डेरादार अमीर जान के भाई। गुलाम महम्मद के शिष्य—वार्द्धक्य में अच्छे सितार-वादक हुए थे।

उत्तम सारंगी-वादक

(1) दिल्ली के अली बक्स। (2) लखनऊ के हुसेन बक्स। (3) साबित अली (ग्वालियर)—ये सभी उत्तम सारंगी वादक थे। (4) इब्राहीम खाँ। (5) महम्मद अल्ली खाँ—उत्कृष्ट सारंगी-वादक—बाबूराम सहाय से टप्पा की शिक्षा पायी थी। (6) हिम्मत खाँ राठ पटवारी। (7) ख्वाजाबक्स (खुर्जा)—अमीर खाँ बीनकार के शिष्य—केवल सारंगी बजाते थे। (8) बहाजुद्दीन ढाढ़ी—लखनऊ—उत्तम सारंगी-वादक। (9) गुलाम अल्ली (डोम)—रामपुर—हमारे समय के उत्कृष्ट सरोद-वादक—अब दिवंगत।

नाकाड़ा मुरसाली (चौघड़ा) वादक

(1) काशिम खाँ (आसीवान)। (2) धुवन खाँ (उन्नाव)। (3) सोभन खाँ

1. पं० भातखण्डे ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति' (चतुर्थ भाग) में यह मन्तव्य प्रकट किया है—"अधुना प्रसिद्ध इमदाद खाँ श्रीयुक्त सुरेन्द्रमोहन ठाकुर की चाकरी करते थे। सुना जाता है कि उन्होंने सज्जाद का वादन सुनकर वादन सीखा था। सज्जाद का वादन यदि वे सुन नहीं पाते तो इमदाद खाँ को आज कोई नहीं पहचानता।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(बनारस)—इनमें प्रत्येक उत्कृष्ट मुरसली वादक थे। (4) राजा रघुनाथ राव बहादुर (झाँसी)—उत्तम नाकाड़ा-वादक। (5) झझू (उन्नाव)। (6) मखदुम बक्स (लखनऊ)—उत्तम नाकाड़ा-वादक।

शहनाई इत्यादि

(1) अहमद अली (बनारस)—मधुर शहनाई-वादक, कभी-कभी सारंगी के साथ भी वादन। (2) अहम्मद खाँ ढाढ़ी—(आसीवान)। (3) घुवन खाँ (उन्नाव)—ये यूरोपीय वाद्य क्लेरियोनेट, फ्लूट, जलतरंग आदि बजाते रहे। (4) घसीट खाँ—बान्दा में रहते थे—अलगुजा (एक प्रकार की छोटी बंसी) और छोटी शहनाई बजाते थे। ये बीनकार के शिष्य थे। (5) कालू। (6) धनु ढाढ़ी (बनारस)—उत्कृष्ट सारंगी-वादक और खयाल-गायक।

प्रसिद्ध पखावजी

(1) लाला भवानीप्रसाद सिंह—अप्रतिम पखावजी। (2) कुदऊसिंह—बान्दावासी—ब्राह्मण—भवानी सिंह के शिष्य—सर्वोत्तम पखावजी—अयोध्या के नवाब ने इन्हें 'कुम्बरदास' की उपाधि दी थी—एक बार वाजिद अली शाह के महल में एक महफिल के समय कुदऊ सिंह और जोतसिंह के बीच संगीत विषय पर वाक्युद्ध छिड़ गया। विजयी को पुरस्कृत करने के लिए नवाब हाथ में एक हजार रुपये की थैली लिये बैठे थे। पुरस्कार कुदऊ सिंह ने ही प्राप्त किया। (3) ताज खाँ (डेरेदार)—अपने गुणों के बल पर गुलाम महम्मद सितारी के समान भवानी सिंह का स्थान ग्रहण किया था। जनसाधारण भी इनका यथेष्ट सम्मान करते थे। अपने पुत्र नासर खाँ को भी इन्होंने अच्छा तैयार किया था। यह पुत्र कुदऊ सिंह के समान ही हो गया था। कुदऊ सिंह के हाथ बड़े मीठे थे—अत्यन्त बलवान होने के कारण नासर खाँ के हाथ कुछ कर्कश थे। लोगों का विश्वास है कि संगीतशास्त्र के ज्ञान में ताज खाँ कुदऊ सिंह की अपेक्षा अभिज्ञतर थे।

नृत्य प्रवीण उस्ताद

(1) लालूजी। (2) प्रकाश—लखनऊ के कथक—दोनों ही अत्यन्त अभिनेता थे। (3) दुर्गा—प्रकाश की पुत्री—नृत्य में अलौकिक स्वरूप प्राप्त किया—अल्प वय में मृत्यु हो गयी। (4) मानसिंह एवं उनके भाई—उत्तम नर्तक। (5) वेणीप्रसाद। (6) परसादु (बनारस)—दोनों ही नृत्य और अभिनय में कुशल थे। (7) रामसहाय (हण्डिया)—कथकता करते थे—बहुत गुणी थे। (8) रसज्ञानी (मोहत)। (9) हुसेन बक्स। (10) कायम अली। (11) मिरजा वहीद कश्मीरी—इन सभी ने लखनऊ में भारी प्रसिद्धि प्राप्त की थी। (12) कन्हैया—उत्कृष्ट नर्तक—वाजिद अली शाह के शिष्य—अविकल उनके समान ही नाचते

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

थे। (13) गुलबदन। (14) सुखबदन (बनारस)—नृत्य और अभिनय में विशेष दक्ष। (15) अधवान (उन्नाव)—नाकारा एवं तबला अच्छा बजाते थे। (16) विलायत अली ढाढ़ी (लखनऊ)—तबला भी अच्छा बजाते थे।

उत्तम तबला-वादक

(1) बक्सू ढाढ़ी—प्रसिद्ध तबला-वादक। (2) मम्मू—उत्तम 'गत' वादक। (3) सलारी—गत और परण के उत्तम वादक। (4) मक्सू—पुराने ढंग का वादन किन्तु अच्छा वादन। उनके पुत्र भी अच्छी संगति कर सकते थे। लखनऊ में अच्छा तबला-वादन होता था। बक्सू और मक्सू की मृत्यु मेरे समय में हुई। (5) नजु—बक्सू के शिष्य—लखनऊ-निवास।

मादनुल मूसीकी ग्रंथ में प्राचीन गुणियों का इतिहास उपर्युक्त ढंग से वर्णित है। तानसेन के और आधुनिक समय के बीच योगसूत्र स्थापित करने के उद्देश्य से ही मध्ययुग के गायकों व वादकों का यह धारावाहिक विवरण। 'हिन्दुस्थानी संगीत में तानसेन का स्थान' के पाठकों को उपहारस्वरूप दिया गया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

परिशिष्ट—ख

'संगीत सुदर्शन' से उद्धृत :

रोना-गाना कौन नहीं जानता; और इस समय भी एक प्रकार की संगीत विद्या बढ़ ही रही है, किन्तु मैंने जो बात ऊपर लिखी है वह एक प्रौढ़ संगीत-परिपाटी की लिखी है, जो इस समय में आकर नष्ट हो रही है। इसी प्रौढ़ परिपाटी के अल्पकाल में ध्रुपद के सुखसेन जी, दुल्हे खाँ जी, हैदरबक्स जी; सितार के रहीम सेनजी, अमृत सेनजी; रबाब और सुरशृंगार के बहादुरसेन जी, सादिक अली खाँ जी; वीणा के रागरस खाँ जी, रसबीन खाँ जी; खयाल के महम्मद खाँ जी, हस्सू खाँ-हद्दू खाँ जी; ये लोग अन्तिम बड़े नामी उस्ताद हो गये; इन लोगों के अनन्तर प्रकृत संगीत-परिपाटी बहुत ही क्षीण हो गयी।...

प्रथम सह-संगीत विद्या हिन्दुओं के पास थी, बादशाही समय से मुसलमानों के पास जाने लगी। मियाँ तानसेनजी के अनन्तर तो मानो इस विद्या ने हिन्दुओं को त्याग ही दिया। तानसेनजी के पुत्रपौत्रादि तथा शिष्यों ने इस विद्या पर बहुत ही परिश्रम किया, खूब जान लड़ाई।

श्री हरिदास स्वामीजी ने अकबर को लंकदहन सारंग सुनाया तो वन में अग्नि लग गयी, अकबर बहुत डरे, तब स्वामीजी ने तानसेनजी को मेघराग गाने को कहा, इनके मेघराग से वर्षा हुई जिससे वह अग्नि शान्त हो गई। दीपक राग गाने से उस समय गाने वाले को इतना सन्ताप होता था कि उसका जीना कठिन हो जाता था, इसी से तानसेनजी ने दीपक राग गाना बंद कर दिया था। तानसेन वंश की संगीत-विद्या में पाण्डित्य से चिढ़कर केवल ईर्ष्या से उनके परोक्ष में बहुत लोगों ने उनकी निन्दा की और अपने महत्त्व की गाथा गाई तो उससे कुछ न बोला।

यदि मियाँ तानसेन जी दीपक राग का निरोध न करते तो भी उस समय कोई अनिष्टापत्ति की सम्भावना न थी क्योंकि जैसे इस समय में मेघादि रागों से वर्षा फल नहीं होता; वैसे दीपक राग से भी इस समय कोई फल होने की सम्भावना न थी तथापि उस काल में कुछ लोगों को दीपक राग से अनिष्ट फल होता, इससे ही इस राग का निरोध कर दिया गया, ऐसा प्रतीत होता है।

हमारे देश में प्रथम शान्त रस का बड़ा प्रस्तार था, इस कारण उस समय बड़े-बड़े भगवत्भक्त और ज्ञानी हो गये। उस समय विद्याएँ भी बड़ी शान्त थीं। काल सदा एक-सा नहीं रहता, इससे तदनन्तर वीररस का प्रभाव बढ़ा, बहुत से व्यवहारों में अभी तक वीररसानुसरण चला आता है। किन्तु विद्याओं का समय

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक-दो हजार वर्षों से प्राचीन प्रतीत नहीं होता। तदनन्तर शृंगार रस का राज्य बढ़ा। इस रस के राज्य से सभी विद्याओं की बहुत क्षति हुई। यों ही दशा प्रायः सब देशों की क्रम से होती है क्योंकि उक्त तीनों रसों का चक्र निरन्तर घूमता रहता है। जैसे अनेक प्रकार के वाद्य होने से उनकी वादन-प्रणाली अनेक प्रकार की है; गान-प्रणाली भी अनेक प्रकार की है यथा ध्रुवपद (धुरपत), खयाल, टप्पा, ठुमरी इत्यादि। इनमें से ध्रुपद की प्रणाली सबसे प्राचीन है; श्री हरिदास स्वामी, तानसेनजी, बैजू इत्यादि लोग इसी प्रणाली के आचार्य थे। इस प्रणाली के उस्ताद लोग गानकाल में प्रथम गेय राग का आलाप करते हैं, फिर उस राग की 'सरगमों' को और फिर चीजों (पदों) को गाते हैं। आलाप करना बड़ा क्लिष्ट है; आलाप को वे ही उस्ताद कर सकते हैं, जिनमें कल्पनाशक्ति होती है।

किसी छन्दोबद्ध कविता (पद) में जो किसी राग की तानों को तथा किसी ताल को नियत कर देते हैं उसे धुरपत कहते हैं, यह तानों का नियत करना सहज नहीं है, बड़े उस्ताद लोग ही उत्तम प्रकार से कर सकते हैं। यद्यपि धुरपत में कल्पनाशक्ति का काम नहीं, तथापि उसको यथार्थ रूप से याद कर यथार्थ रूप से सभा में गाना सहज नहीं। उस्ताद ने धुरपत की तानें जैसी बतायी हैं वैसी ही रहनी चाहिए, बिगड़े नहीं, यही इसका मर्म है। बिगड़ी तानों को सुधारना तो फिर बड़ी ही बुद्धि का काम है। सूरदासजी प्रभृति उत्तम कवियों के पदों में भी तानसेन वंश के उस्ताद लोगों ने राग-तानें नियत की हैं जो अभी तक गाने में आती हैं। धुरपतिये उस्ताद लोग उक्त रीति से आलाप कर 'सरगम' गा, पाँच-सात उत्तम धुरपत गाकर गाने को समाप्त कर देते हैं। धुरपत के उत्तम उस्तादों के सब रागों को मिलाकर हजारों धुरपत याद होते हैं। अन्त में इस विद्या में तानसेनवंश ने बहुत ही उत्कर्ष का सम्पादन किया। गाना श्वास के अधीन है, इस कारण जैसा ही श्वास लम्बा होगा वैसा ही गाना अच्छा होगा क्योंकि जहाँ तक एक श्वास से पहुँचना चाहिए वहाँ तक पहुँचने से पूर्व यदि श्वास टूट जाय तो तान टूट जाने से गान का आनन्द बिगड़ जाता है। इस पर भी तानसेनजी ने तथा उनके पुत्र-पौत्र ने तो धुरपतों में ऐसी तानें रखी हैं जिनके लिए बहुत ही लम्बे श्वास की अपेक्षा है। तानसेनजी के दौहित्र-वंश ने यह विशेषता की कि अपने धुरपातों में वीणा की तानों को रख दिया; इससे इनके धुरपत और भी कठिन हो गये। वस्तुगत्वा जिसको वीणा का तत्त्व ज्ञान नहीं, उसके लिए इनके धुरपत बहुत ही क्लेशप्रद हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्री वीरेन्द्रकिशोर राय चौधुरी का जन्म मैमनसिंह के गौरीपुर में 28 आषाढ 1310 बंगाब्द (15 जुलाई, 1903) को हुआ। पिता श्री ब्रजेन्द्रकिशोर राय चौधुरी अति गुणी थे और संगीत की पृष्ठपोषकता व दान-ध्यान के विषय में भारत विख्यात थे। वे देश-भर के गुणी संगीतज्ञों को बड़े सम्मान से अपने निवास पर रखते थे। इस संगीतमय परिवेश में बालक वीरेन्द्र किशोर की संगीत प्रतिभा का विकास हुआ। 1932 में उनका विवाह इन्दिरा देवी से हुआ। उनका प्रथम पुत्र बाल्यावस्था में चल बसा, दूसरी कन्या श्रीमती रानी राय एवं तृतीय पुत्र हैं श्री विनोदकिशोर राय चौधुरी। श्री वीरेन्द्रकिशोर ने पहले श्री शीतल मुखर्जी से इसराज वादन सीखा। इसके बाद उन्होंने उस्ताद इनायत खाँ एवं उस्ताद अमीर खाँ से सुरबहार की शिक्षा पायी तथा विभिन्न गुणी संगीतज्ञों से आलाप, ध्रुपद, रबाब, बीन, सरोद अदि की शिक्षा पायी। इनके अन्य गुरु थे—उस्ताद अब्दुल्ला खाँ, उस्ताद अलाउद्दीन खाँ, उस्ताद हाफिज अली खाँ, उस्ताद केरामतुल्ला खाँ, उस्ताद सगीर खाँ, उस्ताद दबीर खाँ, उस्ताद मुहम्मद अली खाँ, उस्ताद महम्मदीन खाँ, उस्ताद मामूद खाँ, उस्ताद मेहदी हुसेन खाँ, पं० हरिनायण मुखोपाध्याय। 1964 में संगीतशास्त्र, गायक एवं वादक श्री वीरेन्द्र किशोर संगीत नाटक अकादमी के 'फैलो' चुने गये। वे रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय में 1956 में अध्यापक रहे। इनका सम्पूर्ण जीवन संगीत के प्रति समर्पित रहा। विभिन्न घरानों के राग-संगीत के उनका विशद ज्ञान सभी को आश्चर्यचकित कर देता था। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि उन्होंने किसी ग्रंथ की रचना नहीं की किन्तु उनके भागिनेय श्री विमलाकान्त राय चौधुरी ने अपने ग्रंथ 'राग व्याकरण' में इसका उपयोग किया। 3 जुलाई, 1975 को इस महान् संगीत-साधक की इहलीला समाप्त हो गई।

उनके शिष्यों में अजयसिंह राय, जितेन सेनगुप्त, कृष्णा घोल, निखिल बनर्जी, जया विश्वास, सुव्रतराय चौधुरी, शिशिरकणाधर चौधुरी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। उस्ताद विलायत खाँ ने भी इनसे शिक्षा पायी।

श्री वीरेन्द्रकिशोर वृद्धावस्था में प्रायः अंधे हो गये थे, तब उन्होंने आत्म-जीवनी या कहना चाहिए स्मृतियाँ लिखवायीं। लिखी हैं श्री आशीष चट्टोपाध्याय ने। इसका प्रकाशन 'आनन्द बाजार' की वार्षिक संख्या 1380 बंगाब्द (ई० 1973) में हुआ। इसका अपना विशेष महत्त्व है अतः वह 'स्मृतियाँ' यहाँ दी जा रही हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

संगीत की तीर्थयात्रा

कुछ दार्शनिकता के साथ ही आरम्भ करता हूँ। ऐसी कोई विशेष बात नहीं, बिलकुल ही सादी-सीधी बात है। कुछ सजाकर बोलने पर जो कुछ आकर्षक लगती है, हृदयस्पर्शी बनती है, कह ही देता हूँ। जन्म ग्रहण करने के बाद मनुष्य को कई आत्मीय मिल जाते हैं, उन्हीं को लेकर उसका परिवारिक जगत् है। इनके साथ ही उसका नाड़ी का आकर्षण है, रक्त का सम्बन्ध है। क्रमशः वह बड़ा होता है और तब वह परिवार के बाहर के मनुष्यों को देखता है, उनके निकट जाता है। अपने घर की सीमाओं से निकलकर वह बाह्य जगत् में आ पहुँचता है। किन्तु केवल इन सीमाओं से बाहर आने से ही तो काम नहीं चलता, वह ऐसे व्यक्तियों की खोज करता है जो उसके समानधर्मी हैं, जो उसके साधनपथ में सहायक हैं। जिसकी ऐसे अपने कहे जाने वाले व्यक्तियों से मुलाकात नहीं हो सकी, उसके जैसा अभागा और कोई नहीं है। जिसने ऐसे पुरुष को पा लिया, उसका पूरा जीवन विधाता के आशीर्वाद से धन्य हो गया। मैं उन भाग्यवानों की श्रेणी में हूँ।

संगीत मेरे जीवन की साधना है। कितनी सार्थक यह साधना हो सकी है, उसका हिसाब करने के लिए मेरा मन नहीं मानता। मैं केवल इतना ही जानता हूँ कि संगीत की तीर्थयात्रा में जिन्हें मैंने पथप्रदर्शक सहयात्री के रूप में पाया है, उनका योगदान अपरिमेय है। जीवन के सायाह्न में आज क्लान्त समय में जब उनका स्नेहमय उज्ज्वल चेहरा स्मृतिपटल पर अंकित होता है, तो मेरे अन्तर में भी वही परम आनन्दमय वाणी गुंजरित हो उठती है—"जो देखा है, जो पाया है उसकी तुलना नहीं है।" उनकी आयु, उसकी प्रतिभा के साथ मेरा मेल नहीं था, मेल था स्वभाव का, साधना का। वे केवल मेरे संगीत-गुरु ही नहीं, वे मेरे बन्धु, प्रेरणा, आदर्श थे।

बाल्यकाल से ही मैं गायकों-वादकों को देखता आया हूँ। हमारे गौरीपुर में रायचौधुरी परिवार ने लक्ष्मी और सरस्वती दोनों का ही आशीर्वाद पाया था। पिताजी को अभिनय का शौक था, स्वयं गिरीश घोष के छात्र थे। अभिनय करते-करते उनके अन्तर में ऑर्केस्ट्रा में योगदान करने की इच्छा जाग्रत हुई। उन्होंने मुरारी गुप्त से मृदंग-वादन की शिक्षा ग्रहण करनी आरम्भ की। उस समय भारतीय संगीत समाज में पिताजी जाया करते थे। वहीं पर लालचाँद बड़ाल के साथ पिताजी की मुलाकात हुई। बाद में बड़ाल महाशय के माध्यम से ही विख्यात धमार गायक विश्वनाथ राव के साथ परिचय हुआ। पिताजी उनके साथ संगत भी करते थे। विश्वनाथ राव को मैंने अपने बाल्यकाल में देखा था। उनका गायन अद्भुत था। स्वर पर जिस प्रकार अधिकार था, उसी प्रकार सधा हुआ बुलन्द किन्तु मधुर कण्ठ था। उनका गान सुनकर मार्ग चलते लोग दौड़े चले आते थे। अपने बाल्यकाल में पिताजी के निकट रहने वाले जिन गुणियों को मैंने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

देखा है वे हैं विपिन चट्टोपाध्याय और शीतल मुखोपाध्याय। विपिनबाबू शीतलबाबू के विख्यात गायक थे। तारापद चक्रवर्ती ने उनसे शिक्षा ग्रहण की थी। विपिनबाबू ने उन्हें अपने सेक्रेटरी रूप में रखा था। शीतलबाबू विपिनबाबू के अत्यन्त आत्मीय थे। वे इसराज बजाते थे और गायन का भी कुछ अनुशीलन करते थे। शीतलबाबू ने कई गुणियों से शिक्षा पायी थी। पहले उन्होंने हाबू दत्त (जो बहुतसाज बजा से शिक्षा ग्रहण की। उसके बाद थिएटर के वादक बुद्धू—[illegible], दोनों ही बजाते थे। गौरीपुर आने के पूर्व शीतलबाबू [illegible] पितामह ललितमोहन के राजसाही स्थित आवास पर थे। पिताजी उन्हें गौरीपुर समाज में इसराज बजाने के लिए बुला ले आये। उस समय मेरी आयु 5-6 साल की थी। राजसाही में रहते हुए शीतलबाबू को अमीर खाँ से इसराज-वादन सीखने का सुयोग मिला था। पिता अब्दुल्ला खाँ से झगड़ा कर अमीर खाँ ने उस समय द्वारभांगा छोड़कर राजसाही में शरण ली थी। शीतलबाबू ने अब्दुल्ला खाँ से भी काफी कुछ अर्जित किया था। विश्वनाथ राव के कहने पर पिताजी ने शीतलबाबू को द्वारभांगा भेजा, जिसका उद्देश्य था प्रवीण उस्तादों के संग्रह से कुछ विशुद्ध स्वरलिपि संग्रह कर लाना। अब्दुल्ला खाँ को भी मैंने देखा है। उनका गायन भी सुना था। वह बात बाद में कहूँगा। शीतलबाबू के सम्बन्ध में कोई बात करना उनके साथ अन्याय होगा, क्योंकि गायन-वादन के विषय में इस प्रकार का स्वतःस्फूर्त उत्साह मैंने कम ही लोगों में देखा है। पिताजी के प्रति उनका यथार्थ प्रेमभाव था और पिताजी को भी उन पर बड़ा विश्वास था। पिताजी के अनुरोध पर ही शीतलबाबू गया के हनुमानदास से स्वरलिपि लाने हेतु गये थे।

ई० 1912 में पंचम जार्ज जब भारत आये तब कलकत्ता के उत्सव में योग देने के लिए हनुमान दास सदलबल आये थे। वे अपने साथ अपने पुत्र अनंत प्रसाद को भी ले आये। अनंत महाराज उस समय के एक उत्कृष्ट ध्रुपदीय-वादक थे। पिताजी शीतलबाबू को साथ लेकर हनुमान दास के शिष्य हो गये। अनंत प्रसाद को भी दो व्यक्तियों का साहचर्य मिला। बाद में पिता-पुत्र दोनों उस्तादों से सम्पर्क रखने और दोनों से स्वरलिपि संग्रह करने का भार पड़ा शीतलबाबू पर। शीतलबाबू के सम्बन्ध में मैंने इतनी बातें कहीं, उसका कारण यह है कि उनके पास ही मेरे गायन की प्रथम तालीम शुरू हुई। जितना कुछ मैंने सीखा, उससे भी अधिक मैंने उनसे प्रोत्साहन पाया है। वे असाधारण [illegible] व्यक्ति थे। उनमें प्राचुर्य, प्रेमभाव का जैसे उत्प्रवाह था। मुझे खींचकर [illegible] ले जाते। मुझे संगीत-प्रेमी बनाने में उनका जितना आग्रह था, पिताजी की ओर से उतनी ही आपत्ति रहती थी। फिर भी विशेष के बावजूद मन में [illegible] से ही संगीत के जिस पौधे ने जन्म लिया था, आज भी वह [illegible] छिपकर भी कभी प्रेम से, कभी अनादर से भी वह पौधा बढ़ता ही गया।

ई० 1919 में जब मैं मैट्रिक परीक्षा में बैठा, तब पिताजी को [illegible] देखा था। पिताजी के आमंत्रण पर [illegible]

CC-0. In Public Domain. Funding by MoE-IKS

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उनके पुत्र अमीर खाँ पहले से ही हमारे यहाँ आ गये थे। ललितमोहन मैत्र बहुत वृद्ध हो जाने के कारण राजसाही छोड़कर पिताजी के पास 'कोर्ट म्यूजीशियन' की नौकरी लेकर चले आये। मैंने ऊपर कहा है कि अमीर खाँ अपने पिता से झगड़ा कर राजसाही चले गये थे। अब अब्दुल्ला खाँ के हमारे निवास पर आ जाने पर बहुत दिनों के बाद पिता एवं पुत्र का पुनर्मिलन हुआ।

आहा! क्या अद्भुत वादक थे अब्दुल्ला खाँ! चेहरे पर सादगी, छोटे कद का मनुष्य, रोगग्रस्त, पिचके गालों पर भरी दाढ़ी, किन्तु वादन में क्या रस था, तान की गति कुछ श्लथ होते हुए भी क्या अनन्त वैचित्र्य था। सरोद पर इस प्रकार का विलम्बित प्रदर्शन यथार्थ में दुर्लभ है। गायन और वादन कानों के माध्यम से अन्तर में प्रवेश करता है, मर्म को स्पर्श करता है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण अब्दुल्ला खाँ से मिला। वे किसके छात्र थे, देखना होगा। स्वयं मुराद अली खाँ से वादन की शिक्षा पाई थी। वे ही मुराद अली, सेनिया घराने के उस्तादों की बात कहते समय जिनका नाम सबसे पहले आता है। मुराद अली के ही भ्रातुष्पुत्र थे हाफिज अली। जो भी हो, मैं कह रहा था कि अब्दुल्ला खाँ का सरोद-वादन सुनकर मैं मन्त्रमुग्ध हो गया। एक दृष्टि से उन्हें मेरे जीवन के पथप्रदर्शक कहना भी गलत नहीं होगा। बात को और स्पष्ट कर कहता हूँ। बाल्यकाल से ही गायन-वादन की ओर रुझान रहते हुए भी और एक विषय की ओर मैं आकृष्ट हुआ था। वह था साहित्य। विशेषतया रवीन्द्रनाथ के साहित्य के नशे से मैं वस्तुतः मत्त ही था। मैंने स्वयं एक-दो प्रबंध भी लिखे थे। उनके साहित्य का मूल्य कितना था, यह मैं नहीं कह सकता किन्तु एक किशोर मन के दुर्दम साहित्य-प्रेम की दृष्टि से सम्भवतः उसका कुछ मूल्य था। संगीत और साहित्य इन सौतों के खिचाव के कारण मैं स्वयं कुछ ठीक नहीं कर पा रहा था। अर्थात् लक्ष्य की दृष्टि से किसका चयन किया जाय, इसे लेकर अन्तर में खींचतान चल रही थी। अब्दुल्ला खाँ के वादन ने मुझे इस द्वन्द्व से मुक्ति दिला दी। मैंने संगीत के प्रति पूर्ण रूप से अपने को समर्पित कर दिया। अब्दुल्ला खाँ का वादन सुनकर ही मैं शान्त नहीं हुआ; यथासाध्य स्वरलिपि भी लिख रखता था। स्वरलिपि लिखने का नियम कुछ अनुशीलन से और कुछ शीतलबाबू की सहायता से मैंने आयत किया। केवल अब्दुल्ला खाँ के प्रति ही नहीं बल्कि उनके पुत्र अमीर खाँ के प्रति भी ऋण कम नहीं है। अमीर खाँ से पिताजी, शीतलबाबू और मैंने तीनों ने काफी-कुछ तालीम ली। अमीर खाँ के वादन का ढंग ठीक उनके पिता के समान नहीं था, वरन् उनका वादन मुराद अली के वादन से अधिक मिलता था। मुराद अली अमीर खाँ से अपने नाती के समान स्नेह करते थे। उन्होंने स्वयं उसे गत-तोड़ा का वादन सिखाया था। अमीर खाँ शिशु के समान निष्पाप और निरभिमानी थे। धन के प्रति वे पूर्णतया उदासीन थे। मानव मात्र से, विशेषतया गायन-वादन जगत् के लोगों के प्रति उनका घनिष्ठ प्रेम था। अपनी ओर से आग्रह कर सभी से मेलजोल बढ़ाते थे। सामान्य अफीम लेने की उन्हें आदत थी। किन्तु दरियादिल व्यक्ति थे। मृत्यु के पूर्व उन्होंने काफी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कष्ट उठाये। उन्हें श्वास रोग हो गया था। अमीर खाँ की पत्नी भी सुरसिक थीं; अद्‌भुत गायन करती थीं। वे विख्यात टप्पा गायक छोटे जुनी खाँ की पुत्री थीं। अतः वे गायन तो करेंगी ही, इसमें आश्चर्य की क्या बात है किंतु घर के बाहर नहीं गाती थीं, वे अन्तःपुर में महिलाओं की मण्डली में गाती थीं। किशोरावस्था से ही मेरे कुछ दिन गौरीपुर में और कुछ दिन सुकिया स्ट्रीट स्थित निवास पर बीते। जहाँ भी रहूँ, वातावरण में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता था। गायन-वादन करने वालों के बीच ही दिन कटे हैं—सोने के पिंजरे में नहीं। किन्तु स्मृति में जो कुछ है वह कुछ कम नहीं है। आज निभृत अवसर में क्लान्त देह से, अवसन्न मन से इतना सब लेकर ही सामान्य सक्रिय हूँ। तब भी हताशा, यन्त्रणा भूल कर भी जैसे मौन हो जाता हूँ। ढलती धूप की छाँव में भी सुवास है।

बोलते-बोलते इमदाद खाँ की याद आ गई। वे हमारे निवास पर रहते थे। वे कभी सितार बजाते, कभी सुरबहार, तो कभी इसराज। एक दिन की बात है—संध्या हो गयी थी, अचानक एक तबलची को लेकर खाँ साहब हमारे निवास पर आये; उनके हाथ में सुरबहार था। वे यमन बजाने लगे—मींड कितनी सुरीली हो सकती है इसे उन्होंने समझा दिया—इतनी विशुद्ध गमक और झाला की तो तुलना ही नहीं। झाला शुरू करने के पूर्व उन्होंने मुझे सम्बोधित करते हुए कहा, "बच्चे, अभी तूफान आता है।" वास्तव में यह स्वरों की जैसे आँधी थी। मनुष्य के रूप में इमदाद खाँ बड़ी सरल प्रकृति के थे। हाथ जैसा मीठा था वैसी ही बोली भी मीठी थी। हर बार बड़ी नम्रता से बात करते थे। इनायत खाँ ने अपने पिता के प्रायः सभी गुण पाये थे। इनायत खाँ ने हमारी 'एस्टेट' के 'कोर्ट म्यूजीशियन' के रूप में काफी समय बिताया था। इमदाद खाँ की मृत्यु के बाद वे इन्दौर छोड़कर कलकत्ता आ गये। मैंने जब उन्हें देखा तब मैं 'थर्ड इयर' में पढ़ रहा था—वर्ष था 1923। वे हमारे सुकिया स्ट्रीट स्थित निवास पर आये थे। मैंने देखा कि सिर पर सुविन्यस्त कंधे तक झूलते बाल, साफ-सुथरी चुस्त पोशाक—बड़े शौकीन व्यक्ति थे वे। बातचीत करने में और मिजाज से बड़े रसिक थे। उन्होंने मेरे पिताजी से कहा—"मैं अपने पिता की छाया के अलावा और कुछ नहीं, वे जो बजाते थे, मैं वही बजाता हूँ।" मेरे पिताजी के व्यवहार से इनायत खाँ बड़े खुश हुए थे—थोड़े दिनों में ही दोनों अंतरंग बन्धु हो गये। पिताजी को वे 'भैया' कहकर पुकारते थे। इनायत खाँ से मैंने प्रथम बार मसीतखानी गत की तालीम पायी। उनके वादन की रीति हूबहू उनके पिता के वादन के समान थी। मैं स्वरलिपि लिख रखता था, उस दुर्लभ स्वरलिपि का काफी कुछ अंश मेरे भागिनेय विमलाकान्त राय चौधुरी के पास अब भी है। खाँ साहब प्रति दिन दो घंटे तक बजाते थे। प्रायः आठ वर्षों तक मैं उनके निकट रहा—कभी मैंने उन्हें क्लान्त होते नहीं देखा। गौरीपुर में कई व्यक्ति उनके शिष्य हुए, जैसे ज्योतिषचन्द्र चौधुरी, नीरदाकान्त लाहिड़ी चौधुरी, विपिनचन्द्र दास, विमलाकान्त राय चौधुरी, जितेन्द्रमोहन सेन।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सिखाने के मामले में ऐसे अकृपण उस्ताद भाग्य से ही मिलते हैं। दिल खोलकर सिखाते थे। इतना अवारित अजस्र दान अंजलि फैलाकर लेने की शक्ति भी तो हममें नहीं थी। और वादन का माधुर्य—उसका क्या कहें! खानदानी बाइजियों को वादन सुनते-सुनते उनके पाँवों में पड़ते मैंने देखा है। चुलबुली आग्रावाली तो खाँ साहब के बोलने के साथ होश गँवा बैठती। खाँ साहब स्वयं भी बड़े भावुक थे। उन्हें यदि यह पता चल जाता कि उनके वादन से किसी को आनन्द की अनुभूति हुई, तो वे अभिभूत हो जाते थे।

एक बार देशबन्धु चित्तरंजन दास कलकत्ता स्थिति हमारे निवास पर खाँ साहब का वादन सुनकर गये थे। पिताजी उन्हें ले आये थे। खाँ साहब ने भैरवी बजायी थी। इसे सुनकर देशबंधु मुग्ध हो गये थे। किन्तु मुझे याद है कि वादन सुनने के बाद उन्होंने पिताजी के सामने और एक सितारवादक का नाम लिया था—ढाका के रामदास। उन्होंने कहा था—"उनके वादन से भी मैं बहुत प्रभावित हुआ था।" जाते समय उन्होंने खाँ साहब से कहा, "तुमने धोती-जब्बा पहनना कहाँ से सीखा? अचकन, शेरवानी, धोती जो भी पहनो, विलायती वस्त्र नहीं पहनो।"

इनायत खाँ साहब से जो स्नेह मैंने पाया है, उसका स्मरण करते ही मन भर आता है। केवल छात्र-शिक्षक का सम्बन्ध नहीं था, वे मेरे साथ समवयसी बन्धु के समान आचरण करते थे। कितने ही समारोहों में मुझे साथ ले जाते यहाँ तक कि एक जलसे की छवि आज भी मेरी आँखों के सामने खेलती रहती है। यह महफिल उत्तर कलकत्ता के अम्बिका गुह के निवास पर आयोजित हुई थी। अनुष्ठान का उद्देश्य प्रवीण सरोदिया केरामतुल्ला का संवर्धन-सम्मान करना था। बड़े-बड़े उस्ताद वहाँ एकत्र हुए थे—अमीर खाँ, हाफिज अली खाँ आदि सभी। उस्ताद इनायत खाँ के साथ मैं गया था। वादन शुरू हुआ। अमीर खाँ ने यमन कल्याण बजाया—शुद्ध सुरीला वादन था वह। इसके बाद इनायत खाँ उठे—पहले सुर-बहार पर उन्होंने यमन बजाया, बाद में सितार लिया तथा बजाया पीलू, खमाज तथा और दो छोटे राग। निरन्तर काफी समय तक वादन चलता रहा। आवास स्वर-सज्जा से भर गया था—स्वरों के अनुरणन् से वह गुंजरित था—अब उठे हाफिज अली खाँ। उन्होंने दरबारी कान्हणा और पहाड़ी-झिंझौटी सुनाये—बिलकुल असली चीज; वजीर खाँ की दी हुई चीज—मिश्रण का नाम नहीं। सभी का वादन समाप्त हुआ—अब सभी वृद्ध केरामतुल्ला से वादन सुनने की इच्छा प्रकट करने लगे। वृद्ध केरामतुल्ला कुछ कुंठित हुए, मुचकी हँसी हँसकर टालने की कोशिश करने लगे—"मैं बूढ़ा हो गया हूँ—मेरे हाथ में यह 'सुर' कहाँ है।" अर्थात् तरुण कलाकारों के सशक्त वादन-कार्यक्रम के बाद बैठने में वृद्ध केरामतुल्ला अपने को निरापद-आश्वस्त अनुभव नहीं कर रहे थे। किन्तु तरुण कलाकार उन्हें कब छोड़ने वाले थे। चाचा का वादन सुने बिना वे जाने वाले नहीं थे। अन्ततः बाध्य होकर केरामतुल्ला को बजाना पड़ा। उन्होंने अप्रचलित राग—कालिंगड़ा-आज्ञ चुना। आलाप के बाद विलम्बित एवं द्रुगुन की गत बजायी। अब स्थिति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ऐसी हुई कि वहाँ जो सभी तरुण कलाकार थे उनमें कोई भी यह ठीक नहीं कर पा रहा था कि राग क्या है। सभी एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। मात्र अमीर खाँ राग पकड़ सके, किन्तु राग का नाम जानना बड़ी बात नहीं, उन्होंने राग का जैसा 'ट्रीटमेंट' किया, उसकी तुलना नहीं हो सकती। महफिल समाप्त हो जाने के बाद घर लौटते समय मार्ग में मैंने इनायत खाँ साहब से पूछा—"कैसा लगा, बताइए।" उन्होंने कहा, "बूढ़े चाचा हमारे से बहुत-बहुत हदीस रखते हैं।"

इनायत खाँ साहब के प्रिय तबलची थे खलीफा आबिद हुसेन और मजीद खाँ। विशेष रूप से आबिद हुसेन का वे बड़ा सम्मान करते थे। अन्य गुणी तबला-वादकों को भी खाँ साहब के साथ संगत करते देखा है, जैसे काशी के मौलवी राम। ये मुक्तागाछा के राजा जगतकिशोर के महल के उस्ताद थे।

तबला-वादकों की बात करते-करते एक मजेदार घटना याद आ गयी। एक बार कलकत्ता के 'आल बंगाल म्यूजिक कान्फ्रेंस' में वीरू मिश्र खाँ साहब के साथ तबला-संगत करने बैठे थे। बजाते-बजाते उन्होंने उस्ताद इनायत खाँ की मात्रा-भूल पकड़ ली। खाँ साहब ने इसे स्वीकार नहीं किया; तब उपस्थित गुणीजन को निर्णय का भार सौंपा गया। खाँ साहब ने वही तान पुनः बजाकर दिखायी, पता चला कि भूल मिश्रजी की ही थी।

खाँ साहब के जीवन के अंतिम दिन सुखमय नहीं थे। पारिवारिक कारणों से उनके मन में शान्ति नहीं थी। मन सुखी नहीं था, स्वस्थ नहीं था, अतः वे अपने शरीर के साथ भारी अत्याचार करते थे। इसके फलस्वरूप 'लिवर एब्सस' हो गया। मृत्यु भी इसी कारण हुई। वादन के लिए इलाहाबाद गये थे, वहीं पर यह रोग बढ़ गया। उस समय विलायत बालक ही था। विलायत का जन्म हमारे गौरीपुर में ही हुआ। पिता के पास बैठकर बालक विलायत के 'सा-रे-ग-म-प-ध-नि-सां' रियाज करने की छवि आज भी मेरी आँखों के सामने खेलती है। सम्भवतः इनायत खाँ साहब को अपनी मृत्यु का आभास मिल गया था। अंतिम दिनों में वे मेरे पिताजी से कहते थे—"मैं अब बचूँगा नहीं, विलायत को रख जाता हूँ देखना।" पिताजी ने खाँ साहब के शेष अनुनय की उपेक्षा नहीं की। उस्ताद इनायत खाँ की मृत्यु के बाद उनकी पत्नी के लिए गौरीपुर स्टेट की तरफ से महावारी की व्यवस्था पिताजी ने करा दी थी। गौरीपुर के सम्बन्ध में खाँ साहब का प्रेम अकृत्रिम एवं अकपट था। वे जहाँ भी जाते, वहाँ बड़े गर्व से अपना परिचय 'गौरीपुर के उस्ताद' के रूप में देते थे।

कितने बड़े शिल्पी का साहचर्य मैंने पाया है, उसका स्मरण कर मन आनन्द से भर आता है। केवल महत् शिल्पी ही नहीं, मनुष्य रूप में भी वे महत् थे। ऐसे ही एक सर्वगुणसम्पन्न मनुष्य थे उस्ताद हाफिज अली खाँ। संगीत का जो विराट्, व्याप्त रूप है, उसकी आत्मा कितनी गभीर है, रहस्यमय है, उसे पहचानना मैंने हाफिज अली से ही सीखा है। वे बार-बार कहते थे कि राग का निश्चित ढाँचे के अन्तर्गत अत्यन्त सूक्ष्म, जटिल विस्तार संगीत के गाणितिक विचार से विशुद्ध हो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सकता है, किन्तु इससे रस-निष्पत्ति नहीं होती। वे बार-बार स्मरण दिलाते थे कि राग मूलतः रसाश्रित है। वे कहते थे कि संगीत के ध्रुपदत्व के सम्बन्ध में उपलब्धि हो जाने पर आलंकारिक चातुर्य निरर्थक हो जाता है। जिनके अन्तर में यह अनुभूति हो चुकी है, वे संक्षिप्त आलाप में भी राग की प्राण-प्रतिष्ठा कर सकते हैं।

हाफिज अली के ही गुरुभ्राता उस्ताद अमीर खाँ उन्हें (हाफिज अली को) कलकत्ता ले आये। कलकत्ता में हाफिज अली खाँ कुछ दिनों तक गायिका आगरा-वाली मलका के अतिथि रूप में रहे। बाद में वे बौबाजार की बड़ाल-बाड़ी पर आ गये। हमारे गौरीपुर भी वे आये थे। मैंने पहली बार जब हाफिज अली को देखा तब वे युवक थे। असामान्य रूपवान थे। उन्हें देख मानव मात्र की आँखें चौंधिया जातीं। जैसा शरीर का रंग था, वैसा ही मुँह व आँखों का गठन था। वे शौकीन मिजाज के व्यक्ति थे। अच्छे-अच्छे इतर का प्रयोग पसन्द करते थे। एक ओर ईश्वर में भारी विश्वास था, दूसरी ओर साधु-फकीरों को भी खूब मानते थे। रागों को वे ईश्वर के आदेशस्वरूप मानते थे।

आकर्षक चेहरा, मधुर मिजाज एवं मधुर वादन—ऐसा अपूर्व समन्वय हाफिज अली के अलावा अन्य किसी में है, इसमें सन्देह है। प्रथम दिन ही वादन सुनकर मैं बिलकुल मंत्रमुग्ध हो गया। आहा! क्या 'सुर'! उन्होंने यह बता दिया कि तानसेन वंश की विशुद्ध चीज यहाँ-वहाँ नहीं मिलती। हाफिज अली सुरशृंगार के ढंग से सरोद पर आलाप करते थे। मैं मंत्रमुग्ध हो जाता। मुझे तालीम देते समय राग के केवल रसरूप के सम्बन्ध मनोयोगी बनाने की चेष्टा करते थे। द्रुत अंग या गतकारी के रियाज पर वे अधिक जोर नहीं देते थे। कण्ठ्य-संगीत में भी हाफिज अली कम दक्ष नहीं थे। वे ध्रुपद गाते थे; गान सुनने पर ऐसा नहीं लगता कि वे वादक हैं। एक बार उनके गायन से मुग्ध प्राक्तन संचारमंत्री डॉ० केसकर ने कहा था—"आप रेडियो पर गायन पेश क्यों नहीं करते?" उस्ताद हाफिज अली ने उत्तर में कहा था—"दम अधिक समय टिकता नहीं।"

हाफिज अली के प्रिय तबलची थे मजीद खाँ के सफल छात्र आजिम खाँ। आजिम खाँ के समान संगतिया भी दुर्लभ है। उस्ताद हाफिज अली के साथ उनकी संगत आज भी भुलायी नहीं जा सकती। हाफिज अली खाँ जिस प्रकार मेरे शिक्षा गुरु थे, मेरे बन्धु भी थे। मुझे 'खोका महाराज' कहकर सम्बोधित करते थे। आदर का वह सम्बोधन आज भी कानों में गूंजता है। मेरे प्रति उनका कितना स्नेह था, उसका विवरण वे स्वयं ही कर गये हैं। एक बार सदारंग संगीत सम्मेलन में कई बातें बताते हुए उन्होंने कहा, "सेनिया घराने की जो शिक्षा 'खोका बाबू' (वीरेंद्र किशोर राय चौधुरी) के पास है वह एक साथ किसी के पास नहीं मिलेगी। मैंने स्वयं उन्हें तालीम दी है। बाद में मुहम्मद अली के पास उन्होने पूर्ण रूप से शिक्षा पायी है। मुहम्मद अली की मृत्यु के बाद वजीर खाँ के कनिष्ठ पुत्र सगीर भाई से 'खोका बाबू' ने आलाप और ध्रुपद सीखा है। बीन-वादन उन्होंने दबीर खाँ से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सीखा है। इसके अलावा उस्ताद केरामतुल्ला और अलाउद्दीन से भी सेनिया घराने की तालीम पायी है। इस दृष्टि से 'खोका महाराज' के प्रथम गुरु के हिसाब से मैं गर्व अनुभव करता हूँ।"

हाफिज अली खाँ के साथ एक बार बजाने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। 1953 या 1954 में लखनऊ में पं० भातखण्डे की जन्मवार्षिकी के उपलक्ष्य में एक संगीत सम्मेलन आयोजित किया गया। कलाकार के रूप में मैं भी उस सम्मेलन में आमंत्रित था। किंतु सम्मेलन का विशेष आकर्षण था हाफिज अली खाँ का वादन और डागर-बन्धु का गायन। उस सम्मेलन में संगीतज्ञ रातनजंकर जी भी उपस्थित थे। मैंने हाफिज अली खाँ से पूछा, "क्या बजायेंगे ?" चारों ओर देखकर हँसते हुए उन्होंने कहा, "आप मेरे छात्र हैं, आप जब आये हैं तो गुरुजी की दी हुई चीज ही बजाऊँगा। यह है आपके लिए। अन्य लोगों को मैं अपने बाप के घराने की गतकारी सुनाऊँगा।" कुछ क्षण चुप रहकर सम्मेलन के श्रोताओं को देखकर कहा, "लेडीज (महिलाओं) के लिए ठुमरी अंग की चीज तैयार की है; साहब लोगों को वंचित नहीं करूँगा, उन्हें ग्वालियर बैण्ड का वादन सुना दूंगा।"

यथार्थ में उन्होंने वैसा ही किया। मेरे लिए उन्होंने दरबारी कान्हड़ा में आलाप बजाया था, गत अडाणा में बजायी। इसके पश्चात् जैसा कि उन्होंने कहा था, खमाज ठुमरी बजायी। मिलिटरी बैण्ड के वादन के साथ उन्होंने अपना वादन समाप्त किया।

और एक अवसर पर मैंने खाँ साहब के साथ बजाया है। इस समारोह का आयोजन संगीत नाटक अकादमी की सेक्रेटरी श्रीमती निर्मला जोशी ने किया था। मैंने मुहम्मद अली से प्राप्त तालीम का राग यमन कल्याण बजाया और खाँ साहब ने परज वसंत बजाया। उनका वादन सुनकर लोग मंत्रमुग्ध हो गये थे। हाफिज अली खाँ के मेरे प्रति प्रेम के कितने दृष्टांत दिये जाएं। कलकत्ता की सुरेश संगीत संसद की ओर से जब उनका सम्मान किया गया, तब मैं मंच पर था। उन्होंने एक ओर पुत्र अमजद और दूसरी ओर मुझे लेकर फोटो खिचवायी थी। जब भी मुझे कहीं देखते तो बड़े आह्लादित होते थे। मैं दिल्ली में जब उनके निवास पर गया तो 'खोका महाराज आ गये हैं' कहते-कहते शिशु के समान आनन्द प्रकट करने लगे। उनकी पत्नी अपने हाथ का खाना खिलाने के लिए कितनी व्यग्र हो रही थीं। दुर्भाग्य मेरा कि विविध झमेलों के कारण वह भोजन ग्रहण करना मेरे लिए सम्भव नहीं हो सका। आज हाफिज अली खाँ हमारे बीच नहीं हैं, किन्तु अमजद के पास जाने पर वही स्नेहस्पर्श अनुभव करता हूँ। अपने पिता के समान अमजद का भी मेरे प्रति प्रेम है, और उसी प्रकार श्रद्धा भाव भी रखता है। हाफिज अली को मैंने उनकी युवावस्था में देखा था। और मुहम्मद अली को जब मैंने देखा तब उन्होंने 88वें वर्ष में प्रवेश किया था। मुहम्मद अली तानसेन वंशज थे— उस्ताद वजीर खाँ के आत्मीय, किन्तु उस आत्मीय के साथ मनोमालिन्य हो गया। यह एक विचित्र कहानी है, उसका पूर्ण वर्णन करने पर एक महाभारत बन जायगा, किन्तु जितना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मुझे याद है, उतना ही बोल सकता हूँ।

काशी में मुहम्मद अली का पैतृक निवास था। कुछ समय तक वे अपने पिता के साथ गया में भी थे। पिता के निधन के बाद वे बिहार के गिधोर अंचल में रहने लगे। इस गिधोर से ही रामपुर के नवाब उन्हें ले गये। उन्होंने प्राय: दस वर्ष रामपुर में बिताये। उनके रामपुर जाने के पीछे भी एक इतिहास है। वह इतिहास बड़ा मजेदार है। रामपुर के नवाब हामिद अली के काका हैदर अली एक उच्च-स्तरीय उस्ताद थे। वे आलाप, ध्रुपद, ठुमरी गाते थे और सुरश्रृंगार एवं बीन बजाते थे। हैदर अली को शिक्षा दी थी वजीर खाँ के पिता अमीर खाँ ने और उनके ही अर्थात् वजीर खाँ के मातामह वंश के बहादुर हुसेन ने। हैदर अली ने प्राय: तीन लाख रुपये खर्च कर बीस वर्ष तक शिक्षा पायी थी।

अमीर खाँ की जब मृत्यु हुई तब वजीर खाँ नाबालिग थे। मृत्यु के पूर्व वृद्ध ने अपने प्रिय छात्र हैदर का हाथ पकड़कर अनुनय विनय की थी कि "मेरे नाबालिग पुत्र की उपेक्षा नहीं की जाय।" हैदर अली ने प्रतिश्रुति दी थी। केवल अन्न-वस्त्र से ही पालन नहीं किया, बल्कि पिता के सांगीतिक उत्तराधिकार से गुरु पुत्र को कभी वंचित नहीं किया। अमीर खाँ और बहादुर हुसेन से हैदर अली ने जो कुछ सीखा था, वह सब वजीर ख़ाँ को दे दिया।

वयप्राप्त वजीर खाँ कलकत्ता चले गये। कलकत्ता के रसिकों ने उनका बड़े आदर से स्वागत किया। किन्तु वजीर खाँ को कलकत्ता छोड़कर पुन: रामपुर आना पड़ा। रामपुर के नवाब हामिद अली ने वयस्क होने पर राज्य भार सम्हाल लिया और काका हैदर के परामर्श से संगीत-दरबार की स्थापना की। उसी के प्रमुख मणि स्वरूप वज़ीर खाँ को वे बुला ले आये। हामिद अली ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया।

हैदर अली का वजीर खाँ के प्रति बड़ा स्नेह था। एक दिन उस स्नेह-सूत्र में दरार, फाट पड़ गयी। हैदर अली ने जो उन्हें तालीम दी थी, इस बात को वजीर खाँ पूर्णतया स्वीकार नहीं करते थे। वे (वजीर खाँ) कहते थे—"मैंने नाबालिग अवस्था में ही अपने पिता से संपूर्ण शिक्षा पायी है।" यह बात सुनकर हैदर अली को बड़ा क्रोध आया एवं उस समय जिद कर अपने लड़के छम्मन साहब को गायन-वादन की शिक्षा देने लगे। प्राय: बारह वर्षों तक सिखाने के बाद हैदर अली ने तानसेन घराने के किसी भी गुणी से प्रत्यक्ष तालीम लेने का उपदेश छम्मन साहब को दिया। पिता के कथनानुसार छम्मन साहब तब मुहम्मद अली को रामपुर बुला ले गये। मुहम्मद अली का स्थान था नवाब का दरबार। वहीं पर वजीर खाँ के साथ उनकी कषाकषी-खींचातानी हुई। और आश्चर्यजनक बात यह है कि कारण वही था।

वजीर खाँ नवाब के खास महल में बीन बजा रहे थे। नवाब ने मुहम्मद अली को बुलाया। उद्देश्य था गुरु का वादन सुनाना। वजीर खाँ मुलतानी बजा रहे थे। वादन समाप्त होने पर नवाब के प्रश्न के उत्तर में मुहम्मद अली ने कहा, "मेरे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भाई हैदर ने इन्हें सिखाया है। इनके समान अन्य कोई बीनकार पूरे भारत में नहीं है।"

गुरु के सम्बन्ध में नवाब ने अधिक विस्तृत रूप में जानने की इच्छा प्रकट की। मुहम्मद अली से पूछा, "इनकी विद्या की गभीरता कितनी है?"

मुहम्मद अली ने स्पष्ट उत्तर दिया, "एक राग के सात दिन सात रंग सुनने पर विद्या पर विचार किया जाता है। एक दिन में कुछ कहा नहीं जा सकता।"

वजीर खाँ शुरू से कुछ नाराज हो गये थे। अब इस बात पर तो वे धीरज खो बैठे। वे उबल पड़े, "आप बेकार ही हैदर साहब का नाम क्यों ले रहे हैं। मैंने क्या अपने बाप से शिक्षा नहीं पायी?"

उत्तर में मुहम्मद अली ने कहा, "तुम्हारे पिता की मृत्यु के समय तुम बहुत छोटे थे। हैदर अली ने ही तुम्हें सम्पूर्ण रूप से बड़ा किया है।"

यह वाद-विवाद जब चल रहा था, तब छम्मन साहब भी वहाँ हाजिर थे। विवाद अधिक बढ़ जाने के पूर्व ही वे मुहम्मद अली को खींचकर अपने निवास पर ले गये। उसके पश्चात् वे छम्मन साहब के पास ही रहते थे। आयु का अन्तर रहते हुए भी दोनों में प्रगाढ़ बन्धुत्व था। दोनों एक साथ ही सुरापान करते थे।

छम्मन साहब की मृत्यु केवल 44 वर्ष की आयु में हो गयी। उनका एकमात्र पुत्र विलायत में इस संसार से उठ गया। इस शोक के कारण वे टूट गये थे। छम्मन साहब की अकाल मृत्यु के बाद मुहम्मद अली लखनऊ के नवाब के पास चले गये, किंतु नवाब की दो बीवियों की खींचातानी से विरक्त होकर अंतत: लखनऊ छोड़कर वे गिधोर लौटने हेतु बाध्य हुए। इसके कुछ समय बाद ही हमें खबर मिली कि वृद्ध होते हुए भी वे अभी सशक्त, समर्थ हैं, एवं आमंत्रित किये जाने पर सम्भवत: आ भी सकते हैं। खबर पाकर हमने अपनी एस्टेट के विश्वस्त कर्मचारी काली राय को गिधोर भेजा। काली राय के साथ वे गौरीपुर आ गये।

मैं उस समय सपरिवार शिलांग में था। उनके आने की खबर पाकर मैं गौरीपुर लौट आया। हमारे अतिथिगृह में उनके ठहरने की व्यवस्था की गयी थी। एस्टेट के लोगों के अलावा अमीर खाँ और इनायत खाँ उनकी सेवा में थे। मैंने पहली बार उन्हें इसी आवास के बागान में देखा। उस समय प्राय: संध्या हो गयी थी। वृद्ध मुहम्मद अली ने कुछ इधर-उधर की बातें करते हुए कहा, "मुझे मछली पकड़ने का बड़ा शौक है।" यथार्थ ही हमारे बागान-निवास के पुकुर में वे जाल फैलाकर दो-तीन घण्टों तक बैठे रहते थे।

मुहम्मद अली अपने शरीर का बड़ा ध्यान रखते थे। हमें बताते कि बाल्य-काल में उनके पिता एक हब्शी पहलवान रखकर व्यायाम करते थे। मैंने देखा है कि 88 वर्ष की आयु में भी वे प्रतिदिन दो घण्टा पैदल घूमते थे। मछली पकड़ने के बाद घूमने निकलते। स्वयं बाजार जाते और मनपसंद खाद्य-सामग्री खरीदते।

गायन-वादन के अलावा खाना पकाने में उनका बड़ा उत्साह था। अच्छा खाना बनाते भी थे। हमारा खास बाबर्ची इस्माइल कहता था कि उस्ताद के सामने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसको हार माननी पड़ती। टिकारी में रहते समय खाँ साहब को खाना पकाने का चस्का लगा था। टिकारी के महाराजा मुहम्मद अली के पिता बासत खाँ को मेटियाबुर्ज के वाजिद अली शाह के दरबार से अपने यहाँ ले आये। गया में निष्कर जागीर उन्हें दी थी, जिसकी वार्षिक आय उन दिनों प्रायः बीस हजार रुपये थी। महाराजा लोगों को खिलाने-पिलाने में आनंद अनुभव करते थे। इस कारण रोज ही पंचव्यंजन बनते थे। बासत खाँ भी महाराजा के साथ रहते-रहते रंधनविलासी हो गये। पिता से यह अभ्यास पुत्र में भी आ गया।

मुहम्मद अली का और एक शौक था, महुआ-पान। गौरीपुर में महुआ पान मिलता नहीं था अतः ताल की ताड़ी लेते थे। यह न मिलने पर बड़े अस्थिर हो जाते। सिखाने के पूर्व ताड़ी चाहिए ही। वेशभूषा के बारे में कोई विशेष शौक नहीं था। एक लुंगी और एक गमछे से ही दिन काट देते थे। हमें संध्या के समय सिखाते—बिहाग से हमारी तालीम शुरू हुई।

मुहम्मद अली बड़े दरियादिल पुरुष थे। मैं जब भी कहता—"मैंने अमीर खाँ से शिक्षा पायी है, उनकी ही चीज बजाऊँगा।" यह सुनकर भी वे बिलकुल असन्तुष्ट नहीं होते, वरन् कहते, "उनसे सीखे हो इसीलिए मैं तुम्हें शीघ्र सिखा पा रहा हूँ।"

बीच-बीच में परिहास के साथ एक और बात कहते—"हमारे समय में एक-एक गान सात-सात दिनों तक सीखना होता था, किन्तु भातखण्डेजी ने ऐसी पद्धति बनायी है कि आधे घण्टे में ही सब समझ में आ जाता है।"

धर्म-विश्वास में भी मुहम्मद अली अनुदार नहीं थे। काली और सरस्वती के स्तोत्रों का गान में पाठ करते थे। मुझे भी यह सब सिखाया था। गण्डा-बंधन के दिन---पीर की दरगाह और माँ काली के थान—दोनों स्थानों पर पूजा करनी पड़ी। उस दिन मुझसे एक प्रतिश्रुति ली; उनके पालित किशोर पुत्र को मेरे हाथ में सौंप कर उन्होंने कहा, "इसे तुम देखो।" उत्तरकाल में ये ही सौकत अली खाँ नाम से परिचित हुए।

मुहम्मद अली के पास मैंने लगभग एक वर्ष तक शिक्षा पायी थी। उनके पास जब मैं सीख रहा था तो एक दिन हाफिज अली खाँ गौरीपुर आ गये। वहाँ आकर उन्हें प्रदत्त वजीर खाँ का सुरश्रृंगार वे मुझे दे गये। वाद्य देखकर मुहम्मद अली बहुत खुश हुए। आह्लादित होकर वे मुझे सुरश्रृंगार सिखाने लगे।

अन्यान्य उस्तादों के सम्बन्ध में मैंने उनसे कितने ही प्रश्न किये। उन्होंने अपना स्वतंत्र मतामत बताने में कभी कुण्ठा अनुभव नहीं की। वे कहते थे, "बन्दे अली का वादन सुना है, किन्तु वजीर खाँ का बीन-वादन और भी रंगदार था।" सितार की बात उठने पर वे अमृतसेन का और सुरबहार में सज्जाद महम्मद खाँ का नाम लेते थे। बड़कू मियाँ को सुरश्रृंगार के श्रेष्ठ शिल्पी कहते थे। काशिम अली के सम्बन्ध में वे कहते, रबाब में उनका सानी नहीं; गायक रूप में पिता बासत खाँ को वे श्रेष्ठ मानते थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मुहम्मद अली स्वयं असंख्य गान जानते थे। इनकी संख्या लगभग पाँच सौ हो सकती है। वृद्धावस्था में प्रायः आधे गान वे भूल गये थे। छम्मन साहब और उनके, दोनों के ही प्रिय बन्धु डॉ० नातू के पास उन पाँच सौ गानों की स्वरलिपि थी। मुहम्मद अली से मुझे प्रायः सौ गान मिले।

दरियादिल मनुष्य होते हुए भी क्या हो सकता है, गुरु का अभिमान भी कम नहीं था। एक बार गौरीपुर में इनायत खाँ के बाद मैंने उन्हें बजाने के लिए कहा। उस दिन उन्होंने बात अवश्य रख ली, किन्तु बाद में मुझसे कहा कि इस प्रकार का अनुरोध भविष्य में कभी नहीं करना। मैं आश्चर्यचकित हो गया, कारण पूछने पर उन्होंने दुःख प्रकट करते हुए कहा, "मैं बूढ़ा हो गया हूँ। इनायत की आयु अभी कम है। मेरे हाथ में उसके जैसी गति कहाँ है! इसे लेकर उसके मन में सम्भवतः कुछ गर्व हो सकता है। फिर भी, इनायत के पिता इमदाद एक समय मेरे बाद बजाने का साहस नहीं करते थे।"

उन्होंने मुझे एक घटना सुनायी। एक बार काशी के एक संगीत-समारोह में मुहम्मद अली बजाने बैठे। उनकी भाषा में—"उस समय मैं रबाब पर पंजाब-मेल की तरह द्रुत बजा सकता था।" वादन समाप्त कर जब उन्होंने अन्यों से वादन का अनुरोध किया तब किसी ने भी आगे आने का साहस नहीं किया। यद्यपि समारोह में श्रेष्ठ-श्रेष्ठ उस्ताद थे। इमदाद खाँ तो थे ही, उनके अलावा रामपुर के सरोद-वादक मजरू खाँ, आगरा के खयालिये तसद्दुक हुसैन जैसे गुणी थे।

मुहम्मद अली का अंतर बड़ा नरम था, किंवा कहा जा सकता है स्पर्शकातर। व्याख्या जो भी हो, उनका स्नेहप्रवण अन्तर अंतरंग व्यक्तियों के समक्ष गोपन नहीं रहा। गौरीपुर में रहते समय ही उन्हें वजीर खाँ का मृत्यु-संवाद मिला। संवाद मिलते ही खाँ साहब ने क्या क्रन्दन किया है। कुछ क्षणों में ही वे सब पुराने वाक्-वितण्डा भूल गये। रोते-रोते ही उन्होंने दुःख से कहा था—"ऐसी बीन अब सुन नहीं सकूंगा।"

वजीर खाँ की आकस्मिक मृत्यु से मुझे व्यक्तिगत अफसोस हुआ। उन्हें देखने की मेरी बड़ी इच्छा थी। मन की वासना प्रकट करते हुए मैंने हाफिज अली के साथ एक चिट्ठी भेजी थी। उसके साथ मैंने कुछ रुपये और फल भी भेजे थे। उन्होंने मेरी चिट्ठी का उत्तर दिया था और मुझे पुत्र रूप में सम्बोधित किया था। उन्होंने लिखा था, "तुम आओगे तो मुझे खुशी होगी। अभी मैं ब्रांकाइटिस से ग्रस्त हूँ। मैं स्वस्थ हो जाऊँ तब आना।" यह चिट्ठी लिखने के लगभग एक माह बाद उनका देहान्त हो गया।

मुहम्मद अली के स्नेहकातर मन का और एक बार परिचय मेरे बड़े पुत्र की मृत्यु के समय मिला। उस समय मैंने उन्हें शिशु के समान रोते हुए देखा, उन्हें देखने से ऐसा लगता जैसे उन्हें ही पुत्र-वियोग हुआ है। पुत्र-शोक भूल जाने के लिए मैं गिरिडीह चला आया, साथ में वे भी आये। इसका उद्देश्य मेरे पास रहकर मुझे सान्त्वना देना था। गिरिडीह में कुछ दिनों तक रहने के बाद वे लखनऊ गये।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जाते समय मुझे कहा कि "सोने से मढ़ी छम्मन साहब की बीन ले आऊँगा, उसके बाद सिखाऊँगा। किन्तु यह सम्भव नहीं हुआ। वहाँ जाने पर वे अचानक अस्वस्थ हो गये। पहले ऐसा सन्देह हुआ कि आमातिसार रोग हो गया है, किन्तु बाद में पता चला कि वह कैंसर है। अस्वस्थ होते हुए भी वे गिधोर चले गये। पन्द्रह दिन बाद वहीं पर उनका देहान्त हो गया।

गिरिडीह से जाते समय उन्होंने मुझे जो बात कही थी, वह आज भी कान में गूंजती रहती है। स्टेशन जाने के लिए घोड़ागाड़ी आ गयी। घोड़ागाड़ी पर बैठकर भी वे बहुत रोए, उसके बाद मेरे सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया, "मेरा विश्वास है कि जोड़-काम में तुम देश के श्रेष्ठ वादक होगे।"

मुहम्मद अली के देहान्त के बाद सेनिया घराने की तालीम मैंने और कुछ गुणियों से पायी। इनमें सर्वप्रमुख हैं—उस्ताद केरामतुल्ला खाँ और उस्ताद अलाउद्दीन खाँ।

कलकत्ता आकर मैंने केरामतुल्ला से शिक्षा पायी। मेरे मन की आकांक्षा जान लेने पर उन्होंने कहा, "देखो, खाता लेकर लिखने से संगीत का यथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं होता। एक राग कई दिनों तक उस्ताद के साथ वाद्य से वाद्य मिलाकर बजाने या अविरत उस्ताद का वादन सुनने पर ही राग का बोध होता है।"

उस्ताद केरामतुल्ला के कथनानुसार स्वरलिपि की सहायता न लेकर उनके पास बैठकर प्रायः दो माह तक दो राग बजाये। दो राग थे शुद्धकोश और शुद्ध-केदार। इन रागों का चयन मैंने ही किया था।

केरामतुल्ला अपने पिता नियामतुल्ला की शिक्षा के अनुसार रबाब की पद्धति से सरोद बजाते थे। नियामतुल्ला कोई बड़े कलाकार नहीं थे। वे मुहम्मद अली के पिता बासत खाँ के शिष्य थे। जगत्-विख्यात रबाबवादक काशिम अली के शागिर्द भी लम्बे अर्से तक रहे थे। ऐसे पिता के पुत्र वादन की सही पद्धति जानेंगे ही, इसमें आश्चर्य की क्या बात है। केरामतुल्ला कौकभ खाँ के समान तेजस्वी वादन नहीं कर सकते थे, किन्तु छन्द-काम में उनका सानी नहीं था। एक बार धूर्जटि मुखोपाध्याय ने मुझसे कहा था कि केरामतुल्ला के समान ऐसा छन्दोमय आलाप और नहीं सुना।

केरामतुल्ला ने अपने जीवन के अन्तिम काल में आर्थिक संकट के कारण बहुत कष्ट उठाये। कुछ महीनों तक मैंने उनकी आर्थिक सहायता की, अन्य कई लोगों ने भी उनकी मदद की थी।

मुझे तालीम देने के काफी समय बाद उन्होंने मेरे लिए एक संगीत-सभा का आयोजन किया। इसका उद्देश्य रसिकजनों को मेरा वादन सुनाना था। अनुष्ठान के विषय में उनके दो शिष्य हरेनशील और कालीपाल ने उनकी सहायता की थी। यह समारोह दत्त-बाड़ी में हुआ था, जिसकी अध्यक्षता स्व० ताराप्रसाद घोष महाशय ने की थी। पहलवान गौरव बाबू भी उपस्थित थे। और मेरे प्राक्तन गुरु सरोदवादक उस्ताद अमीर खाँ भी थे। यह समारोह संध्या के समय आयोजित

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

होने के कारण मैंने राग शुद्धकेदार बजाया था। वादन समाप्त होने के बाद अमीर खाँ साहब ने उठकर कहा, "खोका महाराज को हमने कई राग के आलाप और गतें सिखायी हैं, किन्तु केरामतुल्ला दादा ने अनायास ही किस प्रकार सुरश्रृंगार बजाना सिखा दिया है, यह वास्तव में देखने लायक है।"

केरामतुल्ला शास्त्रविद् थे, किन्तु पाण्डित्य का गर्व उन्हें छू तक नहीं गया था। वे सम्भाषणपटु थे और उनकी अभिरुचि भी मार्जित थी। केरामतुल्ला के देहान्त के बाद मैंने सेनिया घराने के उस्ताद वजीर खाँ के पुत्र सगीर खाँ से भी काफी कुछ सीखा। यह बात मैं बाद में कहूँगा। पहले उस्ताद अलाउद्दीन खाँ की बात करता हूँ।

जब मेरी आयु 12 या 13 वर्ष थी, तब मैंने पहली बार उस्ताद अलाउद्दीन खाँ को देखा हमारे गौरीपुर के निवास पर। वे शीतल बाबू के विशेष बन्धु थे। उस समय उनसे मुलाकात का कोई तात्पर्य नहीं था। खाँ साहब के निकट मैं बहुत समय बाद आया। उस समय मुहम्मद अली का देहान्त हो चुका था। मैं गिरिडीह में था। खाँ साहब को मैंने एक चिट्ठी भेजी। चिट्ठी पाते ही वे गिरिडीह चले आये। हम दोनों प्रायः डेढ़ माह तक साथ में रहे। गर्मी के दिनों में हम दोनों छत पर सोते थे। वे निरामिष भोजन करते थे। दूध पीना उन्हें बहुत प्रिय था। नशा केवल धूम्रपान का था।

मेरे पिता के प्रति उनके मन में बड़ी श्रद्धा थी। उम्र में मेरे पिताजी से लगभग दो वर्ष बड़े होते हुए भी वे पिताजी को पितृ-सम्बोधन करते थे। पूछने पर कहते कि "जन्मदाता, अन्नदाता, ज्ञानदाता तीनों ही पिता हैं। आपका अन्न खाता हूँ, इसलिए आप मेरे पिता हैं। इसके अलावा आप जमींदार भी हैं।" मेरे पिताजी की वे कितनी श्रद्धा करते थे, उसके कितने ही प्रमाण मिलते हैं। पारिवारिक समस्या के सम्बन्ध में भी वे पिताजी से परामर्श करते थे। रविशंकर—अन्नपूर्णा के विवाह के विषय में जब खाँ साहब मन स्थिर नहीं कर पा रहे थे, तब वे पिताजी का मत जानने के लिए उनके पास आये थे। खाँ साहब द्वारा मुसलमान समाज की आपत्ति की बात उठाये जाने पर पिताजी ने कहा, "दोनों के मन का सम्पर्क ही बड़ा है।" पिताजी के कथन पर खाँ साहब बड़े आश्वस्त हुए।

अलाउद्दीन के समान मधुर स्वभाव के मनुष्य मैंने कम ही देखे हैं। मुझे जब सिखाते तब उन्हें कभी धैर्य खोते नहीं देखा। केवल सिखाकर ही शान्त नहीं होते थे, उनका प्रयास रहता था कि हमारी शिक्षा सम्पूर्ण हो। उनके कहने पर ही मेहदी हुसेन हमारे निवास पर आये थे। मेहदी हुसेन का परिचय कराते हुए खाँ साहब ने मेरे पिताजी से कहा था, "इन्हें रखिए, इनके पास सेनिया घराने की काफी सामग्री है।" बाद में मैं मेहदी हुसेन साहब को कलकत्ता ले आया और उन्हें स्थायी रूप से वहाँ बसा दिया।

अलाउद्दीन खाँ के स्नेह का ऋण वास्तव में भुलाया नहीं जा सकता। जब भी अनुरोध किया गया, उसी समय उसका पालन करते उन्हें देखा गया है। ई० 1949

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में मैं जब पाण्डिचेरी गया, तब खाँ साहब को भी साथ ले गया था। मेरी इच्छा थी कि श्री अरविन्द को खाँ साहब का वादन सुनाया जाय। मैंने जब खाँ साहब को टेलिग्राम भेजा, वे अस्वस्थ थे। उन्हें बुखार था, फिर भी वे निकलने की कोशिश में थे। उनकी पत्नी ने मना किया, किन्तु उनकी एक ही रटन थी, "भाई साहब ने जब कहा तब जाना ही पड़ेगा।"

खाँ साहब और मैं पहले मद्रास गये। वहाँ उदयशंकर थे। उदयशंकर से मिलकर हम पाण्डिचेरी गये। आश्रम में श्रीमाँ के दर्शन होते ही सरलचित्त खाँ साहब ने हाथ जोड़कर कहा, "हम पाकिस्तानी लोग हैं, बंगाल, असभ्य। बुरा नहीं मानना।" कुछ रुककर खाँ साहब ने घबराते हुए पूछा, "रामपुर में सर्वदा ही 'हुजूर-हुजूर' करते-करते दिन बीते हैं। माँ! यहाँ भी क्या उसी प्रकार रहना होगा?" खाँ साहब के प्रश्न पर श्रीमाँ ने हँसते हुए उन्हें आश्वस्त किया।

श्री अरविन्द के दर्शन बाद में हुए। उन्हें देखकर खाँ साहब ने मत प्रकट किया था, "जैसे प्राचीन ऋषि को तपस्या में देख रहा हूँ।" प्राय: दस-पन्द्रह दिनों तक मैंने और खाँ साहब ने श्री अरविन्द को वादन सुनाया। दोनों ने अलग-अलग बजाया और युगल-वादन भी किया। युगल-वादन में मैं आलाप-अंश बजाता था और खाँ साहब द्रुत। हमारे साथ तबला-संगत नलिनीकान्त सरकार करते थे। श्री अरविन्द ने बाद में कहा था, "अलाउद्दीन ने भारत के आध्यात्मिक संगीत को आयत्त किया है एवं उसे कायम रखा है। इन्हें देखने की इच्छा थी, अन्तत: मुलाकात हो गयी, इसी में मुझे आनन्द की अनुभूति होती है।"

पाण्डिचेरी से हम मद्रास लौट आये। वहाँ गवर्नर ने खाँ साहब का अभिनन्दन किया। इस समारोह में हमने युगलवादन प्रस्तुत किया।

अलाउद्दीन खाँ को और एक बार चिट्ठी लिखकर मैहर से मैंने बुलाया था। उस बार कलकत्ता में बुलाया था, 'वन्दे मातरम्' के लिए उनके द्वारा स्वर-संयोजन के उद्देश्य से। उन्होंने राग केदार में इसका स्वर-संयोजन किया था। वह गान रेडियो से प्रसारित भी हुआ था, किन्तु सरकार ने अन्तत: उसे स्वीकार नहीं किया। तिमिरबरन द्वारा 'मार्च सांग' के ढंग से किया गया स्वर-संयोजन ही सरकार ने स्वीकार किया। इसे लेकर खाँ साहब के मन में किसी प्रकार का दु:ख नहीं था। असल में सभी कलाकारों के प्रति उनके मन में श्रद्धा और ममत्व था। हाफिज अली की बात उठने पर तो बिलकुल उल्लसित हो उठते थे। कहते, "उनके हाथ में जो 'सुर' है वह मेरे हाथ में नहीं है। किन्तु उनकी तुलना में हमने बड़ा कष्ट उठाकर सीखा है।" हाफिज अली के साथ उनके युगलवादन की बात भी उनके मुँह से सुनी है। यह अनुष्ठान ग्वालियर में हुआ था और इस अवसर पर दोनों ने राग ललितागौरी बजाया था।

इन दोनों दिकपालों का वह ऐतिहासिक युगलवादन सुनने का सौभाग्य मुझे अवश्य नहीं मिला, किन्तु दोनों ही इस अत्यन्त स्मरणीय युगलवादन के साक्षी हैं। अलाउद्दीन की बात करते-करते दिल्ली में उनके वादन की बात याद आ गयी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उस बार भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मभूषण' अलंकरण से विभूषित किया था। उसके उपलक्ष्य में अभिनंदन-समारोह का आयोजन किया गया। मैं मुख्य अतिथि था, सुरेश चक्रवर्ती सभापति और हीरू गांगुली उद्बोधक थे। हीरू बाबू की संगत के साथ खाँ साहब का उस दिन का वादन यथार्थ ही अविस्मरणीय था।

मृत्यु के दो वर्ष पूर्व तक खाँ साहब के साथ पत्र-व्यवहार था। उन्होंने अपनी अन्तिम चिट्ठी में लिखा था, "सब कुछ ईश्वर पर छोड़ दिया है किन्तु अब बजा नहीं सकता, अतः दुःख होता है।"

अलाउद्दीन खाँ ने कितने यत्न और साधुता से मुझे शिक्षा दी थी, उसका निश्चित प्रमाण मुझे बहुत बाद में तब मिला, जब मैंने सगीर खाँ से तालीम लेनी शुरू की। सगीर खाँ के शागिर्द रहते समय पता लगा कि उनके गान के साथ अलाउद्दीन खाँ साहब द्वारा सिखाये गये कई गानों का हूबहू मेल है।

वजीर खाँ के पुत्र सगीर खाँ का नाम मैंने पहले भी लिया है। उन्हें किस प्रकार मेरे पास लाया गया, यह बताने के पूर्व उनका पूर्व इतिहास बता देता हूँ। वजीर खाँ की मृत्यु के बाद नवाब हामिद अली ने गुरुपुत्र को अपने पुत्र समान ही बड़ा किया था। किन्तु ई० 1930 में नवाब के देहान्त के बाद सगीर खाँ रामपुर में रहना नहीं चाहते थे। रामपुर छोड़कर अन्यत्र जाने के लिए वे व्यग्र थे। उस समय मेरे एक कर्मचारी के साथ उनकी मुलाकात हुई। कर्मचारी से गौरीपुर की बात, विशेषतया उनके मातृवंश के पूर्वपुरुष मुहम्मद अली के पास मेरी शिक्षा का विवरण सुनकर वे मेरे पास आश्रय लेने के लिए अपनी उत्सुकता दिखाने लगे। उनकी मनोकामना जान लेने पर मैंने मनि-ऑर्डर से खर्च के रुपये भेज दिये। उस समय मैं गिरिडीह में था। मेरे साथ मुलाकात होते ही उन्होंने कहा, "इज्जत की चटनी और रोटी ही अच्छी है, लेकिन बेइज्जती का कोर्मा, बिरियानी मुझे नहीं माँगता।" उन्होंने कहा, "तुमने हमारे मामा वंश के मुहम्मद अली साहब को बहुत इज्जत से रखा, ऐसा मैंने सुना है। मैं केवल दो ही बातें चाहता हूँ—इज्जत और मुहब्बत। बस, ये ही दोनों चीज। रुपिया-फुपिया कुछ भी नहीं।"

वे 1930 में मेरे पास आये और 1947 तक—यानी सत्तरह वर्षों तक मेरे पास रहे। देश विभाजन के बाद रामपुर नवाब के भाई उन्हें बगदाद ले गये। अभी तक नवाब-भ्राता के बन्धु और सहकारी होकर वे वहीं हैं। उन्हें लेकर जाने के पूर्व नवाब के भाई ने आकर मुझसे कहा, "सगीर खाँ नवाब के पुत्र के समान बड़े हुए हैं। रामपुर छोड़कर आने के बाद भी आपके आश्रय में आ जाने से उन्हें किसी प्रकार की तकलीफ नहीं हुई। आपने और आपके बन्धु क्षेत्रमोहन ठाकुर दोनों ने इन्हें बड़े यत्न से रखा है। किन्तु क्षेत्रमोहन का देहावसान हो चुका है और आपकी भी जमींदारी नहीं है। उनका खर्च उठाने में आपको असुविधा हो सकती है, इसीलिए उन्हें साथ लेकर मैं विदेश जाना चाहता हूँ।"

नवाब के भाई की बात युक्तिसंगत होने के कारण मैंने किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की। सगीर खाँ चले गये, किन्तु जितने दिन भी मेरे पास थे, उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मुक्त हृदय से मुझे सिखाया था। मैंने जीवन-भर कई उस्तादों से सेनिया घराने की वादन-रीति सीखी है, किन्तु बदस्तूर गंडा बाँधकर तानसेन वंश के जिन दो उस्तादों से शिक्षा पायी है, वे हैं मुहम्मद अली और सगीर खाँ। मुहम्मद ने सुर-शृंगार की शिक्षा दी थी, बीन की प्रधान शिक्षा मुझे सगीर खाँ से मिली।

सगीर खाँ अपने बाप की सिखायी हुई चीज यहाँ-वहाँ नहीं बजाते थे। उन्होंने मेरे और क्षेत्रमोहन से कभी कुछ नहीं छिपाया। हम दोनों को वे बड़े यत्न से सिखाते थे। बाहर के लोगों के समक्ष वे वादन पेश न कर ठुमरी गाकर सुनाते थे। पिता वजीर खाँ के समान सगीर खाँ भी असाधारण ठुमरी-गान करते थे। पुरुष के कण्ठ से इस प्रकार स्त्रीजनोचित सुरीली ठुमरी कदाचित् ही सुनी जाती है। मैंने सुना है कि रसिकता के उद्देश्य से ही उनके वंश के उस्तादों ने ठुमरी सीखी थी। बेगम अख्तर ने कुछ समय तक सगीर खाँ से शिक्षा पायी थी। सगीर खाँ कथक-नृत्य में भी विशेष प्रवीण थे। कथक नृत्य में उनके गुरु थे अच्छन महाराज। सगीर खाँ को घुँघरू बाँधकर नृत्य करते हुए हमने देखा है। और एक मजेदार बात यह है कि कलकत्ता में रहते समय सगीर खाँ प्रति शनिवार एक बड़े होटल में जाकर एंग्लो-इण्डियन महिलाओं और पुरुषों के साथ बॉल नाच भी करते थे। वेशभूषा के मामले में वे पक्के साहब थे। अधिकतर कोट-पैंट पहने रहते थे। उनकी पोशाक और उनके साहबी चलन देखकर उनकी माँ प्राय: दुःख के साथ कहतीं, "मेरा लड़का फिरंगी हो गया है।" बाहर से वे जैसे भी हों, अन्दर से वे सच्चे मनुष्य थे। पिता के प्रति श्रद्धा या देशी संगीत के प्रति अनुराग का किसी प्रकार का अभाव नहीं देखा गया। वजीर खाँ के हस्ताक्षरयुक्त एक बड़ा खाता हमेशा साथ में लिये फिरते थे। उस खाते में कई राग-रागिनियों, ध्रुपद और बीन-वादन पद्धति की स्वरलिपि लिखी हुई थी।

संगीत के प्रति अनुराग और श्रद्धा तो थी ही, इसके अलावा उनके स्वभाव में और एक दुर्लभ गुण था। वे अपनी ख्याति और अर्थ के प्रति उदासीन थे। किसी प्रकार का हिसाब करना उनके वश का रोग नहीं था। इन सब बातों का दायित्व उनके भ्रातुष्पुत्र दबीर खाँ पर था।

सगीर खाँ के रामपुर से चले आने के चार वर्ष बाद दबीर खाँ भी चले आये। वे अपने चाचा सगीर के साथ ही रहते थे। सगीर खाँ के सहकारी के रूप में उन्होंने ध्रुपद और बीन के कई अंग सिखाये, विशेषत: बीन का झाला और तार-परण मैंने उनसे ही सीखा। दबीर खाँ के सम्बन्ध में अधिक बताने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि लगभग 35 वर्षों के दीर्घकाल तक वे कलकत्ता में रहे। कलकत्ता के गुणियों व रसिकजनों से उनका परिचय अज्ञात नहीं है। दबीर खाँ बहुत परिश्रम कर सकते थे। शिक्षक रूप में प्राप्त आय से वे जीविकोपार्जन करते थे, उसी आय से उन्होंने अपनी पुत्रियों के विवाह कराये, किन्तु पुत्र को नाबालिग छोड़कर इस संसार से उठ गये। पुत्र की आयु 16 वर्ष होगी। संतोष बंद्योपाध्याय से उसने पहले सितार-वादन सीखा, अभी वह अमजद से तालीम ले रहा है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सगीर खाँ के सम्पर्क से दबीर खाँ के अलावा सेनिया घराने के और जिन उस्तादों के संस्पर्श में आया, वे हैं अलाउद्दीन के प्रथम गुरु अहमद अली के भागिनेय सलामत हुसेन खाँ एवं महमूद खाँ। किन्तु मेहदी हुसेन से भी मैंने तालीम पायी है। मैंने पहले ही उल्लेख किया है कि इनका साहचर्य मुझे अलाउद्दीन की सहायता से मिला। इनमें से किसी से मैंने ध्रुपद-धमार, किसी से गाद्य-वादन की रीति के विभिन्न अंग पाये हैं।

मेरा कहना प्रायः समाप्त हो रहा है। जिन गुणियों के बारे में मैं कह चुका, उनके सम्बन्ध में और कहकर मेरा कथन समाप्त नहीं किया जा सकता। जिनके बारे में मैंने कुछ नहीं कहा, वे इसके योग्य नहीं, ऐसा नहीं है। वक्तव्य को संक्षिप्त रखने के उद्देश्य से कइयों के नाम मैंने नहीं लिये हैं। कुछ काट-छाँट भी की है। मैंने अपनी बात ही अधिक कही है, मेरे परिवार, सुख-दुःख, उत्थान-पतन, कीर्ति-अपकीर्ति आदि का उल्लेख उतना ही किया है जितना कि जरूरी समझा गया। जिनकी बात कहनी चाही है, उनके प्रसंग के सूत्र से ही अपनी बात कही गयी है। इसे आत्मसंकोच कहना भूल होगी। वास्तव में महान् व्यक्तियों की बात कहते समय आत्मकथन का उत्साह समाप्त हो जाता है। उस समय अन्यों की बात करना ही अच्छा लगता है।

इसके अलावा मैं वृद्ध हो गया हूँ। अब अपने सम्बन्ध में विचार क्रमशः असंयत हो रहे हैं। मेरी आँखें खराब हो गयी हैं, कुछ भी देख नहीं पा रहा हूँ, स्मृति के अलावा और है ही क्या, यही तो मेरा सम्बल है। युद्ध के बाद सैनिक जिस प्रकार गोधूलि के आकाश की ओर अपलक देखते रहते हैं, मैं भी अपने दृष्टि-हीन शरीर के साथ आकाश की ओर मुँह कर चुप बैठा रहता हूँ। उस परिव्याप्त शून्य के पटल पर नक्षत्रों के समान एक-एक करके स्नेहपूर्ण मुख प्रकट होते हैं—अमीर खाँ, मुहम्मद अली, हाफिज अली, अलाउद्दीन खाँ—और भी अनेक।

अनुवादक मदनलाल व्यास

जोधपुर (राजस्थान) में 12-12-1922 को जन्म। राजस्थान विश्वविद्यालय से बी०ए०, प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन से 'साहित्यरत्न' और विश्वभारती से बंगला साहित्य में 'साहित्यतीर्थ'। पं० रविशंकर द्वारा संचालित 'किन्नर' में सितार-शिक्षा एवं मास्टर नवरंग से गायन-शिक्षा। नवभारत टाइम्स (बम्बई) में उपसम्पादक (1955-1983) और संगीत-समीक्षक (1962 से)। बंगला से अनूदित ग्रंथ—श्री विमलाकांत राय चौधुरी लिखित भारतीय संगीत कोश एवं राग व्याकरण, स्वामी प्रज्ञानानन्द लिखित भारतीय संगीत का इतिहास एवं राग और रूप, श्रीराज्येश्वर मित्र लिखित वैदिक परम्परा में सामगान, आर्य भारत का संगीत चिंतन, मुगल भारत का संगीत चिन्तन और संगीत रत्नाकर : एक अध्ययन तथा श्रीशांतिदेव घोष लिखित रवीन्द्र संगीत। संगीत पत्रिका (हाथरस) के लिए नियमित लेखन। प्रेस ट्रस्ट ऑफ इण्डिया की फीचर सेवा और उत्तरप्रदेश संगीत नाटक अकादमी की पत्रिका 'छायानट' के लिए भी लेखन। ☐☐

70810

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वीरेन्द्रकिशोर रायचौधुरी

मैमनसिंह (अब बांग्लादेश) के गौरीपुर में 15 जुलाई, 1903 में जन्मे बीरेन्द्रकिशोर रायचौधुरी के पिता ब्रजेन्द्रकिशोर रायचौधुरी जाने-माने संगीतज्ञ थे। परिवार के संगीतमय परिवेश में इनकी संगीत प्रतिभा का विकास हुआ। 1964 में संगीतशास्त्री, गायक एवं वादक श्री वीरेन्द्रकिशोर संगीत नाटक अकादमी के 'फैलो' चुने गये। 1956 में रवीन्द्रभारती विश्वविद्यालय में अध्यापक रहे। इनका संपूर्ण जीवन संगीत के प्रति समर्पित रहा। 3 जुलाई, 1975 को इस महान संगीत-साधक की इहलीला समाप्त हो गयी।

मदनलाल व्यास

(अनुवादक)

12 दिसम्बर 1922 को जोधपुर (राजस्थान) में जन्म। राजस्थान विश्वविद्यालय से बी. ए., प्रयाग हिंदी साहित्य सम्मेलन से 'साहित्यरत्न' और विश्वभारती से बांग्ला साहित्य में 'साहित्यतीर्थ' किया। कई पत्र-पत्रिकाओं में संपादनकर्म। बांग्ला के कई ग्रंथों का हिंदी अनुवाद।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE